नष्ट नीड़

नष्ट नीड़

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

प्रकाशक

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

९६, दरियागंज, दिल्ली ।

द्वितीय संस्करण मार्च, १९६०
मूल्य : चार रुपये ५० न० पै०

* शिक्षा विभाग बिहार सरकार की सन् ५५-५७ की स्वीकृत ग्रन्थ-सूची के अनुसार, पुस्तकालयो के लिए स्वीकृत ।
* शिक्षा विभाग राजस्थान सरकार की १९५७-५८ की स्वीकृत सूची के अनुसार माध्यमिक महाविद्यालयो के पुस्तकालयो के लिए स्वीकृत ।
* शिक्षा संचालक दिल्ली प्रशासन के आदेश न० एफ ७८४/५८, तिथि ३-२-५९ के अनुसार विद्यालय-पुस्तकालयो के लिए स्वीकृत ।

मुद्रक :
राजकमल प्रेस सब्जी मण्डी, दिल्ली ।

१

बादल गरजता, विद्युत कड़कती और तब वर्षा झर पैंडती—झर झर झर झर। मानो विश्व-युद्ध के गोला-बारूद और गोलन्दाजगण एकत्र होकर आकाश मे महायुद्ध कर रहे हो। पवन की उन्मत्त-गति से जाने कितने वृक्ष, वृक्ष-शाखाएँ, टूटकर गिरती, वर्षा मे भीगे हुए काग, उस दिन सुप्त गृहस्थो के घर उत्पात करना भूलकर अपने पखो को दबाए वृक्षों पर बैठे थे, वर्षा की बूंदे जब तेजी पर आती तब हवा कुछ कम हो जाती, शहर मे तीन दिन से एक-सी वर्षा थी, तो भी कलकत्ता के पथ पर कही पानी रुका हुआ नही था।

सुनन्दा की नीद खुली, अकुला कर वह उठ बैठी और कुछ देर सामने की खुली खिडकी के प्रति देखती रही, कदाचित रात मे देखे हुए स्वप्न की स्वप्निल छाया, तब भी उसके मन के प्राण मे घुमड-घुमड कर अपना अस्तित्व और अस्तित्व की काया के विषय मे—सजग कर रही हो। जम्हाई लेकर उसने बिखरे बालो को दोनों हाथो से समेट कर बाँधा, तब उसे ध्यान आया कि बिस्तर की चादर एव उसका आधा शरीर वर्षा से भीग चुका है और वह सोती ही रही आई। सुनन्दा ने लौट कर देखा, सुप्रकाश का पलग खाली है—सुप्रकाश, कब उठकर चला गया, वह कुछ नही जानती, जाते समय सुप्रकाश ने खिडकियाँ खुली छोड दी होगी या तो भूल गया होगा और तब पानी की बौछार ने सब भिगो दिया।

वैसी ही सुनन्दा, उठकर खिडकी के निकट पहुँची, पथ पर चलाचल कम था। दूर से ट्राम की ध्वनि सुनाई पड रही थी, छत्री सिर पर ताने

कोई कठिनाई से पथ अतिक्रम करता, पवन के तीक्ष्ण प्रवाह मे छाता मस्तक पर स्थिर रखना भी कठिन था। बौछार से सुनन्दा भीग रही थी और अनमनी-सी देख रही थी। बिजली कडकी, मेघ गरजे, सुनन्दा खडी ही रही आई। सोच उठी वह—क्या संसार के रोदन मे आज विश्व का हर्ष डूब मरा है?—विचारती हुई सुनन्दा वर्षा की बूदो के साथ पवन का मल्लयुद्ध विस्फारित नेत्रो से देखने लगी।

गुनगुनाकर कहने लगी सुनन्दा—उस दिन की तरह आज भी ससार के रोदन मे विश्व का हर्ष डूब मरा है और डूबता ही चला जाएगा।

मेज पर रखी हुई घडी मे आठ की घटी बजने लगी, चौंक कर सुनन्दा ने घड़ी के प्रति देखा। बुडबुडाई, आज मै कितना सोई? आठ बज गए और उन्हे नौ बजे भोजन देना है, साढे नौ बजे उन्हे स्कूल पहुँचना है।

जल्दी उसने पलग की चादर फटकार कर बिछाई, झाड लगाया, मेज-पोश झाडा, उस पर रखी हुई दो-चार पुस्तकों को तथा राईटिंग पैड, दवात, कलम आदि को व्यवस्थित किया, कुर्सियाँ तथा कोने की आराम-कुर्सी को पोंछा, फिर घडी मे चाबी दी, निकट की तिपाई पर रखे हुए जलपूर्ण कासे के गिलास को उठाकर बाहर रखा, और झाड से जल्दी-जल्दी कमरे को झाडकर साफ किया, तब कमरे के दूसरे द्वार को खोलकर छोटी-सी कोठरी मे पहुँची। वहाँ टूटी-सी अलगनी पर दो-चार साडियाँ, ब्लाउज, पेटीकोट रखे हुए थे, दीवार पर लगी अलगनी पर साधारण कोट, पेन्ट लटक रहे थे, एक ओर टूटे, अध-टूटे टीन के कई ट्रंक, सूटकेस जमीन पर सुव्यवस्थित रखे थे, और थे दो-चार जोडे जूते, दूसरी तरफ की दीवार पर धुँधला-सा दर्पण लटकता था और उसके नीचे टेबल पर तेल-कघा आदि। कोठरी से लगा हुआ बाथ-रूम और पाखाना। सुनन्दा ने शीघ्रता से एक साडी खीच ली, हाथ मे थोडा तेल लेकर सिर पर डाला फिर स्नान कर सकरी सिढियो को तय करती हुई नीचे पहुँची।

अपने बृहत् मिट्टी के आँगन के प्रति उसने देखा। वर्षा ने नही, किन्तु आँधी-तूफान ने उसके कुम्हडा, लौकी, तोरई आदि के पौधो को छिन्न-भिन्न कर डाला था, भटे और टमाटर के पौधो की दशा देखकर वह स्तब्ध रह गई।

देखा सो देखती रही, देखती रही आई सुनन्दा, देखते-देखते वह मुसकरा पडी—पीडित व्यथा-म्लान वह मुस्कान, अरे सब कुछ खोकर तुच्छ पौधों के प्रति यह मोह ? मानो उसके मन मे बैठा कोई प्रश्न कर उठा। अपनी जडता को दूर कर वह दालान मे पहुँची। मिट्टी का दालान वर्षा की बौछार से भीगकर कीचड हो रहा था, आँगन के केले, कटहर के वृक्षो के निकट नल के नीचे पडा हुआ बृहत् चीप, उसी चीप पर सुनन्दा ने हाथ के भीगे वस्त्रो को रखा, फिर भडार खोल कर सामान निकाला, दालान से लगी हुई दो छोटी-छोटी कोठरियाँ, आँगन के उस ओर रसोई-घर और बैठक थी। दरिद्र पल्ली मे शहर के एकान्त मे वह सुनसान गृह था।

रसोई मे प्रवेश कर चूल्हा जलाया, फिर एक ओर दाल दूसरी ओर भात चढाकर रात के रखे हुए, जूठे बर्तन, उसने साफ किये, बरसात की लकडी फूँकते-फूँकते धुएँ से उसका गौरवर्ण मुख रक्ताभ हो उठा और आँखे लाल हो गईं।

आहट पाकर सुनन्दा ने मुडकर देखा, मनीश पर दृष्टि पडते ही वह सहमी। उसके सद्यस्नात बिखरे मेघ-नील कुन्तल बालो से, बूँद-बूँद कर मुक्ता-बिन्दु-सा पानी झरता। वह जल्दी मे ब्लाउज नही पहन सकी थी। मोटी किंतु परिष्कृत साडी का आँचल खींचकर उसने मस्तक ढाका, हृदय पर आँचल के पल्ले को दुहराया, हँसकर नन्दा बोली—"ऐसी वर्षा मे ? ऐसा एक दुर्दिन, आप यहाँ तक कैसे पहुँच सके, मनीश बाबू ?" हँसती जाती वह—झरे हुए मुट्ठी भर बासी चमेली की तरह वह हँसी।

"परन्तु मुझसे यह पर्दा कैसा भाभी ? क्या मैं तुम्हारे खुले हुए

बालो से झरते हुए पानी को नही देख सका हूँ ?"

इस प्रश्न ने नन्दा के मन मे प्रसन्नता या विरक्ति अथवा लज्जा उपजाई सो कह सकना कठिन है। उस मुख को देखकर किसी निष्कर्ष तक पहुँचना असभव है ?

वैसी ही मुसकान के साथ वह बोली—"बैठिए तो। यही बैठेंगे ? वे बाहर नही हैं क्या ?"

इतने ढेर से प्रश्नो का जब कोई उत्तर न मिला तो कोने से मोढा खीचकर मनीश को बैठाया, कहा—"अभी चाय देती हूँ, गरम चाय पीकर ताजे हो जाइये।"

मनीश मोढा पर बैठकर मुसकराया—"तो क्या अब तक मैं बासी हूँ ?" दोनो हँस पडे।

जल्दी-जल्दी मटरी बनाती हुई कहा नन्दा ने—"आपकी मोटर की आवाज तक न मिली।"

"अफसोस हो रहा है न भाभी ?"

बडी-बडी आँखों मे विस्मय उभार कर नन्दा ने पूछा—"क्यो"

सिगरेट का धूम्र गोलाकार से छोडता हुआ मनीश बोला—"क्यो ?" क्योकि हार्न सुन पाती तो मेरी भाभी अपने घने, लम्बे चँवर से बालो के छोर से झरते हुए ओस के बिन्दुओ को देवर की आँखो से छिपा न लेती ? क्या यह कम अफसोस की बात है कि मैने उन बालो का पूरा सौदर्य देखा ही नही वरन् कुछ क्षण तक उस सौदर्य का उपभोग भी कर लिया।"

उसके कहने के ढग से सुनन्दा, खिलखिला कर हँस पडी, जब हँसी रुकी तो कहा—"आप खासे कवि वन बैठे है।"

"मेरी भाभी कवियित्री, और मै न बनू कवि ? "

"भाभी ? आपकी कौन-सी भाभी की बात कह रहे है ?"

"क्या मेरी दस-बीस भाभियाँ है ? बस एक तुम ही तो—नन्दा भाभी !"

नन्दा ने जबरन विस्मय को मुख पर बखेर कर कहा—"मैं? नही, नही, मैं क्या जानू कविता-सविता।"

"फिर झूठ।"

नन्दा तब निकट गरम मटरियो की तश्तरी लिये खडी थी।

"फिर झूठ?" कहते हुए मनीश ने उसका हाथ पकडा "और मुझी से झूठ? क्या तुम कविता मे अपना नाम 'विद्रोहिणी' नही दिया करती हो?"

सुनन्दा कुछ कहने को हुई। द्वार पर सुप्रकाश खडा था। उसके मुख पर दृष्टि पडते ही वह स्तब्ध रह गई?

वह?—वह दृष्टि! नही, वैसी एक दृष्टि से तो सुनन्दा का परिचय नही हुआ था न अब तक।

सुप्रकाश को लौटते देखकर, आश्चर्य से मनीश ने पुकारा—"अरे प्रकाश, आओ तो सही, देखो भाभी ने कैसे गरम मटरी बनाई है। और ऐसी अच्छी कि मुह मे डालते ही गल जाएँ!"

मित्र के पुकारने से केवल वह "हूँ" ही कह सका।

सुनन्दा ने कहा—"रसोई तैयार है, नहाकर आ जाओ।"

"अच्छा" कह कर प्रकाश चल दिया।

दो मिनट पहले, जिस वातावरण मे खुशी, आमोद की वायु मँडरा रही थी, वही पल भर मे गम्भीरता, एक अपार चिन्ता से परिपूर्ण हो उठा। नन्दा को जैसे वायु मे मँडराती हुई लज्जा उसकी जीवनी शक्ति को भी पल-भर मे चूस लेवेगी।

सुप्रकाश की अकारण विरक्ति जिस बात का निर्देश कर रही थी, वह जैसी तो अभद्र थी वैसी ही असहनीय भी। उस वातावरण की कदर्यता तो सदा की भाँति, दोनो हाथो से दूर ठेलकर हठात् कह उठी नन्दा—"आपने छिप-छिपकर मेरी कविताएँ पढ ली है?"

बात करने का विषय पाकर, जैसे मनीश का मन हल्का हो उठा,

बोला—"अजी, वाह, भाभी साहब, तुम्हारी कविताएँ, मासिको मे छपे और उन्हे पढने वाला चोर बने ?" फिर जरा रुककर कहने लगा—"किन्तु मुझे लगता है भाभी कि कविताएँ बस, आहो से भरी हुई हैं। जैसे कि किसी अत्याचार पीडिता की हृदयग्रासी आह ! और कल रात तो मुझे पढते-पढते ऐसा लग रहा था कि एक आहो की दुनिया ही मे मैं रमा हुआ हूँ।" सुनन्दा जरा-सी मुसकरा दी—मानो कर्ज ली हुई वह मुसकान। सुनन्दा को देखता हुआ मनीश कह उठा—"एक बात और।" एव नन्दा के तूलिका से खीचे हुए भौहो के नीचे की तनी हुई आँखो की जिज्ञासा के प्रति देखता हुआ वह बोला—"जब तुम मुझसे बच्चो की तरह हँसी-मजाक करती हो, तब ऐसा भला लगता है भाभी कि भाभी को गले से लगा लूँ, लेकिन जब तुम तर्क करने बैठ जाती हो, तब सच कहता हूँ, मुझे ऐसा डर लगता है, सम्भ्रम जाग उठता है कि क्या कहूँ।"

"डर लगता है और मुझसे ?"

"हाँ जी—भाभी, उस पर उन तर्को का न कोई उत्तर दे पाता हूँ, और न कुछ। यद्यपि सुप्रकाश और तुम मेरे थोडे दिनो के परिचित हो, लेकिन जब तुम भोली हँसी हँसने लगती हो तब ऐसा लगता है· "

सुनन्दा ने मध्य मे ही बात दूसरी ओर मोड दी, सतर्क दृष्टि से उसने द्वार की ओर देखा, उसे भय था कि कही यह शिशु-स्वभाव का युवक पुन· न कह उठे कि "तुम्हे गले लगा लूँ।" जल्दी से वह बोली—"कहो तो सही, मटरी कैसी बनी है ?"

"बढिया,—तुम्हारे हाथ की सब चीजे अच्छी बनती है। इंग्लिश डिशें खाते-खाते ऊब गया। फिर किया भी क्या जाए ? घर मे सिर्फ मैं हूँ, और दादा, और हैं खानसामा, बेयरा आदि। ठड लग रही है अब घर चलूगा।"

"क्या घर मे पहुँच कर गर्म हो जाइयेगा ?"

"हाँ जी, थोडी ह्विस्की ले लूगा।"

इस उच्छृखल किंतु शिशु से स्वभाव के युवक को न जाने क्यो सुनन्दा इतना स्नेह करती थी कि उस स्नेह की तुलना भी कभी नहीं कर पाती। कहा—"यद्यपि आज हमारे हिंदुस्थान मे एक ऐसा समाज है, जहाँ मद्य-सेवन उच्च-सभ्यता का अग विशेष है, किंतु यह चीज़ ऐसी है मनीश बाबू, कि बढती ही चली जाती है।"

"माफ करो भाभी, तर्क नहीं, नहीं, नहीं। ऐसा सुन्दर सवेरा—तर्क मे बर्बाद मत करो, आज की स्मृति ताजी रहने दो, अन्त तक घर जाने तक ही सही।"—उसका नाटकीय ढँग से कहना, हँस पडी सुनन्दा और हँसती ही रही आई।

सुप्रकाश के गम्भीर मुख की गम्भीर छाया तक उस झरने-सी हँसी के निकट हार मानकर बह गई।

"बाहर आँधी-पानी, और भीतर हँसी का तूफान" पीढे पर बैठता हुआ बोला प्रकाश।

"यह तर्क से डरते है।"—थाली सुप्रकाश के सामने रखकर बोली सुनन्दा।

"मै भी डरता हूँ मनी। केवल तर्क ही नहीं, अजी जब यह अपनी कटु जानकारी कहने लगती है तब मैं डर जाता हूँ, समझे मनी। तब ऐसा भागता कि हफ्तो घर नहीं लौटता।"

मुस्करा कर सुनन्दा ने रबडी का कटोरा प्रकाश के आगे रखा—

"जल्दी मे केवल, दाल, चावल और एक तरकारी ही बना पाई हूँ, रबडी और केला से खा लो।"

"चलू भाभी, प्रकाश, चलो बीच मे तुम्हारा स्कूल पडता है, छोडता जाऊँगा, अरे भाभी, देखा भाभी कैसा भुलक्कड हूँ, जिस लिये आया, वही भूल गया, कल मेरा जन्म-दिन है।"

"सच"!

"हाँ, दादा ने तुम्हे आज बुलाया है। पूरी व्यवस्था तुम्हारे सिर पर है ? समझी।"

"अच्छा" धीमे स्वर से वह बोली।

"गाडी कब भेजूं ?"

"दोपहर मे भेज दीजिये।"

"चलो भाई देर हो रही है। दादा मेरी राह देख रहे होगे। कितना खाते हो ? यो प्रकाश, आज रात मे तुम और भाभी, वही भोजन करना, दादा ने विशेषकर कह दिया है।"

२

तीन दिनो की विरामहीन वर्षा के बाद बूँदे तब बन्द थी। कभी मेघो की आड से सूर्य झाँक उठता। मुट्ठी भर धूप की झिल-मिली को शहर निवासी आनन्द से निहारते। मानो वर्षो बाद कोई अमूल्य निधि मिल गई हो।

तब सुनन्दा गृहकार्य समाप्त कर साफ-सुथरी साधारण काले कोर की साडी पहने तैयार बैठी हुई थी। बालो मे कघा कर एक बडा-सा जूडा वह पहले ही बाँध चुकी थी। जेवर उसे पहनना नही था। होते तो शायद पहन भी लेती। स्वर्ण के नाम से जाने कब के बने पुराने फूल कान मे पडे हुए थे। गाढे नीले रग की काँच की चूडियो मे एक हाथ मे केवल एक बच रही थी, दूसरे मे दो।

चमकती हुई कार पहुँच गई। फटे चप्पलो को घसीटती उसने बाहर के द्वार पर ताला बन्द किया। फिर चाबी अपने हैडबेग मे रख कर गाडी पर जा कर बैठ गई। सुन्दर-दर्शन मे था केवल उसके हाथ का

चमडे पर सुन्दर चित्र अकित वही बेग और स्वय वह। यह बेग उसने बना लिया था सो भी चमडा मनीश ने लाकर दिया था। और बनाने के लिए यन्त्रादि भी। सो उसने दो तो मनीश के फरमाइश अनुसार उसे बनाकर दिए। एक सुप्रकाश को और बचे हुए चमडे से स्वय अपना बेग बना लिया था।

गाडी उडती-सी चलती चली जाती। भीतर बैठी हुई सुनन्दा का जी अस्वस्थ हो रहा था। इन दिनो जब भी वह मोटर पर बैठती, आँसू की बूदो से जी उसका भर उठता—वे ही बूदे जिन्हे कि उसने जबरन मन के किसी एकान्त कोने मे छिपा कर, दबा कर रख छोडा था। वे ही बूँदे जिन बूँदो का इतिहास केवल मन की व्यथा से ही सुना हुआ नही था, वरंन् हृदय की खूनी आहो से ओत-प्रोत था। हाँ, हिन्दुस्थान मे पहुंचने के बाद। नही—नही। अपने इस नवीन जीवन, नवीन प्रेम, नए वातावरण मे आने के बाद से उसका दृढ प्रण था कि आँसू की बूदें मन के कोने मे ही रही आवेगी। कही उसके यह निर्दयी साथी आँसू ससार के सामने व्यक्त हो कर उसे केवल दर्शनीय मात्र, किसी की मौखिक दया की पात्री न बना देवै।

तब वह उसकी पराजय होगी न, अपमानित पराजय। स्वार्थी पुरुष के सामने नारी की हार। पशु-तुल्य नर के सामने नारी की पराजय। पशु? किंतु इस जीवन मे आने के बाद से शायद पुरुषो को वह कपटी, निर्दयी, पशु और जाने क्या-क्या समझने लग गई।

कार चलती चली जाती, पथ की धूल गोलाकार उडती—गाडी के पहियो की रगड से। और तब उस धूल के प्रति निहारती हुई उसकी आत्मा अकुला उठती। यह गाडी? परन्तु उसकी अपनी कार—

अरे यह क्या से क्या सोचने बैठ गई है आज इतने दिनो के बाद सुनन्दा? दातो पर दाँत दबाकर उसने अपने आपको नियन्त्रित कर लिया।

वृहत् उद्यान के लौह फाटक के सामने कार आकर रुकी। सुनन्दा उतरी, द्वार पर हास्य-मुख, सौम्य-दर्शन वृद्ध श्रीनाथ खडे थे। सुनन्दा ने उन्हे प्रणाम किया। श्रीनाथ ने सुनन्दा के मस्तक पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया—"सावित्री के समान हो। तुम्हारी ही राह देख रहा था। सब काम पडा हुआ है। इतनी देर क्यो लगाई ?"

"नही तो दादू, गाडी पहुँची कि मै बैठ गई। कब से तैयार बैठी थी।"

"तुम कहाँ गए थे जी ?" श्रीनाथ ने ड्राइवर से पूछा।

"छोटे साहब ने मुझे दुकान पर भेजा था, वहाँ देर लग गई।"

"चलो दादू, जल्दी-जल्दी काम करना है।"—कहती हुई सुनन्दा अन्तःपुर पहुँची, पीछे-पीछे श्रीनाथ।

इस जीवन मे आने के बाद यदि सुनन्दा के हृदय मे किसी पुरुष के लिए कुछ श्रद्धा बच रही हो तो इसी श्रीनाथ के लिए। पाश्चात्य रहन-सहन किंतु प्राच्य सभ्यता के मतावलम्वी इस पुरुष को न जाने क्यो वह श्रद्धा करती, और कदाचित स्नेह भी करने लगी हो तो विस्मय नही। हाँ, पिता के समान वह स्नेह।

श्रीनाथ को घर और बाहर सब पुकारते 'दादा', कोई अधिक सम्मान प्रदर्शन कर कहता 'दादा जी'। वही एक थी जो सबसे निराले ढग के सम्बोधन से सम्बोधित करती। पुकारती—'दादू'

उस दिन पडोस की यमुना देवी ने कहा था—"इस सुनन्दा लडकी की सब बातें निराले ढग की होती है।"

"क्यो ?"—पूछा दादा ने।

"देखो न दादा, हम सब तो तुम्हे दादा जी कहते है और वह कहती है दादू।"

"फिर इसमे बेढगापन कहाँ है यमुना ?"

"है ही, अजी दादा, दादू भी कोई पुकार है ?"

तब वृद्ध जरा सी स्नेह भरी हँसी हँसकर कहने लगा था—"उसे समझ सकना जरा कठिन है यमुना। सब लोग जिस काम को करते है, कहते है, मेरी नन्दा को वह पसन्द नही। लडकी मुझे और भी निकट अपनाना चाहती है। अपने दादू को वह दादू ही बनाकर रखेगी। दूसरे के दादा को वह क्यो अपनाने चली ? जूँठन पर उसे कोई ममता नहीं। वह तो साक्षात् लक्ष्मी है लक्ष्मी।" बस उसी दिन से श्रीनाथ सुनन्दा को लक्ष्मी कहने लग गया। और अपमानित-सी यमुना चल दी थी।

हाल मे पहुँच कर सुनन्दा ने सूक्ष्म दृष्टि से चहुँ ओर देखा, फूल-पत्तों से हाल सजा हुआ था।

"यही चाय-पान होगा न ? अभी बहुत काम बाकी है। एक डाइनिंग टेबिल से काम नही चलेगा दादू, और कई छोटे-बडे टेबिल चाहिए। यह पियानो बीच से हटाना पडेगा। सीताराम, विन्दा, तुम दोनो इसे उठाकर उस कोने मे रखो। यो नही, जरा तिरछा करके रखो।" इसके बाद वह क्षिप्रता से काम मे जुट गई।

श्रीनाथ ने कहा—"यह सब होता रहेगा। पहले उस घर मे जाकर देखो कि फल, मिठाइयाँ, केक, पेस्ट्री आदि जो आए है, वह सब कम तो नही पडेगे ? और लक्ष्मी कचौरी तुम बनाओगी। चाय आदि बावर्ची को बतला देना, अकेली तुम कहाँ तक करोगी ?"

हँसकर वह बोली—"सब कर लूगी दादू, तुम तब तक जाकर जरा आराम कर लो, नही तो जी खराब हो जाएगा। अभी बारह बजे हैं। पाँच बजे कही पार्टी है। समय बहुत है।

स्नेह भरी दृष्टि नन्दा के परिपुष्ट शरीर पर डालता हुआ वृद्ध बोला—"तुम्हारी तरह मेरी लक्ष्मी बिटिया रहते हुए मै सोचूँ ही क्यो ? लडकी की आँख चारो तरफ है मुझे कब आराम की जरूरत है, कब भोजन की, वह सब जानती है।"

जरा-सी मीठी हँसी बिखेर कर सुनन्दा चल दी।

भारी नारगी रग का पर्दा हटाकर जब सुनन्दा श्रीनाथ के कमरे मे पहुँची, तब श्रीनाथ दिवा-निद्रा समाप्त कर एक छोटी सन्दूकची लिए बैठे हुए थे।

"तुमने बुलाया है दादू ?"—मैदा सने हुए हाथों को लटकाए हुए सुनन्दा ने पूछा।

"हाँ जरा इधर आओ लक्ष्मी।"

सुनन्दा निकट पहुँची, श्रीनाथ ने सन्दूक से दो पुराने चाल के मोटे, भारी कडे निकाले और उसके मैदा सने हाथो मे एक-एक कर डाल दिया, कहा—"उस दिन तुमने मुझे हीरे की अँगूठी वापस करवा दी थी।"

"मै जेवर-श्रोवर नही पहनती दादू।"

श्रीनाथ हँसे—"ठीक है, उस दिन तुम दादू की दी हुई अँगूठी वापस कर अगूठी का नही किन्तु आपने दादू का अपमान अनायास कर सकी थी, परन्तु इन कडो की बात निराली है। यह कडे तुम्हारी मृत दादी जी के हाथ के हैं। अब निकालो तो सही इन्हे।"

नासमझ-सी सुनन्दा कुछ देर चुप खडी रही। फिर सहसा दोनों हाथ जोडकर प्रणाम किया। वह प्रणाम उन कडो की अधिकारिणी उस मृत आत्मा के लिए शायद हो। और फिर चलने के लिए लौटी।

भोला भृत्य पहुँच गया—"साहब दुकान से यह बिल आया है।"

हाथ बढाकर नन्दा ने बिल लिया एव श्रीनाथ को दे दिया। भोला से बोली—"तुम चौका देखते रहना, मैं अभी आ रही हूँ।"

श्रीनाथ तब बिल देख रहे थे। उस श्रावण मास मे भी ललाट पर मुक्ताबिन्दु से स्वेद-विन्दु झलकने लगे। अपने आप मुह से निकला—"मनीश इतनी व्हिस्की पीने लगा है!"

बिल टेबिल पर पडा हुआ था, कौतुक से नन्दा ने उस पर आँखे फेरी;

वह सिहर उठी, स्थाणुवत अचल वहीं जम-सी गई।

"दादू !"—देर के बाद उसने पुकारा।

उस गभीर स्वर ने श्रीनाथ को चकित कर दिया। उसने नन्दा के प्रति देख भर लिया।

"मनीश बाबू इतनी शराब पीते है, आप उन्हे क्यो नही रोकते ?"

"पहले मनीश इतनी नही पीता था। बैरिस्टरी पढने विलायत क्या गया कि शराब पीना सीख गया। सचमुच लक्ष्मी मैं नही चाहता था कि मनी विलायत जाए। क्या करूँ, विना मा-बाप का लडका था, जब वह ज़िद्द करने लगा तब 'नाही' नही कर सका। वहाँ से लौटकर मेरा मनी शराबी बन गया है।"

"तुम उन्हे रोको न दादू।"

"सोचता हूँ रोकूँ।"

"तो ?" कौतुक से नन्दा ने पूछा।

"नही रोक सकता लक्ष्मी, जी दुखता है। लगता है उसकी चाह की, पसन्द की चीजो से क्यो रोकूँ ? बच्चा दु खी हो जाएगा।" और ज़रा रुक कर कहने लगे श्रीनाथ—"यह जो आज का मेरा घर, रहन-सहन देख रही हो न, पहले ऐसा नही था। मैं एक पुराने विचार का आदमी उसी ढँग से रहता था। परन्तु पीछे मनी की पसन्द के अनुसार सब कुछ बदलना पडा। और बूढापे मे मैं भी अप-टू-डेट बन बैठा।" कह कर वृद्ध जी खोल कर हँस पडे। हँसी रुकी तब कहा—"इतना धन, सम्पत्ति मेरे किस काम का ? सब उसी का तो है न। मुझे किताबे चाहिएँ सो मेरी यह लायब्रेरी है ही। जानती हो लक्ष्मी, मनी को किस स्थिति मे मैंने पाला ? इसके माता-पिता मनी को जन्म देकर ही हैज़ा के शिकार बने। वह मेरा इकलौता बेटा था। बेटे और बहू के शोक से गृहिणी ने ऐसा पलग पकडा कि वर्षो बीमार रही आई। वे फिर कहाँ उठी ? नौकरो पर क्या भरोसा ? मैं स्वय उनकी और मनीश की सेवा किया करता। रात मे

मनी मेरी छाती पर चढ कर सोता था।" वृद्ध ने आँसू की दो बूदें पोछी। "मनी को उसके मनोनीत किसी भी काम से, इच्छा से रोकते मुझे सीने पर भारी धक्का लगता है, नन्दा।"

स्तब्ध निर्वाक् खडी सुनन्दा श्रीनाथ के हृदय के खेद की गहराई को नापने-तौलने-सी लगी और एक समय वह सोच उठी—कैसा अन्धा दादू का यह स्नेह है— जो कि अपने प्रिय को, ममत्व की वस्तु को कीचड मे सनते हुए देखकर भी नीरव रहे, अन्धे कूप मे गिरते देखकर भी रोक न सके ?

गम्भीर विस्मय से सोचती जाती नन्दा— यह कैसा प्रेम है जोकि अपने प्रिय को अग्नि के प्रकोप से बचाने की चेष्टा नही करता ?

क्या है यह ? दूसरे पल अन्त करण से उत्तर आया। यह केवल कापुरुषता और दुर्बल मन की कमज़ोरी है। नही-नही। कहाँ प्रेम? कैसा ममत्व। वरन् कोरा स्वार्थ ही है। नन्दा द्रुत एक सिद्धान्त के प्रवेश-द्वार तक पहुँची---ऐसा एक स्वार्थी पुरुष श्रद्धा व सम्मान का पात्र नही बन सकता है। नही, कभी भी नही।

सोचने को तो इतना सोच गई नन्दा। किन्तु न जाने क्यो श्रीनाथ के प्रति उसकी श्रद्धा द्विगुणित हो गई। कदाचित् यह बात उसी के निकट तक अनजान रह गई हो।

३

ताँगे, रिक्शा और मोटरो से श्रीनाथ के गृह का पथ भर उठा। गाडियाँ आती ही चली जा रही थी। ड्राइग-रूम मे वृद्ध हँस-हँसकर अतिथि-अभ्यागतो का स्वागत कर रहे थे। नाना वर्ण के स्त्री-पुरुष तथा उनके विचित्र वस्त्रो की विचित्रता दर्शनीय थी।

मनीश को कचहरी मे देर लगी। जब वह घर पहुँचा तब घर मे भीड थी। उपहारो की बारी आई। नाना प्रकार के फूल के तोडे, मालाएँ और जाने क्या-क्या। किसी ने रूमाल दिया, किसी ने फोटोफ्रेम, राइटिंग पेड। श्रीमती चौधरी का उपहार का छोटा-सा वेलवेट केस खोलकर मनीश हँस पडा—"चौधरानी जी, क्या यह मूल्यवान् अँगूठी मेरे लिए लाई है ? अरे आपने तो मुझे बच्चा ही समझ रखा है ?"

"क्यो मनीश ?"

"अजी बच्चो ही को उपहार दिया जाता है। और मै कहता हूँ यह जन्मदिन ही क्यो ? मैने दादा को कितना मना किया। वे मानते नही।" लज्जित हास्य तब भी मनीश के मुख पर लिपटा रहा।

श्रीनाथ ने पौत्र के मुख की बात रोक सी ली—"सब लोग अपने बच्चो की जन्म-तिथि मनाते है। बूढे और जवान या बच्चे का प्रश्न इसमे नही उठता है, न एला ?"

लाल फ्रेम युक्त जापानी चश्मे के अन्दर से एक बार एला ने पिता, परमेश्वर चौधरी के प्रति देखा, वह दूर बैठा था और बारीक आवाज से बोली—"जरूर दादा जी। बस, इन्ही सब बातो के लिए ममी और पापा झगडते रहते है न। लेकिन मेरी ममी, भला वे कब किसी से डरने और दबने वाली है ? सर एम० एन० की लडकी वे, किसी की बाते क्या सुनती ? वे मेरा जन्म-दिन मनाती है। पापा की चलती तो आज मै मूर्ख बनी रही आती। आज जो कालेज मे पढ रही हूँ वह भी ममी की जबरदस्ती और हठ से। ममी के सामने पापा की नही चलती।"

इस अति माडर्न लडकी की बाते श्रीनाथ को कही खटकी। वे चुप रह गए।

सुप्रकाश को प्रवेश करते देखकर मनीश बोला—"तुम अकेले कैसे आए प्रकाश ? और भाभी ?"

उत्तर दिया श्रीनाथ ने—"सुनन्दा तो दोपहर से यही है। बिना

उसके इतना बडा काम कौन करता ! जब से आई है, बस काम और काम। कचौरी बना-बनाकर ढेर लगा रही होगी। मनी, तुम जाकर उसे यहाँ बुला लाओ।"

मनीश उठा और भीतर पहुँचा। काम-काज शेष कर सुनन्दा परम निश्चिन्तता से सेक्सपियर का मेकबेथ खोलकर बैठी हुई थी।

विस्मित मनीश कह उठा—"अजी वाह, भाभी सब निमन्त्रित पहुँच चुके है और आप यहाँ आराम से किताब खोले बैठी हैं। चलो उठो।"

किन्तु सुनन्दा ने उठने की चेष्टा मात्र नही की, बोली—"पुस्तक पढना क्या कोई पाप है ?"

"कौन कहता है? लेकिन यह समय पुस्तक पढने का नही है। उठो भाभी।"

उसने विनय की—"मैं भीड-भाड मे नही जाती मनीश बाबू।"

"क्यो ?"

"अपना-अपना सिद्धान्त तो है न।"

मनीश ने उसके हाथ की पुस्तक खीच कर दूर फैंकी। चकित होकर कहा—"यह तो मैकबेथ है। इगलिश तुम जानती हो ?" और तुरन्त स्वय ही हँसकर उत्तर दिया—"इगलिश तुम क्या जानो, फिर सेक्सपियर की इगलिश। अच्छा, सेक्सपियर का फोटो देख रही होगी न भाभी ?"

मीठी मुसकान से नन्दा ने कहा "हाँ।"

मनीश ने नन्दा का हाथ पकड कर खीचा—"चलो।"

"नही।" उठकर खडी नत-मुखी नन्दा बोली—"नही"

लगा मनीश को उस छोटी-सी 'नाही' मे तीस मन का भारी पत्थर अड गया है, उस पत्थर को हटाने की ताकत उसमे तो है ही नही, वरन यो कि ससार मे शायद ही ऐसी कोई शक्ति हो—जो कि उसे हटा सके। क्षुब्ध अपमान से मनीश चल दिया।

श्रीनाथ ने पूछा—"क्या कर रही है नन्दा ? अच्छा-अच्छा, मै ही लिवाए लाता हूँ। देखना चौधरी भाई, आज के दिन मे भी साक्षात्

लक्ष्मी हमारे घर मे हुआ करती है। अभी उसे लेकर आ रहा हूँ।"

मनीश को सुनन्दा सहज ही लौटा सकी थी, किन्तु पितृव्य तुल्य सदाशिव-से श्रीनाथ की बात टाल सकना सहज नही हो सका। उसे वृद्ध के पीछे-पीछे ड्राइग रूम मे आना पड़ा। हाल के मध्य के प्रकोष्ठ मे गोल मार्बल के टेबिल को घेर कर निमन्त्रितगण कुर्सियो पर बैठे चाय-पान कर रहे थे। और भी कई टेबिले इधर-उधर रखी हुई थी। सबके आग्रह से गृहकर्त्ता, नन्दा के साथ बीच की गोल टेबिल के निकट बैठ गए। बगल की कुर्सी पर बैठा मनीश।

मनीश ने आँखे पसार कर देखा–सिल्क, जार्जेट, नाना वर्ण के वस्त्र, माणिक, हीरा, मुक्ता आदि के आलोक का उपहास करती-सी जैसे कैलाश की योगिनी गौरी साधारण वस्त्र पहने अपने गौरव मे मस्त-धीरता से आकर बैठ गई। देखा मनीश ने प्रत्येक के प्रति। लगा मनीश को उपहास, अवहेलना पूर्ण हास्य प्रत्येक के मुख पर क्रीडा कर रहा है। और उसकी दृष्टि लौटी सभ्य, सुशिक्षित एला के प्रति, अवहेलना के साथ-साथ उसकी दृष्टि मे जो कुछ था, उसे देखकर मनीश विस्मित हो उठा। उस दृष्टि मे था विस्मय, प्रगाढ विस्मय एव सम्भ्रम की एक जीवन्त छाया।

सब से पीछे मनीश की दृष्टि पडी नन्दा पर, न उस मुख मे अपदस्थता का कोई चिह्न था, न अस्वच्छन्दता। सदा प्रफुल्ल वह आकृति। मनीश ने आराम की श्वास ली—नही, वह इस नारी की किसी प्रकार की अवहेलना नही सहन कर सकता।

चौधरी ने समूची कचौरी मुँह मे भरकर प्रशसा का पुल बाँध दिया—"श्रीनाथ दादा, अजी, वाह, कचौरी क्या बनी है, जैसे रसगुल्ला हो। मुँह मे डाला और गायब।"

श्रीनाथ आनन्द गद्गद् हो उठे—"क्यो न हो। फिर बनाया किसने है? तुम से इनका परिचय करवा दूँ, यह है मिसेस राय, मेरी बेटी सुनन्दा

और आप है श्री परमेश्वर चौधरी, एला के पिता। हाँ, परमेश्वर ! इन्हीं ने यह सब बनाया है।"—ज़रा रुककर एव आँखे बन्द कर कह चले श्रीनाथ—"सोचता हूँ परमेश्वर, आज यदि ऐसी लडकियाँ हिंदुस्तान के घर-घर मे हो तो भारत का पुरातन गौरव और सभ्यता पुनः भारत का मुख उज्ज्वल कर सकेगी। ऐसी सुरूप और गुणवती लडकियाँ आजकल देखने ही मे नही आती।"

चौधरी को मानो मुखरोचक चर्चा मिल गई, कहा—"सच दादा, आज की लडकियो की बाते कुछ न पूछो। बस, मुह पर सफेदी पोतना, ओठो को लाल रग से रगना और सिनेमा देखना। साडी तो ऐसी झीनी पहनेगी कि यदि शरीर बेपर्दा हो जाए तो कुछ परवाह नही। एक दिन बावर्ची न आए तो होटल की हवा खाओ। अजी बालो तक को काटपीट कर साफ कर मर्द की तरह बनाना एक फैशन है। मेरी एला ही को देखो न—"

चौधरानी झुँझला पडी—"अजी क्या अनाप-शनाप बक रहे हो। सर एम० एन० की लडकी, मै बनाऊँ खाना ? वह तो यो कहो कि उस घर से तुम्हारा सम्बन्ध होने से आज इस पोज़िशन तक पहुँच सके। क्या लडकी को मूर्ख बनाकर रखती ?"

पत्नी के क्रोध ने पति का कण्ठस्वर अवरुद्ध-सा कर दिया। एला का मन किन्तु इन सब तर्क-वितर्क से दूर था। आँखे उसकी गडी रही आई सुनन्दा पर—रूप, किंतु ऐसा रूप ? यह तो वह सौन्दर्य है जो कि स्वय सिद्ध, एकाकी विश्व के प्राङ्गण मे अपनी स्वतन्त्रता लिए रह सके। सोच रही थी एला—इस असभ्य, अशिक्षिता नारी ही पर जैसे ईश्वर ने अपनी पूर्ण कला, सारा सौंदर्य निचोड कर अपनी सृष्टि को सफल करना चाहा हो। किंतु ऐसा क्यों ? क्या ज़रूरत थी ईश्वर को ऐसा एक विश्वजयी रूप एक असभ्य नारी को देने की ? जल्दी से एला ने अपना बेग खोला, उसे ज़रा ऊपर याने मुँह तक उठाया एव उसमे जडे हुए

दर्पण मे अपनी आकृति देखी और पाउडर लगा हुआ छोटा वफ उसमे से निकाला, उसे मुँह पर फेरा, थोडा लिपस्टिक ओठो पर फेर लिया, फ़िर वेग बन्द करके केक का टुकडा मुँह मे डाला।

श्रीमती भटनागर जो कि केवल एक माह पहले सिनेमा मे अभिनय करने उतरी थी, आश्चर्य से सुनन्दा से पूछ रही थी—"इतनी ढेर-सी कचौरियाँ आपने अकेले बनाई सुनन्दा देवी ?"

कौतुक से सुनन्दा ने उत्तर दिया—"बनाई तो है, क्यो ? इसमे आश्चर्य क्या है श्रीमती भटनागर ?"

"ओ माई गाड ! मै तो मर जाती। लेकिन गाँव की लडकियाँ इन सब कामो मे अभ्यस्त होती हैं। लिखने-पढने से उन्हे सम्बन्ध नही, घर का काम, बासन माँजने से लेकर गोबर के कण्डे पाथना आदि सब वे किया करती है। और इसे वे पसन्द भी करती है। बात यों हैं कि आप लोगो का शरीर मजबूत हुआ करता है।"

सुनन्दा जरा-सा मुसकरा भर दी।

उधर मि० भटनागर और दीपेन मे घोर तर्क छिड रहा था—महाभारत पर। दीपेन कह रहा था, भारतीय लेखको की कल्पना बिना सिर-पैर की हुआ करती है। रामायण के रावण को देखो, बारह हाथ, मस्तक, आँखे, अजी बच्चो की-सी बाते। यो पचासो उदाहरण हैं। अस्वाभाविक कल्पना, अरे यार, कल्पना को पवन के पलने पर चढा कर सैर करो लेकिन स्वाभाविकता पर तो ध्यान रखो। लेकिन अंग्रेजी साहित्य मे ऐसा नही पाओगे।"

उत्कर्ण हो कर कमरे के अधिकाश नर-नारियो का ध्यान उस तर्क पर केन्द्रीभूत हो रहा था।

भटनागर ने कहा—"अजी, रखो भी तुम्हारा इगलिश साहित्य। वह रावण था—राक्षसो मे सब कुछ होना स्वाभाविक है।"

"राक्षस ?"—दीपेन व्यग्य से हँस पडा, "तुम-सा उच्च शिक्षित विद्वान्

भी राक्षस, दैत्य, दानव की सत्ता माने ? हद्द कर दी यार ।"

पराजित होकर भटनागर का क्रोध उग्र हुआ, तर्क का स्थान कुतर्क ने ले लिया--"याने तुम मुझे मूर्ख कहना चाहते हो, यही न ?"

"बिल्कुल नही । तुम तो चिढते हो । अच्छा चौधरानी जी से पूछो, कहिए चौधरानी जी, वास्तव मे कभी दानव-दैत्य का अस्तित्व रहा है या नही ? याने वे आदमी थे या दानव ? रावण को ही लो न । चौधरानी जी की बात तो मानोगे न ?" हाल भर के गण्य-मान्य व्यक्तियो के सामने श्रीमती चौधरानी को ऐसा बढा चढा सम्मान दिया गया सो ठीक है । और चौधरानी अहकार, गर्व से फूली नही समाती, यह गलती नही है, किंतु कठिनाई यह रही श्रीमती के लिये कि महाभारत, रामायण से कभी सम्पर्क ही नही रहा ।

अकुला कर श्रीमती ने पति के प्रति निहारा । चौधरी उस दृष्टि का अर्थ समझा । कहा—"आप कहिए मिसेस दवे ।" मिसेस दवे की अवस्था उससे भी कही शोचनीय हो उठी । पिता के घर उसने कभी महाभारत-रामायण का नाम तक नही सुना । क्रश्चन पिता, हिन्दुस्तानी माता की सन्तान मिसेस दवे ने कहा--"मैने कभी इन बातो पर सोचा नही । आप कहिए मि० मनीश ।"

मनीश हँसकर बोला—"मै तो भाई, तर्क-वितर्क से कोसो दूर रहता हूँ । मेरे बदले मेरी भाभी कहेगी । कहो तो भाभी । रावण दैत्य था या मानव ?"

जरा-सा मुसकरा कर सुनन्दा ने कहा-"रावण ? आदमी था न । उन दिनो शायद जगली, असभ्य मनुष्यो को राक्षस की उपाधि दी जाती रही हो । युगो का धर्म और उसकी देन भी तो हुआ करती है न । विशेषत परिस्थिति और वातावरण पर सब बाते निर्भर भी तो रहा करती हैं ।" धीमा, दृढ, सयत वह स्वर, उस स्वर ने हाल के अन्दर ऐसे एक वातावरण की सृष्टि कर दी कि कुछ क्षण तक उग्र तर्क मे समाधि-सी पहुँच गई ।

"मैं यही कहता हूँ कि वह आदमी था। और मेरा तर्क तब बिना नीव का नही रहता और यह सहज ही प्रमाणित होता है कि भारतीय लेखको की कल्पना ऊटपटाग होती है।" उत्साहित दीपेन ने कहा। एक बार सबके मुह पर आँखे फेरता हुआ कहने लगा—"मनीश की आप भाभी है और मेरी भाभी नही ?"

"भाभी तो हूँ भाई।"—उन विस्मित दृष्टियो के प्रति ध्यान दिए बिना नन्दा बोली—"परन्तु आप एक बात भूल रहे हैं भाई साहब। हमारे उस दिन के कवि और लेखको की रचनाएँ गभीर और अतलस्पर्शी हुआ करती थी। वे अलकार पसन्द करते थे। यो रावण के जो बारह हाथ आदि का वर्णन है, वास्तव मे वैसा नही है। मेरा अपना तो विचार ऐसा है भाई साहब, कि उतने ढेर से हाथ, मस्तक, आँखे आदि यह सब उस रावण की दुष्ट बुद्धि का, हाँ, तीक्ष्ण बुद्धि ही का वर्णन है, याने मूर्त रूप है।"

"ऐसा" ? सिर हिलाते हुए दीपेन ने कहा—"केवल ऐसा।" चौधरानी बोली ?—"हिन्दुओ की भी कैसी रुचि है। छत्तीस कोटि देवता बना रखे है, और उन्हे मानने वाले असभ्य, अशिक्षित यह हिंदू, इनकी बाते निराली ही होती है।"

"ऐसा तो नही है चौधरानी जी, उस दिन का हमारा भारत कितना सरल विश्वासी था, वह उनके छत्तीस कोटि देवताओ के निर्वाचन से समझा जा सकता है। याने गुण का वे ऐसा आदर-सम्मान करते थे कि गुण मात्र को देवत्व के आसन पर बैठाकर तृप्त होते थे। और अवाध रूप से गुण को देवत्व देते, ऐसा होना कोई असम्भव नही है न ? वैसे तो देखा जाए कि तुलसी भी देवत्व का आसन पा सकी। क्यो ? क्योकि हम सब लोग जानते है—तुलसी कितनी उपकारी, गुण सम्पन्न और उपयोगी है। उसकी पत्तियाँ कई दवाओ मे काम आती है। और यो हो सकता है कि उस दिन का सभ्य समाज जगली असभ्यता को राक्षस, दानव आदि के

नाम से पुकारा करता हो। या तो राक्षस नामक कोई जाति विशेष ही रही हो।"

उस असभ्य मूक नारी की बातचीत करने की रीति को देखकर सब से अधिक विस्मित हो रही थी एला। और यदि प्रभावित भी हो उठी हो तो विस्मय नही।

मनीश बोला --"भाभी के मतामत, सिद्धात विचित्र हुआ करते हैं दीपेन।"

नन्दा मुसकराई।

दीपेन ने कहा--"चाहे भाभी की सूझ सही निकले। फिर यह तो मानना पडेगा कि ऐसी कल्पनाओ की अस्वाभाविकता अग्रेजी साहित्य मे नही है। ठीक है न भाभी ?"

"नही, आप तो भाई साहब एकागी विचार कर रहे है। मानती हूँ इग्लिश साहित्य भारतीय साहित्य से कही सहस्र गुणा बढा-चढा है। यो कि भारतीय साहित्य से उसकी तुलना नही हो सकती। परन्तु इग्लिश कल्पना मे कल्पना की अस्वाभाविकता नही है, याने बिल्कुल ही नही है ऐसा कहने से गलत कहना होगा।"

जरा सकोच करती हुई चौधरानी ने पूछा-"आप कहाँ तक पढी है मिसेस राय ?"

अनमनी-सी वह बोली—"यो कुछ पढ लिया है। अन्तिम परीक्षा के समय वह अनहोनी बात, हिंदुस्थान का विभाजन"—कहते-कहते सहसा नन्दा उठकर खडी हुई, सुप्रकाश से कहा—"कब की घर से निकली हूँ, चलो।" और सब को नमस्कार कर द्वार से निकल गई। उसके गमन-पथ की ओर विस्मय से सब देखते रह गए।

४

रविवार का दिन। दिवा-निद्रा शेष कर सुप्रकाश हाथ-मुँह धो-कर तौलिये से पोछ रहा था कि गर्म-गर्म समोसे एक तश्तरी मे एव दूसरे मे पपीते के तथा गन्ने के कई टुकडे लेकर पहुँची सुनन्दा। टेबिल पर तश्तरियो को रखकर सुराही से गिलास मे जल ढाला और चाय लेने के लिए लौटी।

सुप्रकाश जल-पान के प्रति देखता हुआ बोला—"खाने-पीने की परिपाटी देखकर सोचता हूँ नन्दा, तुम इतना सब कैसे कर लेती हो ? महीने के अन्त मे मै केवल सौ रुपये तुम्हारे हाथ पर लाकर रखता हूँ। उन गिने हुए सौ रुपयो से तुम इतना कैसे कर लेती हो ?"

"हो जाता है। तरकारी खरीदना नही पडता। मेरी छोटी-सी फुलवाडी उसमे थोडी बहुत तरकारी भी हो जाती है। यो कि उन्हे बेच भी देती हूँ, कुछ फल अपने घर होने लगे है। पपीता घर ही का है, पीछे की थोडी-सी ज़मीन को भी उपजाऊ कर दिया है।"

सुनन्दा चाय के दो कप लेकर लौटी। एक सुप्रकाश के लिए रखा, दूसरा स्वय कुर्सी पर बैठकर पीने लगी।

"आज सन्ध्या छ बजे की ट्रेन से मुझे बाहर जाना है—कई दिन शायद लग जाए। अकेली घर मे डरोगी तो नही नन्दा ?"

"पाकिस्तान के उस नृशसक, कठोर, अमानुषिक दृश्य को जो एक बार देख चुका हो, और उस निष्ठुरता का जो एक बार शिकार बन चुका हो, उसके लिए डर ? क्या कहूँ कहो तो ? तुम क्या सोचते हो कि उसके बाद भी क्या उसके मन मे स्वाभाविक सौन्दर्य कोमलता, भय, आतक जीवित बच रह सका होगा ?" सुनन्दा का स्वर उदास व्यथा से भरा हुआ था।

सुप्रकाश सकुचित हुआ। सामने बैठी उस निर्यायित नारी के प्रति वह देख तक न सका। सोच उठा—मूर्ख वह, अग्नि की दहनकारी शक्ति मे आज वह सन्देह कर बैठा ? बैठी हुई वह

कृश नारी दुनियाँ के सब कुछ को अस्वीकार कर अपनी सत्ता, अपनी महत्ता लिए ससार के एक तरफ खडी है—अटल शैल की भाँति, उस एक मुट्ठी भर की नारी को घेर कर जो पाशविक अत्याचार की कथा मूर्त हुआ करती है, दिन के प्रत्येक पलो मे। वह स्वय, हाँ, सुप्रकाश स्वय उन बातो से भली-भाँति परिचित है न। तब उसके अकेले रह सकने की आशका भय का प्रश्न उठा कैसे सका ? इस विदुषी नारी का यथा-पूर्व इतिहास जैसा तो आतकित है, वैसा ही दर्दीला।

"अजी, तुम चाय क्यो नही पीते। शरबत बना के पीना है ?"

"भूल गया था नन्दा।" मौन बैठा प्रकाश चाय पीने लगा।

"रास्ते के लिए कुछ बना दू ?"

"बनाओगी ? लेकिन क्या जरूरत है ?"

"और जब भूख लगेगी ?—मैं तब तक बना रही हूँ, तुम सूटकेस मे कपडे व जरूरी सामान रख लो। टार्च रख लेना।"

"पानी के लिए वह ढक्कनदार लोटा रख देना।"

"अच्छा" कहकर नन्दा चल दी।

इन दिनो सुनन्दा को पुस्तको के साथ अकेले घर मे दिन बिताना नही पडता। कोई न कोई आ ही जाता। उसके भक्तो की सख्या धीरे धीरे बढ रही थी। उनमे मनीश प्रधान था। कभी एला, श्रीमती भट-नागर, नलिनी आदि भी पहुँच जाती।

उस श्रावणी सध्या की अलसानी-सी बेला मे सुनन्दा की बैठक मनीश, दीपेन आदि से जीवन की स्फूर्ति युक्त हो रही थी। जैसे उस आलसता को अस्वीकार कर जिन्दगी के तप्त तेजमय स्फुलिग उभर उठे हो।

बात छिडी हुई थी—पाकिस्तान की लुटी हुई स्त्रियो पर।

दीपेन कह रहा था—"उनमे से ज्यादातर स्त्रियो ने आत्महत्या कर ली होगी।"

"क्यो भला !"मनीश के स्वर मे वस्मय था।

"सतीत्व को खोकर वे करेगी ही क्या ! जी नही सकती मनीश भारतवर्ष की स्त्रियो मे उस सतीत्व की शुचिता ऐसी घुली-मिली है कि वे अपनी सन्तान-वियोग का, उसका अपनी आँखो के सामने कत्ल होना चाहे सहले परन्तु सतीत्व को खोकर जीना ?—वह उनके लिए असम्भव है।" दीपेन का स्वर एक विशेषज्ञ की भाँति था।

"गलत भाई साहब।" धीरे बोली नन्दा।

"भूल क्यो ? कैसे भाभी ?"

"मेरे विचार से वह सब अभ्यास मात्र है।"

"अभ्यास ? केवल अभ्यास ?"

"जरूर, क्या सोचते हो कि वहाँ की स्त्रियोने आत्म-हत्या अवश्य कर ली होगी ? बिलकुल भूल। मेरे विचार से वे सब जी रही हैं, और जीवित रहेगी। मैं ऐसी कितनो को जानती हूँ—जो कि एक धर्म, एक सतीत्व, वश-गर्व, धन-मान् आदि खोकर, दूसरे धर्म, दूसरे वश आदि मे जीवित रह रही है। इसे अभ्यास नही फिर क्या कहा जा सकता है ?"

"आप स्त्री होकर ऐसी बाते मानती है ?"कहा दीपेन ने।

"किन्तु स्त्री होने से उसे मिथ्या ही कहना पडेगा, और सब कुछ जान-समझ कर उसे छद्म आवरण मे अपने को छिपाकर रखना पडेगा। क्या ऐसी भी कोई बात है भाई साहब ? यह किस शास्त्र मे लिखा है। कह सकते हैं आप ? यदि आप भली-भाँति खोज करे तो देख पाएँगे, सब कुछ अभ्यास मात्र है ?"

"सतीत्व आपके निकट केवल अभ्यास मात्र है ?"

दीपेन के मुखभाव को देखकर नन्दा खिलखिला पडी—"आप ऐसे घबरा गए मानो बज्राघात हो गया हो। ऐसा कब कहा कि मैं सतीत्व नही मानती या महत्व नही देती ? केवल प्रश्न है कि उसे खोकर नारी

जी सकती है या नही ? उत्तर मे पुनः कहूगी—वे आज भी जी रही है—एक नवीन जीवन मे। बस कहना मेरा इतना है।"

तो भी दीपेन अनमना-सा कहता रहा—"आपका कहना है—वह अभ्यास है ?"

"है ही और भाई साहब, यदि हम सतीत्व की दुहाई देकर उसकी महिमा का यशगान कर, और अपनी शुचिता लिए दूर हटकर खडे न रहे एव उन अभागिनो के लिए मुट्ठी भर जगह की व्यवस्था करने मे ध्यान देवे तो शायद दुनियाँ के सत् कार्य मे हम हाथ बटाकर कुछ कर सकेगे।" जरा रुक कर वह पुन कहने लगी—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का आमूल परिवर्तन जिसे कि मानवता का एक अद्भुत विकास कहा जा सकता है, ऐसे समय सतीत्व की कल्पित महिमा का गुण-कीर्तन कर और उसी मिथ्या गर्व मे गर्वित होकर हिन्दुस्तान को अब क्या योही सोते रहना चाहिए ?"

कमरा मौन से परिपूर्ण हो उठा, प्रत्येक अपनी-अपनी चिन्ता मे लीन उचित, अनुचित के विचार मे मग्न था। एला कब सुनन्दा के निकट पहुँची, यह बात वह स्वय शायद ही जान पाई हो।

अचानक उस फैशनेबुल लडकी ने सुनन्दा के दोनो हाथ अपने हाथो मे लेकर कहा—"जीजी, तुम कैसा सच-सच कह देती हो।"

उसके मुख के प्रति देखकर नन्दा सहमी, जरा-सी हँसने की चेष्टा करती हुई बोली—"यो सत्य तो असुन्दर और कठोर हुआ ही करता है बहन।"

"तुम कहती हो भाभी कि पाकिस्तान की लुटी हुई स्त्रियो को समाज मे जगह देनी चाहिए ?" कहा दीपेन ने।

"यदि ऐसा कहा जाय तो क्या अन्याय कहना होगा ?"

"परन्तु वे समाज मे जगह कैसे पा सकती है ?"

"पूछती हूँ भाई साहब, पा भी क्यो नही सकती ? उनका वास्तविक अपराध क्या है ?"

"अपराध ?"—वहाँ पर बैठे प्रत्येक के मन मे प्रश्न उठा कि—उनका अपराध क्या ? किन्तु गभीर चिन्ता के बाद भी वे किसी निष्कर्ष पर नही पहुँच सके। सच ही उनका अपराध क्या है ? क्या हो सकता है ?

देर के बाद दीपेन ने कहा—"अपराध कुछ नही है। जबरन उन पर अत्याचार किया गया है, बात सही है, परन्तु फिर भी उन्हे—"

मध्य पथ मे नन्दा गरज उठी—"तो भी उन्हे आत्म-हत्या कर लेनी चाहिए थी ? यही न ? जिससे आप पुरुषो का पुरुषत्व बचा रह आता। और कुछ लोगो को सतीत्व की महिमा का गुण-कीर्तन करने का अवकाश मिलता ?" —कहते-कहते हँसी नन्दा—विद्रोह पूर्ण वह मुसकान, वह कहती ही चली जाती—आहत सिहनी-सी उसकी आँखो से अग्नि की नही, वरन रक्त रगीन चिगारियाँ निकलती।

वाक्‌दीन मनीश उसे देखता रह गया। इस भाभी से उसका कुछ दिनो से परिचय हुआ था। परन्तु भाभी के इस उग्र रूप से उसका परिचय आज यह प्रथम बार हो रहा था न।

कह रही थी नन्दा—"सतीत्व, सतीत्व, सतीत्व। कोई एक सस्कार विशेष का शृखला-बद्ध रूप के सिवा है भी क्या वह ? कभी एक दिन समाज की सुशृखला रखने के लिए नारी के इस सतीत्व की नीव पडी होगी। और किसी युग के मानव ने उसे धर्म के पलने मे चढा कर सुदृढ कर दिया होगा। बस, है तो इतना ही न ? परन्तु ऐसी कोई बात वेद-पुराण मे नही लिखी है कि निर्दोष, अत्याचारिता नारी को,—जो कि पाकिस्तान की नृशसता मे पति, पुत्र, घर-द्वार, सतीत्व तक को लुटाकर जीवन-मृत बन गई हो, ऐसी एक को जबरन ही वेश्यालय मे जाने के लिए बाध्य किया जाए ? नही—नही, कही पर भी कुछ नही लिखा है। फिर आप कहिए भाई साहब, कि ससार मे जिस की जगह नही है, वह वेश्यावृत्ति के सिवा करेगी भी क्या ? वह ससार मे आई है,

मातृत्व के गौरव से गौरवान्वित होने के लिए, न कि वेश्याओ की सख्या बढाने के लिए।"

"भाभी—"

"और मैं कब कहती हूँ कि"—अपनी धुन मे नन्दा कह चली कि "समाज के आप लोग समाज मे उस बिचारी को स्थान दीजिए। वह तो अपना-अपना दृष्टिकोण और रुचि है। और इतना जरूर कह सकती हूँ कि मेरी ऐसी बहनो के लिए मेरे इस छोटे से घर का द्वार सदा जरूर खुला रहेगा।"

"आप—आप उन पतिताओ को घर मे जगह देगी सुनन्दा देवी ?" विस्मय, घृणा नलिनी के मुख की स्वाभाविकता पर अपना अस्तित्व जमाए हुए थी।

विधवा नलिनी के बनाव, शृगार के प्रति देखती हुई नन्दा हँस पडी कहा—"सतीत्व आखिर है क्या ?"

"सतीत्व—याने सतीत्व।"

"पाकिस्तान मे निर्यातित नारियो को आप असती कैसे कह सकती है ?"

"आपके विचार से वे सब सती है ?"

जरूर, मेरे विचार से जिसका मन एकनिष्ठ प्रेम का पुजारी हो, उसके शरीर पर जबरन चाहे जितना भी अत्याचार क्यो न किया जाए, वह अवश्य सती कहलाएगी। आप उन निर्यातित स्त्रियो से पूछिए, यद्यपि उनमे से कितनी ही उन अत्याचारी पुरुषो की सगिनी के रूप मे कदाचित मिल जाएँ, परन्तु अब भी उनका मन अपने पति पर आकृष्ट आप पाएँगी। और हाँ, यह जो हम एकनिष्ठ प्रेम की दुहाई दिया करते है, क्या हम अपने-अपने हृदय पर हाथ रखकर सच्चाई के साथ कह सकते है, शपथ-पूर्वक कह सकते है कि—"

"भाभी —" मनीश के उस आर्त स्वर ने सब को चौंका दिया।

तो भी नलिनी एव दीपेन कहते "आपकी बातो ने आज हमे चकित कर दिया। स्त्री होते हुए भी आप सतीत्व को नही मानती, पाकिस्तान मे जो स्त्रियाँ असती हो चुकी हैं—चाहे वे कैसे भी हुई हो; इससे कोई सम्बन्ध नही—आखिर हैं तो वे असती, आज का सत्य तो यही है न ? और आप उन्हे सती कहती है।"

सुनन्दा ने एक बार पूर्ण दृष्टि से उन दोनो के प्रति देखा, कहा—"पहले कहिए, असती का अर्थ क्या है ? एक बार पहले भी पूछ चुकी हू। आप लोगो ने इसका सही उत्तर नही दिया।"

"अजी वाह भाभी, असती—याने असती।"

"नही। मन-वचन-कर्म द्वारा जो नारी सतीत्व को नष्ट करे, वही असती कहलाती है। भारत के पुराण, गीता, मनुसहिता आदि पुस्तको को आप खोलकर देखिए, सती और असती का अर्थ आप सहज ही पा जाएँगे। धर्षिता नारी के लिए त्याग का विधान कही पर भी नही है। और पहली बात, आप लोग जो पाकिस्तानी अत्याचार पीडित नारियो के लिए असती की आवाज़े उठा रहे है, यह तो कहिए वे असती हुई ही कब ?"

इस प्रश्न के बाद कमरा एकदम नीरव, स्तब्ध रह गया। लगा मनीश को मानो उसके हृदय पर घूसा मार-मार कर नन्दा का प्रश्न दम्भ के साथ कह रहा है—ऐ पुरुष, ओ नर, कहो तो सही वे असती हुई कब ?

"आप क्या कह रही है ?"—एक ने उस स्तब्धता को भग कर कहा।

"ठीक कह रही हूँ महाशय। जिन पर जबरन अत्याचार किया जाए वे असती हुई कैसे और कब ? क्या उनके मन पर कोई अपना प्रेम, श्रद्धा का दीप जला सका है ? यदि अतर्कित भाव से कोई आपके शरीर पर अत्याचार करे, क्या आप स्वय उसके लिए जिम्मेदार होगे ? और आपका शरीर अपवित्र हो जाएगा ? उधर आपका मन तब भी आपका

निजी रहेगा न ? यो हमारे हिन्दु देवी-देवताओं के कितने मन्दिर अत्याचारी-गए तोड डालते है। तब क्या मन्दिर का देवता, शिवलिंग, काली, दुर्गा आदि अपवित्र, अस्पृश्य हो जाते है ? कहिए, जवाब दीजिए।"

सब एक दूसरे का मुह देखने लगे। एला सहसा सुनन्दा से सट कर बैठ गई। उसे नन्दा की बाते इतनी भली लग रही थी कि कदाचित नन्दा के भक्तो मे वह प्रधान बन गई हो तो विस्मय नही।

सबके चले जाने के बाद एला उठी और अनिच्छा के साथ बोली—"जा रही हूँ जीजी, क्या करूँ ममी नाराज हो जाएँगी। नहीं तो अभी न जाती। तुम्हारे पास से उठने को जी नही चाहता।"

वह चल दी।

५

सब चल दिए किन्तु मनीश जड की भाँति बैठा रह गया। नन्दा ने धीरे पुकारा—"ओ—मनीश बाबू।"

जैसे मनीश के ध्यान पर जगली हवा के झोके ने उद्दाम गति से पहुँच कर बवण्डर मचा दिया। वह असयत-सा कह उठा—"क्या ?"

"इतना क्या सोच-विचार कर रहे हो ?"

प्रश्नकारिणी के मुख की शरारत भरी हँसी ने मनीश को गभीर बना दिया। झुँझलाकर वह बोला—"चाहे कुछ भी सोचू—"

"याने मुझे क्या ? यही न ?" उसके अर्द्ध-समाप्त वचन को पूर्ण रूप देकर नन्दा खिलखिला पडी।

और मनीश ? उसकी शिक्षा ने मन की झुझलाहट को मन मे रोक दिया। गभीरता मे वह मौन बैठा रहा आया। परन्तु ज्यादा देर वह मौन

नही रह सका । एक समय पूछ उठा—"तुमने जो-कुछ कहा था, वे बातें क्या सचमुच तुम्हारे मन की रही, या यो ही कह दिया ?"

"कौन-सी बाते ?" नटखट हँसी की छाया तब तक नन्दा के बुद्धि उज्ज्वल आयत लोचनो मे पडी लोट रही थी ।

"यही सतीत्व की, याने तुम सतीत्व को महत्व नही देती ।"

कुछ कहने जाकर नन्दा चुप हो गई । मनीश के मुख को देख कर सिहरी । प्रश्न मन मे उठा—यही युवक—जो आज स्वाधीन हिंदुस्तान के राष्ट्र-निर्माता है—और पल पल मे नन्दा का विचार, प्रश्न शतमुखी हो गए—इन्ही पर हिंदुस्तान की स्वाधीनता जीवित रखने की जिम्मेदारी निर्भर है । जिनके हृदय उदार नही, किंतु अति सकीर्ण है, जो कि अपनी माँ-बहनो को बिना अपराध वेश्यालय मे जाने का सकेत करते है, कर सकते है । वे करेंगे राष्ट्र का निर्माण ? ज्ञान, विज्ञान की उन्नति ? कैसी असम्भव बात है ?

"अजी भाभी, क्या सोच रही हो ? मेरे प्रश्न का जवाब दो ।"

बडे दुख से नन्दा को हँसी-सी आ गई । कहा—"मैने ऐसा कुछ नही कहा, जिससे कि समझा जाए—सतीत्व का कोई मूल्य नही ।"

"साफ नही कहा, यो मतलब वही निकलता है ।"

बात बढने न देकर नन्दा ने कहा—"मेरा कहना और आप जैसे भद्र, शिक्षित युवको से माग बस इतनी है कि—मन की सच्ची अनुभूति द्वारा वास्तविक सत्य को देखिए, और उन हतभागिनियो को—जो कि पाकिस्तान में सताई गई है, उनके लिए मुट्ठी भर जगह की व्यवस्था कर दीजिए । हॉ, मैं कहती हूँ—आप जैसे कुछ व्यक्तियो का यदि मिलित संगठन हो जाए तो उन्हे वेश्यालय मे जाकर अपने मन पर अत्याचार न करना पडे ।"

मनीश के मौन मुख के प्रति देखती हुई पुन कहने लगी सुनन्दा—

"मेरे विचार से मनुष्य का वास्तविक मनुष्यत्व वही है जो कि पतित को देवत्व दे सके।"

जरा सोचकर मनीश बोला—"वह कैसे हो सकता है भाभी? असती भी कही पति की पत्नी कहलाने के योग्य बन सकी है?"

सुनन्दा को जोर का धक्का लगा। वह मनीश को देखने लगी। और देखती रही आई।

"भाभी!" उस गभीर दृष्टि के सामने मनीश के हृदय मे जाने कैसी अस्वच्छन्दता उमड पडी।

"भाभी—ओ भाभी!"

"अच्छा, सोचो तो मनीश बाबू, यदि मैं स्वय पाकिस्तान की सताई हुई होऊँ?" कौतुक नन्दा के स्वर मे झाँक रहा था।

"तुम?" मनीश के नेत्र बडे-बडे होगए, वह घबरा उठा। प्रबल वेग से मस्तक हिलाता हुआ बोला "असम्भव है। कभी नही, कभी नही, ऐसा हो ही नही सकता है। तुम्हारा यह मजाक मुझे अच्छा नही लगता है, भाभी।"

"ऐसा? पहले कहिये कि उस परिस्थिति मे आप क्या करे? आप मेरे हाथ का भोजन कर चुके हैं। उस अवस्था मे आप क्या करते? प्रायश्चित्त?"

नन्दा के स्वर मे भरे हुए व्यग्य को मनीश न समझा हो, ऐसा नही, उसे अनसुना-सा कर वह बोला "और भाभी, आज भी उन्हीं हाथो से बना हुआ अमृत खाना है। अजी डबल प्रायश्चित्त कौन करे, बस एक साथ कर लूँगा। तुमसे बक-बक करते-करते गला सूख रहा है। इधर जोर की भूख भी लगी है।"

इस युवक पर अभी-अभी नन्दा का मन वितृष्णा से विमुख हो बैठा था और अश्रद्धा, विरक्ति से उस मन का कोमलत्व रूठ गया था सो भी सही है। तो भी क्षुधार्त की पुकार से वह बैठी न रह सकी। शायद

नारी का स्वभावसिद्ध वह अभ्यास ही क्यों न रहा हो, कहा कुछ नहीं जा सकता है। सुनन्दा उठी, "अभी लाती हूँ।"

"मुझे नही खाना है। तुम बैठो भाभी।"

ओठो मे नटखट सी दबा कर नन्दा बोली, "ओ वही छुआछूत वाली बात है।"

"भाभी!" कहते हुए मनीश ने हठात् अपने हाथो को फैला कर नन्दा का मुह बन्द कर दिया। नन्दा खिलखिला कर हँस पडी।

लज्जित मनीश बोला—"अजी मैं तो इसलिए कह रहा था कि चौके मे जाकर बनाने मे तुम्हे तकलीफ होगी और आपने कुछ उल्टा मतलब लगा लिया।"

"अच्छा! फिर आपने भूख की खबर क्यो सुनाई थी? अरे हाँ, आपने सोचा होगा कि मै द्रौपदी हूँ, बिना आग का भोजन बना लूँगी। द्रौपदी को नही जानते? वही पच पाण्डवो की द्रौपदी।"

मनीश भयानक चिढा। वह मु ह फेरकर बैठ गया।

नन्दा ने उसे देखा और साडी के आँचल को मुँह मे दबाकर हँसी रोकती हुई चौके मे पहुँची।

कुछ देर के बाद थाल लेकर पहुँची, फूली-फूली पूरिया, आलू का दम, पापड, जल्दी मे बस यही बना पाई नन्दा। गाजर का हलुवा बना रखा था। निकट बैठ कर, मनीश को भोजन कराने लगी, कहा, "टेबुल पर बैठकर चाय, कटलेट, टोस्ट आदि खाने वाले को पूडी-साग मे क्या मजा आयगा?"

हाथ रोककर मनीश बोला—"भूल है तुम्हारी, सच कहता हूँ, इतना सुन्दर स्वादिष्ट भोजन बनाती हो! और ऐसा यत्न कहाँ मिलेगा यह सब मुझे? नौकरो के पास?"

नन्दा का जी स्नेह से परिपूर्ण हो उठा। पितृ-मातृ-हीन युवक के प्रति

उसकी सहानुभूति सिमट रही। कहा–"कच्चा-पक्का जाने क्या बनाकर देता होगा बावर्ची।"

"तुम वही चल कर रहो न भाभी।"

नन्दा हँसी—व्यथापूर्ण वह हँसी। कहा—"उसे खाते क्यो नही—गाजर का हलुआ है। उस पर मेरे बगीचे के ताजे गाजर।"

"तुम्हारे बगीचे के?"

"हा, आपने मेरा बगीचा नही देखा?"

"नही, देखना है। सोचता हू—एक स्त्री कितना काम कर सकती है।" उसके बाद प्रशसा करने लगा मनीश हलुए की। और निकट बैठी नारी नर का तृप्त भोजन देख-देखकर स्वय तृप्त होने लगी।

६

वर्षा के शेष प्रहर मे शीत का रौद्र गृहस्थ के गृहो मे शीत की शीतल वार्ता घोषित करने लग गया था और कोकिला के गान मे निद्रा की अलसता समाने लग गई थी।

तब सुनन्दा नित्य-नैमित्तिक दिन-चर्या शेष कर धूप-छाह के बीच दालान पर चटाई बिछा कर पुस्तक लिए बैठी थी। पडोस की नलिनी पहुँची। कहा, "मेरा एक काम कर देगी मिसेस राय?"

"चेष्टा करूँगी। और हाँ, मिसेस राय से सुनन्दा या केवल नन्दा कहने मे और भी सुगमता होती है, नलिनी जी, सहूलियत मिलती है।" मुसकराती नन्दा बोली। गृह से मोढा लाकर उसे बैठाया।

"लेकिन बात यो है कि हमारे सभ्य समाज मे सभ्य रीति से बर्ताव जो किया जाता है। नाम लेकर पुकारना असभ्यता है।"

"ऐसा? फिर आपकी जैसी इच्छा।"

नलिनी बैठी, एक बार गृह के चहुँ ओर तीक्ष्ण दृष्टि फेरकर कहा, "आज आपका घर सूना क्यो है ?"

"सूना ?"—हास्यस्फुरिताधर से नन्दा ने पूछा—"क्या मतलब ?"

"आपके भक्त युवकगण एक नही दीखते ।"

नलिनी के स्वर का मूर्त परिहास नन्दा ने सुना, समझ कर भी अनसुना कर दिया । बोली—"आते होगे, जल्दी क्या है ?"

"लेकिन एक बात, मिसेस राय, जो कि मुझे कहनी नही चाहिए।"

"ऐसा ।" तरलस्वर से नन्दा कहने लगी—"तो भी आप कहना चाह रही है । एक बार यदि आप सभ्यता के विरुद्ध ही बात कर दे तो हानि क्या है ? फिर यहाँ सुनने कौन आता है ? छिप कर जो अन्याय, जितना भी अपकर्म और पाप ही सही, किया जाए, उसे पाप व अन्याय नही कहा जा सकता ।"

पीछे के शब्द नन्दा यो सहज स्वर से कह गई कि नलिनी समझ न सकी कि नन्दा सचमुच अपने मन का सिद्धान्त प्रगट कर रही है अथवा व्यग्य कर रही है ?

तब उत्साहित कठ से नन्दा कह रही थी—"कह दीजिए श्रीमती जी, सोच-विचार करने की क्या जरूरत ?"

"बस, बस । मेरे मत के साथ आपके मत का मेल इसी स्थान पर है। मैं कभी सोच-विचार नही करती । सदा मुँह पर सच-सच कहने वाली हूँ । सब लोग मुझे स्पष्टवक्ता कहते है । यो कह रही थी—आप उन उच्छृखल युवको से नही डरती ?"

"उन से डरूँ ? किन्तु क्यो ?" अपनो बडी-बडी आखो को खोल कर नन्दा ने पूछा ।

"अजी इनका क्या विश्वास । पुरुषगण जवान औरते जहाँ देखते हैं, बस जोक की तरह चिपट जाते हैं । दो दिन अपना मन बहलाया और फिर दूर हटा दिया । बडे ही डेजरस होते है ये लोग ।"

अवाक्-विस्मय से उस सभ्य स्त्री की असभ्य बातें नन्दा सुनती रही, फिर झटके दे दे कर अपने मन की जडता को दूर किया। बोली—"मेरा कोई कुछ नही बिगाड सकता—मेरे जीते जी, मेरी सुध रहते हुए, कोई कुछ नही कर सकता है।"

"देखिए मिसेस राय, घमड भित्ति-हीन होता है। पाकिस्तान की औरत की दुर्दशा की बाते सब जानते है। नारी नारी के सिवा और क्या हो सकती है ?"

निविड वेदना से नदा का मुँह पीला पड गया। परन्तु तो भी वह सहमी, कहा—"उस अामानुषिक अत्याचार की कल्पना तक तब ससार को नही थी न। पाकिस्तान के अधिवासी उस अत्याचार के लिए प्रस्तुत कहाँ हो पाए थे ? उन नर-नारी को जरा सोचने का समय तक नही मिला कि उस स्थिति मे उन्हे करना क्या है ? उचित क्या है ? दो शब्दो मे इन बातो की चर्चा नही हो सकती है नलिनी जी !"

"आपका अद्भुत मतामत है।"

नलिनी का मन्तव्य तब शायद ही नन्दा ने सुना हो। कह रही थी तब नन्दा—"डेन्जरस युवक नही हुआ करते, डेन्जरस होते है अधेड व्यक्ति—न वे अति वृद्ध है न युवक। वे ही भयानक हुआ करने है।"

"न जाने आप क्या कह रही है ?"

"ठीक कह रही हूँ बहन। उनके व्याघ्र की भाति पजे हुआ करते हैं और वे तीक्ष्ण पजे जहर से बुझे रहते है।" नन्दा मृदु-मृदु हँसने लगी।

इतने मे पहुच गई श्रीमती चौधरी। नन्दा ने अभ्यर्थना कर उसे बैठाया, कहा—"कल आपके आने की खबर मिली और मैं आपके लिए बैठी ही रह गई, आईं नही।"

अपने विपुल शरीर को कुर्सी पर डाल कर चौधरानी ने कहा, "मिसेस वर्मा पहुँच गईं तो आ नही सकी। नीलनी, अच्छी तो हो न ?

इधर बहुत दिनो से आई नही ?"

"काम मे फँसी हुई हूँ। आज एक जरूरी काम से मिसेस राय के पास आई हूँ।"

"ऐसा ?"

"जी हाँ।"

"कहिए न नलिनी जी। मैं जरूर करने की चेष्टा करूँगी। क्या काम है ?"

"इन दिनो आपके पास भीड लगी रहती है। लीजिए यह टिकट-बुक, सहज मे उन लोगो के पास बेच लेगी।"

"कैसा टिकट-बुक ?"

"हम एक ड्रामा खेल रही है।"

"ऐसा ?"

"जी हाँ। एक फैनसी क्लब बनाया जा रहा है, इसके सब पैसे उसमे लगाएँगे।"

"मुझे क्षमा करे श्रीमती, मुझसे नही होगा।"

"नही, यह काम तो आपको करना ही पडेगा मिसेस राय !"

"यह काम मेरे सिद्धान्त के बाहर है।"

"क्यो ? जनता के लिए टिकट बेचना क्या कोई खराब काम है ?"

"नही। परन्तु यदि जनता के लिए होता तो मै अवश्य करती।"

"लेकिन काम तो जनता के ही लिए है, न ?"

"नही, यह है किसी एक सस्था विशेष के लिए, एव फैशन विशेष के लिए। फैन्सी क्लब आपने कहा न ?"

"फैशन करना क्या कोई पाप है ?"

"कौन कहता है ?"

"तब ?"

धीरे नन्दा बोली—वह कहने लगी—"जब देश भूखो मरता हो,

तब फैशन की रक्षा करने के लिए जनता को उभारना, उस ओर उसे आकर्षित करना, उस काम के लिए उससे पैसे लेना मै एक प्रकार का पाप ही समझती हूँ। हमारे हिन्दुस्तान को स्वाधीन हुए अभी कितने दिन हुए? वर्षों की गुलामी मे अपने सारे ऐश्वर्य, अर्थात्—ज्ञान विज्ञान, कला आदि को और शायद अपनी सभ्यता को खोकर हजारो देश-भक्तो का बलिदान कर वह आज पुन स्वाधीन हुआ है। और उसके सब कोष प्राय सूने है। इस समय हम हिंदुस्तान निवासियो को अपनी पूरी ताकत लगाकर और ईमानदारी के साथ उसके सब खाली कोषो को भरना है। ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, सगीत आदि की पुन. उन्नति करनी है। केवल यही नही, वरन उन्हे समृद्ध करना है। नित नवीन खोजो द्वारा उन्हे चरम उत्कर्ष तक ले जाकर प्रतिष्ठित करना है। हिंदुस्तान की स्वाधीनता अभी कच्ची भीत पर टिकी हुई है। हमे इतनी शिक्षा प्राप्त करनी है कि जीवन को वास्तविक दृष्टि से निकट से देख सके। यदि हम प्रत्येक नारी अपनी एक-एक सुशिक्षित सन्तान नागरिक के रूप मे उसे नही दे सके तो हिंदुस्तान की स्वाधीनता शायद ही चिरजीवी बनकर रह सकेगी। और हम नारी भी कल्पित 'अबला' के भय को त्याग कर अपने शरीर, मन को इस प्रकार तैयार करे कि दस-बीस दुश्मनो से अपना घर बचा सके, तभी इस स्वाधीनता का कुछ अर्थ निकलता है।"

"याने आपका कहना है, फैशन करना पाप है, यही न ?"

वह अपनी धुन मे कह चली—"अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो है। ऐसे वक्त फैशन और फैन्सी आदि की कल्पना ? मैं तो सोच ही नही सकती, फिर उसके लिए कैसे सहायता करूँ ?"

"ऐसा !"

"जी हाँ, इस काम के लिए मै कुछ भी सहायता नही कर सकती हूँ।"

नन्दा की दृष्टि चौधरानी के कटे हुए बालो ने आकर्षित कर ली।

चौधरानी जी की नवीन सूझ, याने कटे हुए बालो को देखकर वह मुसकरा पडी—तीक्ष्ण दर्दभरी वह मुस्कान, और पल भर मे उस गत-यौवना नारी का हृदय नन्दा की आँखो के सामने-दर्पण-सा स्वच्छ हो गया। चाँदकी छाया अकित-सा उस मनोवृत्ति का चित्र देख-देख कर वह सिहरने लगी।

नारी के मन की यह कैसी हेय प्रवृत्ति है ? सोच उठी नन्दा—वह अपने यौवन को, बाँध कर रखना चाहती है ? बालो को काट कर, ओठो को रग कर, शरीर को कस कर, पिचके हुए गालो पर क्रीम, पाउडर मल कर वह अब भी अपने को एक दर्शनीय आकर्षण बनाकर रखना चाहती है ? वय-प्राप्त सन्तान के आगे पहले आप ही किशोर बनना चाहती है। नकल द्वारा वह वास्तविक को अस्वीकार करना चाहती ? कैसी है यह नारी ? क्या यही है अनेक समवेत प्रवृत्तियो की एक आधारभूत इसकी प्रधान प्रवृत्ति ? इस प्रवृत्ति का आदि और अन्त कहाँ पर है ?

उत्तर आया उसके मन के प्राण से—नही-नही नारी मात्र की यह प्रवृत्ति, यह मनोवृत्ति और प्रकृत्ति नही है। हो नही सकती है। उसके कई रूप है न, जोकि अवस्था के साथ-साथ क्रमश विकसित होते हैं। किशोरी मे जीवन का उन्मादक स्वभाव-सिद्ध होता है, युवती बन जाती है प्रेमिका। तब आगमन है माता का, प्रौढत्व तो मातृ-भाव का समन्वय कर देता है, ससार के हर पहलू से, हर दिशा मे मातृ-स्नेह से ओत-प्रोत जो है प्रौढत्व। वृद्धत्व भक्ति रस को उभारता है। तो ? पुनः प्रश्न उठा नन्दा के मन मे—तो कुछ नारियो मे ऐसा व्यतिक्रम क्यो पाया जाता है ? तुरन्त मन कह उठा—पाश्चात्य का जबरदस्त अनुकरण हो सकता है; आए दिन के सिनेमा के चित्र,वे गायन और अति अग्रसर एक निराली सोसायटी का प्रभाव, जहाँ केवल नकल, केवल उच्छ्खलता, केवल एक दूसरे पर विजय की भावना—होड ही जी सकने का उद्देश्य बना हुआ हो।

किसी से कुछ कहे बिना नलिनी चल दी, फिर द्वार पर से लौटी, चौधरानी को नमस्कार किया, सुनन्दा के प्रति देखा तक नही और द्रुत कमरे के बाहर निकल गई ।

चौधरानी बोली—"मै तुम्हारे पास विशेष काम से आई हूँ। दादा जी के घर तुम्हारी कार्य-कुशलता से मै प्रभावित हो उठी । या एला की शादी तय हो गई है । इस शादी मे सब काम-काज तुम को करना पडेगा ।"

"जरूर करूगी । वर तो लिखा- पढा होगा ही ।"

"अब क्या कहे ? मि० चौधरी के मारे हैरान हूँ । एला का योग्य वर यो मनीश था । सभ्य, विद्वान्, सुसस्कृत, किन्तु उन्हे पसन्द नही, खैर यह वर बुरा नही है । पाकिस्तान का भागा हुआ है । धन-कुबेर है । चार-चार मोटरो पर चढेगी एला । वह खुश है ।"

"खुश है ?" बोली नन्दा इस तरह जैसे सहसा उस पर हिंसक व्याघ्र टूट पडा हो । उसका मन वितृष्णा, अश्रद्धा से पूर्ण हो गया । नन्दा भली-भाँति जानती थी कि मनीश ही एक ऐसा है, जोकि एला के मन मे बसा हुआ है । एला और मनीश का प्रेम प्राय उनके मिलने वाले जानते थे । कुछ देर तक सुनन्दा हतवाक हो रही । सोचने लगी वह—क्या आज की सभ्यता की माँग केवल अर्थ है ? धन ही है ? धन के निकट प्रेमका कोई मूल्य नही है ?

प्रश्न के बाद प्रश्न उठने लगे उसके मन मे—तो इस युग का सतीत्व क्या लोकनेत्रो के अगोचर ही महत्व रखता है ? क्या मानवनेत्र के अन्तराल यदिच्छाचार करने मे दोष नही मानते ? विस्मित विराग से वह सोचती ही रही आई—कैसी है वह नारियाँ जो कि एक के प्रेम को धूल की भाँति दूर फेक कर धन के प्रति झुक जाएँ ? उनके मनके प्राण मे क्या केवल धन की लोलुपता, मोह ही भरा रहता है ? अपने विचार मे सुनन्दा यों तन्मय थी कि चौधरानी की उपस्थिति वह विसर गई ।

"मै चलूं ? तुम्हे खबर देने आई थी, अब नश्चिन्त हो गई, याद रखना, सब काम तुम्हे सम्भालना है ।"

अनमनी-सी नन्दा ने कहा—"तो एला खुश है ?"

"हाँ, बहुत खुश । अच्छा तो ।"

चौधरानी को द्वार तक पहुँचा कर सुनन्दा लौटी, सुप्रकाश सफर से लौटने वाला था, उसके लिए भोजन तैयार करना था ।

एक जगली आँधी की भाँति मनीश प्रविष्ट हुआ ।

"भाभी, तुमने उस नलिनी को क्यो सिर चढा रखा है ?"

"बैठो तो, क्या बात है मनीश बाबू ? आज मैने आपके लिए खाजे बनाकर रखे है । बैठिए इस पर ।"

मनीश बैठा और नन्दा का हाथ पकड कर उसे अपने निकट बैठा लिया, फिर उसकी जघा पर हाथ रखकर बोला—"इस नलिनी के मारे मैं छिपा-छिपा फिरता हूँ ।"

"क्यो भला ?" कौतूहल से नन्दा ने पूछा ।

"अजी, यह मुझसे प्रेम करने के लिए तुली हुई रहती है । जैसा कि पहले वह दीपेन, नाग साहब आदि से करती थी । और आज गजब हो गया !"

"क्यो ?"

"मै यहाँ बहुत देर का आया हूँ । और ठीक उसी समय वह तुम्हारे पास से चली, उसने रास्ते मे मुझे रोक लिया । फिर मुझे लेकर अपने घर पहुँची । चाय पिलाई ।"

"अच्छा तो किया ।"

"अजी, शादी का प्रस्ताव कर बैठी न ।"

सुनन्दा खिलखिला पडी—"खराब क्या है ? शादी कर लो ।"

"शादी कर लू ? उस असभ्य विधवा से ?"

"विधवा होना क्या कोई पाप है ?"

"नही। लेकिन जिसे देखने से घृणा होती है, उससे कोई शादी कर सका है ? यो पहले दीपेन के पीछे पडी हुई थी, अब मै मिल गया।"

नन्दा उठकर खडी हो गई। मनीश भी उठा।

"आप बैठिए, खाना ले आऊँ।"

"नही।"—कहकर गमनोद्यत नन्दा को उसने दोनो हाथो से जकड लिया।

नन्दा ने एक बार द्वार के प्रति देखा, इस शिशु स्वभाव के युवक के स्नेह का अत्याचार वह सरल स्नेह से सह लेती थी। किन्तु ससार ? वह क्या जाने ? वह कैसे समझ सकेगा कि उसके शरीर-स्पर्श के भीतर तिलमात्र भी उच्छृङ्खलता नही है।

जरा विरक्त होकर वह बोली—"आपको बिलकुल समझ नही है। छोडिए, बैठती हूँ, क्या आदमी से लिपटकर ही बात की जाती है ?"

अप्रतिभ होकर मनीश ने मुह बना लिया।

नन्दा चल दी, थोडी देर के बाद तश्तरी मे सफेद खाजे लेकर पहुँची, दूसरे हाथ मे पानी का गिलास मनीश के सामने तश्तरी मे रखकर स्वय निकट बैठ गई—"खाइए।"

"मुझे भूख नही है।"

"भूख नही है ? तो नलिनी देवी ने ऐसा क्या खिला दिया ? इधर तो आप उसकी निन्दा करते है, उधर उसी के घर ठूस-ठूस कर खाते है।"

चिढकर मनीश बोला—"तुम जख्म पर क्यो नमक छिडक रही हो भाभी ? लो सब खाए लेता हूँ।"

"ऐसा ? मै जख्म पर नमक छिडकती हूँ ? चोरी करने वाला चोर नही, देखने वाला चोर बने ? उल्टी दुनियाँ है।"

"तुम भली भाँति जानती हो कि उसे मै कभी भी अपना नही सकूगा।"

"तो किसे अपना सकोगे ?"

मनीश कौतुक से कह उठा—"तुम्हे भाभी ।"

अकारण ही नन्दा के कपोलो पर लाली दौड गई । तब पूर्ण उत्साह से कह रहा था मनीश—"तुम सही रास्ते पर हो भाभी, देखो कि सतीत्व का गर्व करने वाली—यह नलिनी पुनर्विवाह करना चाहती है । ऐसी को कैसे सती कहा जाए । और यो जाने कितनो से वह विवाह के लिए कह चुकी है ।"

नन्दा चुपचाप मुसकराने लगी ।

"विश्वास नही हुआ ? मै प्रमाण दे सकता हूँ ।"

"दोहाई मनीश बाबू, मुझे प्रमाण आदि की जरूरत नही ।"

"और सब उसकी बनावटी बाते है । वह सतीत्व का दम्भ क्या करती है—नकल मे अपने असली रूप को छिपाती है, एक दिन देख लेना भाभी,—इन सती की नकली आवाज लगाने वाली स्त्रियो का क्या से क्या हो जाएगा ।"

नन्दा वैसी ही बैठी मुसकराने लगी ।

७

सुनन्दा गोश्त भून रही थी और सगीत का पद गुनगुनाती जा रही थी ।

सुप्रकाश चौके मे पहुँचा, जरा देर खडा रहा, फिर लौटने लगा । आश्चर्य से सुनन्दा ने पूछा—"कुछ कहना है ?"

"मुझे ? हाँ, नही, योही ।"

सुप्रकाश के उस असम्बद्ध वाक्य से नन्दा चकित हुई, "क्या कहना है, कहते क्यो नही ?"—चौके के द्वार पर हाथ धोती हुई नन्दा ने कहा ।

"विशेष कोई बात नही नन्दा, यो—"

"तो भी ?"

"यहाँ धुए से जान निकल रही है, कमरे मे आओ।"

सुनन्दा ने गोश्त का ढक्कन खोलकर उसमे थोडा पानी डाला। चूल्हे की एक लकडी निकाल ली। नमक की छोटी-सी हाँडी को टीन के टुकडे से ढाँका, कटी हुई सब्जी पर थाली ढाँक दी, रसोई के दरवाजे पर कुडी चढाकर सुप्रकाश के निकट पहुँची। सुप्रकाश के निकट मोढे पर बैठकर उसने पूछा—"क्या बात है ?"

मस्तक खुजलाता हुआ प्रकाश बोला—"यह पत्र—"

"कैसा पत्र ? कहाँ का है ?"

"पिता जी ने लिखा है।"

"क्या कोई विशेष बात लिखी है ?"

"मेरी शादी की तैयारी कर रहे है।" एक श्वास मे इतना कह कर अपराधी-सा प्रकाश धरती निहारने लगा।

तरल स्वर से नन्दा ने उत्तर दिया—"इसमे सोच-विचार की बात क्या है ? शादी कर लो।" अपने मन की अस्थिरता को दूर हटाकर वह पुनः बोली—"बस इसी के लिए सोच-विचार कर रहे थे ?"

सुप्रकाश की शादी की बात सुनकर नन्दा अधिक विस्मित हुई हो, ऐसा नही, यो जरा-सा विस्मय कदाचित् उसके मन के किसी कोने मे जाग पडा हो तो कौन जाने ?

"कर लो न शादी।" जोर देकर नन्दा ने पुनः कहा।

"पिता जी ने लिखा है कि वश लोप हो जाएगा। उन्हे ऐसी जल्दी है कि एक अमीर की लडकी को फलदान भी कर आए है। लगन तक बँच चुकी है।"

कदाचित् दो मिनट तक नन्दा स्तब्ध, विमूढ हो रही, फिर झाडन उठाकर टेबल झाडती हुई बोली—"अच्छा, इसीलिए तुम घर गए हुए थे। हाँ, आज जरा जल्दी खा लेना, मुझे चौधरी जी के घर जाना है।

मोटर पहुँचती होगी। लो, वह पहुँच गई। बापरे ! चौधरी साहब की गाडी ने तो मेरा नाको दम कर रखा है। एला की शादी क्या है मानो पहाड टूट पडा हो—चौधरानीजी के सिर पर। और तुमने सुना है ? वर छूत मार्गी है। इधर एला एक नम्बर फैशनेबुल लडकी, ऐसी को वे कहाँ ढकेल रहे हैं ? पैसा चौधरी परिवार के लिए सब कुछ है।" यो बोली नन्दा जैसे कही कुछ हुआ ही न हो। सुप्रकाश की शादी की बाते उसने सुनी ही न हो।

प्रकाश जो कि अपनी विवाह-वार्ता की नीव अभी-अभी डाल चुका था, और सुनन्दा के सामने मुँह उठाते जिसे सकोच लग रहा था, तब तक लज्जा, सकोच को लाघ न पाया था। वही प्रकाश दूसरे की समालोचना करने की वार्ता पाकर मानो जी-सा गया। विस्मित भाव से बोला—"अरे सच ?"

"सच है जी, ऐसे विवाह का परिणाम किन्तु सुखद नही हुआ करता है।"

"उन महाशय का नाम क्या है ?"

"वर का ? नाम नही जानती, पाकिस्तान से आया हुआ कोई धनवान् व्यापारी है। यहाँ कई बँगले, बगीचे, सिनेमा, स्कूल, और न जाने क्या-क्या खरीद लिए है। स्कूल खोले हैं। चलो भोजन कर लो, कार खडी है।"

"तुम चली जाओ, मैं खा लूँगा।" नित्य की भाँति नन्दा के सामने बैठ कर भोजन करते उसे लज्जा हो रही थी।

"और मै भूखी चली जाऊँ ? चलो-चलो।" कहती हुई सुनन्दा चौके मे पहुँची। पहुँची यह तो ठीक है, किंतु वहाँ जाकर वह चुपचाप खडी रह गई। जैसे उसका चौके का सारा माधुर्य सहसा ही छिन गया हो। हाँ, पुरुष को यत्न से भोजन कराकर नारी को जो आनन्द पुरस्कार स्वरूप

मिला करता है, वह जरा-सी खुशी, थोडा-सा सन्तोष भी मानो उसके रसोईघर से भागने के लिए उद्यत हो गया हो। प्रकाश का विवाह होगा? उसका जी जाने कैसा हो उठा—इन कुछ दिनो का परिचय, अपनेपन की पुकार—वह सब सोचती हुई हठात् सुनन्दा इस एकात में हँस दी—विद्रोहपूर्ण वह हँसी। दूसरे पल कठोर सत्य को जैसे नन्दा ने अपने मे कस कर पकडा और अवहेलना से सोचने की चेष्टा करने लगी—यह तो बसेरा है, चाहे जब टूट जाया करता है, इसमे सत्य है ही कहाँ? चाहे कोई कही चला जाए, दुनिया उथल-पुथल हो जाए, किंतु मै तो मैं ही बनकर रही आऊँगी न।"

सुनन्दा ने झटके दे दे कर हाथ-पैर की जडता दूर की, कटोरियां लगाई, एक मे लौकी पडी हुई मूंग की दाल, दूसरी मे आलू टमाटर की तरकारी, छोटी-सी कटोरी मे थोडा मक्खन रखा, गोश्त को हाथ से दबाया, कच्चा था। शाम के काम मे आएगा। दही पत्थर की कुण्डी मे रखा, दही वह घर मे जमाती थी। दो केले तश्तरी मे रख, फिर थाली मे फुलके रख कर सुप्रकाश को पुकारा, पूछा—"भात लोगे?"

थोडा भात थाली मे डालकर बिही के पत्ते मे चटनी रख दी।

अनमने-से सुप्रकाश ने भोजन किया और जल्दी उठ गया। नन्दा ने बर्तनो को समेट कर नल के नीचे रखा। चौका साफ किया। बाहर किसी के पद-चाप से अस्त-व्यस्त नन्दा गोबर भरे हाथ से, एक हाथ मे लाल मिट्टी की हाँडी लिए हुए दालान मे निकली और मि० चौधरी से टकरा गई। मिट्टी की हाण्डी छिटक कर दूर गिरी। वह सँभल का खडी हो गई—"अरे आप?"

"मैं देर से कार मे बैठा हुआ हूँ, प्रकाश बाबू स्कूल चले गए, तब मैं अन्दर आया।"

चौधरी जी की बाते नन्दा को जाने कैसी अटपटी-सी लगी। उसने गोबर भरे हाथ से साडी का पल्ला सिर पर डाला, बोली—"आप

इतनी देर तक गाडी मे क्यो बैठे रहे ? अन्दर आ जाते ।"

"अन्दर आता ? लेकिन प्रकाश बाबू कही सोच न बैठते कि मेरी बीबी के पीछे मि० चौधरी क्यों पडा रहता है ?"

चौधरी के वचन का कुत्सित इगित समझ कर नन्दा मन ही मन झुझलाई। पूछा—"आज आपने कैसे कष्ट किया ?"

"यो ही, किसी को देखने के लिए जब किसी का जी बेचैन होता है तो वह सब कुछ कर सकता है। सुनन्दा, सोचो कि मैं तुम्हे देखने को चला आया।"

चौधरी जी के उस तुम सम्बोधन से नन्दा जल-सी उठी, कहा—क्यो ? मुझ मे ऐसी कौन-सी विचित्रता है मि० चौधरी ?"

चौधरी ने हठात् उसका गोबर भरा हाथ पकड लिया—"तुम्हारा "जन्म राजरानी बनने के लिए हुआ है सुनन्दा। गोबर-मिट्टी मे सनने के लिए नही।"

नन्दा ने तीक्ष्ण दृष्टि से उस वृद्ध-प्राय व्यक्ति को देखा। झटके से हाथ खीचा, नल पर पहुँच कर हाथ धोया। मोढा जरा हटा दिया। "बैठिए।" और उस मडराते हुए अशोभनत्व को हलका करके परिहास-तरल कठ से बोली—"जब कि इस जन्म मे रानी नही बन सकी हूँ, मि० चौधरी, तब नौकरानी बन कर ही क्यो न सन्तुष्ट रहूँ ?" फिर विषय दूसरी ओर मोडने के अभिप्राय से कहा—"अब चलिए चौधरानी जी मेरी प्रतीक्षा करती होगी।"

किंतु चौधरी ने उठने का नाम न लिया, वरन पाकेट से सिगार केस निकाल कर एक सिगरेट मुँह मे दबाया, माचिस से उसे सुलगाया—"वे और एला मि० भटनागर के साथ मार्केटिंग को गई है। वहाँ से शायद पाँच बजे तक लौट सके।"

"ऐसा ? तो आप जरा मुझे दादू के घर तक पहुँचा दीजिए।"

"वहाँ जाने की ऐसी जल्दी क्या है ?',

"मनीश बाबू कई दिनो से नही आए, शायद बीमार हो।

"इस लिए जाना है या और कुछ ?"

"याने ?"

"पहले कहो कि अकेले मेरे साथ रहने मे डर तो नही रही हो ?"

नन्दा ने सहज मुस्कान से उस प्रौढ व्यक्ति को देखा, कहा—"डर ? नही महाशय, मैं किसी से नही डरती।"

"ऐसा ?"

"जी हाँ, आप कोई शेर-भालू थोडे ही हैं।"

"ओ; भूल गया था, सुना है तुम युवको से घिरी रहा करती हो।"

"परन्तु यौवन की सरलता प्रौढत्व से कही उच्च श्रेणी की हुआ करती है।" चेष्टा करने पर भी नन्दा के कठ की झुझलाहट अव्यक्त नही रह सकी।

ठोकर खाकर चौधरी चिढा—"क्या प्रौढत्व कोई अभिशाप है ? प्रौढ व्यक्ति क्या कपटी हुआ करते है ?"

"नही तो। आप मेरे डरने की बात कह रहे थे, युवको से बिलकुल नही डरती। यो किसी-किसी प्रौढ व्यक्ति से जरा दूर रहना पसन्द करती हूँ।"

"समझा। याने आपके विचार से प्रौढत्व मे प्रेम मर जाता है और पशुत्व प्रबल होता है ?"

मि० चौधरी के पुन 'आप' सम्बोधन से मन मे सुनन्दा प्रसन्न हुई, कहा—"नही जी।"

"तो ?"

"क्या करेगे सुनकर मेरे विचार ? मेरा मतामत शायद दुनियाँ के लोगो को विचित्र लगे।"

"कह ही दीजिये मिसेस राय।

सहज स्वर से वह बोली—"प्रौढत्व अपने गत यौवन को खोजता

फिरता है, हाँ, युवती के यौवन की छाया मे । अपने प्रौढत्व को ढाँककर यौवन की उमगो को पुन वापस लाने की मिथ्या चेष्टा करना उसके लिए स्वाभाविक तो है न मि० चौधरी ? युवको का प्रेम उन्मत्त व उन्माद पूर्ण हुआ करता है । और इन वृद्ध प्राय व्यक्तियो का नपा-तुला, मोह की मोल-तोल, नही महाशय, वह प्रेम नही एक प्रकार की हिंसा है, लोलुप लालसा ही तो है न ? जिस लालसा के पजे तीक्ष्ण बबूल के काँटो के सामान होते है । उनके लिए युवतियाँ मात्र एक स्वार्थ-साधना की वस्तु हुआ करती है ।"

सहसा चौधरी के चीत्कार से नन्दा मध्य पथ मे रुकी—"आपकी स्पष्टवादिता जैसी असम्मान से भरी हुई है, वैसी ही गन्दी, असभ्य ।"

"परन्तु मै तो कहना नही चाह रही थी मि० चौधरी ।"

"आप कहती है, प्रौढ व्यक्ति का प्रेम झूठा होता है ?"

"ऐसा मैने कब कहा ?"

नन्दा की बाते अनसुनी-सी कर चौधरी कहने लगा—"अगर प्रेम न होता तो मेरी तरह आराम-तलब आदमी को दोपहर मे यहाँ तक घसीट कर कौन लाता ? किसमे इतनी ताकत है ?"

घृणा और विस्मय से नन्दा ने चौधरी के उन नेत्रो के प्रति देखा, जो कि किसी वासना के प्रबल प्रकोप से उन्मत्त से हो रहे थे । उसने कहा—'देखिए मि० चौधरी, अकेले घर मे प्रेम की परिभाषा सुनना मै पसन्द नही करती, अच्छा हो यदि आप उनके घर लौटने के बाद आएँ, यो आज मुझे मनीश बाबू के घर भी जाना है ।"

चौधरी अपने आपे मे लौट आया । बोला—"मुझे माफ कर दीजिए मिसेस राय, तर्क के नाते अगर आपके सम्मान के विरुद्ध कोई बात कही हो तो उसे भूल जाइये ।"

"ऐसी छोटी-छोटी बातो पर मै ज्यादा मस्तिष्क नही खपाया करती । आप निश्चिन्त रहे ।"

"और हाँ, इन बातो की चर्चा दूसरो से करना याने आज अपने बीच जो तर्क-वितर्क चला था, उन बातो को वे नही जान पाएँगे, थोडा सा सुनकर किसी निष्कर्ष पर उतरना, हमारे भाइयो का दुर्गुण है।"

हँसकर नन्दा ने कहा—"आप निश्चिन्त रहे, गन्दी बातो की चर्चा करने के सिवा दुनियाँ मे क्या और कोई काम नही रहता है ? मुझे इतना अवसर कहाँ जो छोटी-मोटी बातो को कहती फिरूँ ? ससार मे कितने महत्, उपयोगी कार्य पडे हुए है।"

चौधरी को लगा कि नन्दा ने गन्दे शब्द पर जान बूझकर जोर दिया। अपमान की कटुता से उसके कान तक लाल हो गए। वह जल्दी से उठकर चलने लगा।

नन्दा ने रोका—"वाह चौधरी साहब, भूल गए ? मुझे दादू के घर तक पहुँचाना है।"

"मुझे ?"

"जी हाँ।"

वह विस्मय से वाक्हीन हो रहा। यह नारी कैसी दुर्बोध, एक पहेली है, अभी जिसे अपमान कर कटुता से बिद्ध किया, तीक्ष्ण वाक्य बाण से जिसे बिद्ध किया, उसी के साथ जाने मे जरा भी हिचक नही है।

"आप तब तक कार पर बैठिए, मैं कपडे बदल लूँ।"

कार भागती चली जाती ! कार की खिडकी से मुँह निकालकर नन्दा मनीश की बाते सोच रही थी। इन दिनो वह उसके निकट बहुत कम आता है। किन्तु क्यो ? बहुत सोचने पर भी कारण का अनुसन्धान नही कर पाई।

श्रीनाथ के घर उतर कर नन्दा ने कहा—"चौधरानी जी से कह दीजिए, कल आऊँगी। नमस्कार।"

८

धूप-दीप और शख हथेली पर लिए सन्ध्यारानी ससार मे उतरती चली आती। क्लान्त, श्रान्त-सा दिन अवसान की ओर बढता चला जा रहा था। चलता दिन, अवसान की ओर लौट-लौट कर, रुक-रुक कर देखता—विश्व के प्रति। दिन भर के बारह घण्टो में उसने न जाने कितने सुख-दुख, अत्याचार, प्रचार की स्मृतियो को अपने हृदय मे अंकित कर लिया था। उन पद-चिन्हो की स्मृति को वह लौटकर बटोर लेना चाहता। बुझती-सी सूर्य की रश्मियाँ कभी धूप-छाँह मे छिपने लगतीं, कभी हलकी लालिमा लिए उभर आती, दिन चलता चला जाता अवसान की ओर।

तब घर लौटने के लिए सुनन्दा व्यग्र हो रही थी। बारह बजे की निकली है, सुप्रकाश घर पहुचता होगा। वह बन्द मकान के बाहर भटकता रहेगा। परन्तु श्रीनाथ अपनी बाते खतम नही कर पाए थे।

कह रहे थे श्रीनाथ—"मनीश इन दिनो अवारा हो रहा है। शराब पीना बढता जा रहा है। कभी रात भर गायब रहता है। कमजोर होता चला जा रहा है ।"

"उनकी शादी क्यो नही कर देते ?"

"वह शादी के लिए तैयार हो तब न ? मैंने एला के लिए कहा था, क्योकि वैसी लडकियाँ उसे पसन्द आती। यद्यपि मुझे बिल्कुल पसन्द नही थी। नाचने वालियो की तरह ऐसी लडकियाँ कही घर की बहू बन सकती है ? केवल मनीश के लिए उस जैसी लडकी भी मैंने घर की बहू बनाना स्वीकार किया।"

चौंककर नन्दा ने पूछा—"क्या वे राजी नही हुए ?"

"खूब हँसा, ऐसा कि मुझे भी हँसी आ गई। मैंने कहा, यदि तुम्हें एला पसन्द नही तो और ढूँढे। तुम जैसे लडके के लिए पचासों सुन्दर

लडकियाँ मिल जाएँगी। लेकिन वह तो शादी करने ही से इन्कार कर बैठा।"

"क्यो दादू! ऐसा क्यो?"

"उसका कहना है कि हम बाप-बेटे ठीक हैं, मजे से हैं, किसी तीसरे को घर मे लाकर अशान्ति मोल लाने की जरूरत नही?"

"परन्तु शादी उनकी होनी चाहिए।"

"मैंने पूरी तैयारी कर ली है।"

"सच दादू?"

"हाँ! गणपति मेरा अन्तरग मित्र था। उसकी लडकी कल्पना देखने मे साधारण है। लेकिन लक्ष्मी, ईश्वर ने उसमे गुण कूट-कूट कर भरा है। गणपति अभी एक महीना पहिले तो मरा है, मरते समय उस ने कल्पना को मुझे सौपा। बोला—'आज से कल्पना तुम्हारी बहू हुई भाई'। श्राद्ध के बाद कल्पना को घर लाऊँगा। लेकिन ये बातें अपने ही तक रखना। मैने मनीश से कुछ नही कहा।"

जरा रुककर श्रीनाथ कहने लगे—"अकेली क्वाँरी लडकी का रहना ठीक नही। गरीब की लडकी अपने यहाँ खा-पीकर दो दिन मे तैयार हो जाएगी।"

"कहाँ तक पढी है?"

"थोडा सा कुछ पढ लिया है। गरीब बेचारा पढाई का खर्च कैसे चलाता?"

"तुम घर मे लाकर रखोगे दादू, क्या यह ठीक होगा? यदि अन्त मे वे नाही करदे?"

"ऐसा नही हो सकता है लक्ष्मी। एक साथ रहते-रहते ममता पड जाती है। और मुझे विश्वास है वह दादा के दिए हुए वचन की अवहेलना नहीं करेगा।"

परन्तु नन्दा इस बार श्रीनाथ की हाँ मे हाँ नही मिला सकी। उसे

कुछ खटका ।

श्रीनाथ अपने आप मे मस्त सिर हिला-हिला कर कहने लगे—"कल्पना को कुछ दिनो तक तुम्हारे पास रखूँगा नन्दा, जिससे कि वह तुम्हारी तरह लक्ष्मी बन सके । देखो न दो-तीन घण्टे हुए होगे तुम्हे यहाँ आए, इसी बीच घर-मकान की सफाई कर डाली । यो कि आज मैं भी पेट भरकर अपनी बेटी की बनाई हुई गरम-गरम कचौरियाँ खाकर गत बीस वर्ष की आयु मे पहुँच गया ।" श्रीनाथ हँसने लगे ।

नन्दा ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला, उसकी दृष्टि द्वार पर खड़े मनीश पर आकृष्ट हुई । उसके रूखे बिखरे हुए बाल, सूखा मुँह, लाल आँखो के प्रति देखकर नन्दा सिहरी ।

"यह कैसा चेहरा बना रखा है ?"

वह वैसा ही एक-सा खड़ा रहा ।

"चलिए, स्नान करिए ।"

श्रीनाथ को मानो कुबेर का भण्डार मिल गया । वृद्ध ने दोनो हाथो मे बालक की भाँति मनीश को समेट लिया—"दो दिनो तक कहाँ चला गया था मनी ?"

उत्तर दिया, मनीश ने नही—नन्दा ने—"मित्रो के साथ कही सफर मे निकल गए होगे । चलिए मनीश बाबू ।" और एक प्रकार उसे घसीट कर बाथरूम मे कर दिया ।

समूचा सन्देश मुँह मे भरकर मनीश हठात् कह उठा—"यदि कोई तुमसे दूर रहना चाहे भाभी, तो तुम उसे निकटतर घसीट लेती हो ।"

विस्मय से नन्दा उसे देखने लगी, "आज पहेली-सा यह क्या बूझ रहे हो ? मैं बिल्कुल नही समझी ।"—और मन मे सोच लिया नन्दा ने कि तब भी मनीश का नशा उतर नही गया ।

"मैं ? जाने क्या कह गया । यह तो बतलाओ कि आज मि०

चौधरी के घर से छुट्टी कैसे मिली ?"

चौधरी की बात के स्मरण से घृणा, विराग से नन्दा का मुँह कुञ्चित हुआ।

मनीश--जो कि नन्दा को देख रहा था, भाभी के मुख-भाव का वैसा परिवर्तन उसकी आखो से छिपकर नही रह सका। पूछा-"क्यो भाभी क्या बात है ?"

"कुछ तो नही। अरे कब की मैं घर से निकली हूँ। वे बन्द दरवाजे पर बैठे होगे।" कहती हुई नन्दा खडी हो गई। मनीश ने रसगुल्ले के रस भरे हाथो से उसकी कलाई मजबूती से पकड ली--"इन बहानो को मैं पहचानता हूँ। कहो चौधरी जी के घर क्या हुआ ? सच-सच कहो, वरना मै जाने नही दूगा।"

"दादू, देखो न इन्हे" कहती हुई नन्दा उस बज्रमुष्टी से छुटकारा पाने की चेष्टा करने लगी।

एक हाथ से रस लेकर मनीश ने भाभी के मुख पर लेप दिया—नन्दा चिल्लाती जाती, हँसती और स्नेह के अत्याचार को सहन करती जाती।

"बस, मैं ऐसी हँसमुख, बच्चो जैसी भाभी को चाहता हूँ। उस भाभी को नही जोकि तर्क वितर्क से गभीर और पण्डितानी-सी विदुषी है, उस भाभी को फूटी आँखो भी नही देख सकता।"

"और मै उस मनीश देवर को चाहती हूँ--जोकि बच्चो-सा सरल, सत्, भद्र है। उस शराबी, रात-रात भर घूमने वाले देवर को आधी आखो भी नही देख सकती हूँ।"

"हूँ यह बात ?" फिर जरा सोच कर बोला मनी--"तो भाभी, मैं शराबी हूँ ?"

"हो ही। पर क्यो कहूँ कि होते चले जा रहे हो, अब तो रात मे बाहर रहना भी सीख लिया है। बूढे दादा तक की फिकर जाती रही, सोचो तो सही--कितना विशाल वह स्नेह है जोकि केवल आपके

पसन्द न पसन्द पर अपने मतामत का बलिदान देवे ?"

"याने ?"

"उन्होने एला तक को बहू बनाना चाहा था, यद्यपि उसका आचरण, रहन-सहन उन्हे पसन्द नही था।"

मनीश चुप हो गया और नन्दा कहती ही चली गई—"एक ऐसे स्नेह की उपेक्षा करना, न जाने आप किस ढग के आदमी हैं।"

"जबकि कह ही रही हो, तब तुम्ही कह डालो न भाभी ?"

"मैं तो उसे अकृतज्ञ, स्वार्थी, हृदयहीन कहूँगी।"

"बस, परन्तु मै उसे महापापी कहूगा।"

"फिर भी शराब का पीना बन्द नही करूगा, और दो-चार दिन के बदले तीसो दिन बाहर रहा करूगा।"

सुनन्दा ने कहा—इस तरह परिहासपूर्ण स्वर मे मनीश हँसी नही रोक सका, कहा—"मानता हूँ कि शराब पीना अच्छा नही है।"

"तो क्यो पीते हैं ?"

"क्यो ? लेकिन भाभी सीने का यह दर्द।" कहते हुए सुनन्दा का हाथ खीचकर उसने अपने हृदय पर रखा।

दो मिनट बाद नन्दा ने हाथ हटा लिया, कहा—"यहां दर्द है मनीश बाबू ? किन्तु इसका इलाज आप ही को करना पडेगा—वीर की तरह, आदमी की तरह। हॉ, मै जानती हूँ आपकी इस व्यथा का कारण। नही, मै सुनना नही चाहती इस दर्द का गोपन इतिहास, परन्तु दावे के साथ कह सकती हूँ, शराब के नशे मे मस्त रह कर दर्द का इलाज नही किया जा सकता है। चाहे कसा भी दर्द हो। वह तो कापुरुषी कल्पना है, साहस के साथ जीवन को झेलो और निकट से उसे देखने की चेष्टा करो, बस।"

दीर्घ श्वास के बाद मनीश ने कहा—"खैर, चेष्टा करूगा। जब कि मेरी भाभी का हुक्म है, तब उसकी पसन्द के अनुसार चलूँगा।"

"तो आप मुझे वचन दे रहे हैं न ?"

"इसके बदले मे क्या दोगी ?"

"जो भी आप चाहे ।"

"चाहता हूँ मै निकटत्व, अपनापन ।"

"फिर क्या अभी आप दूर है ?"

"पूर्ण रूप से । क्योकि मेरी ही अपनी भाभी मुझे आप कहे ।"

वह हँसी, फिर इठला कर बोली—"अरे, अब तुम खडे-खडे मुझसे लडते रहोगे या एक बेचारा भला आदमी जो बन्द मकान के सामने खड़ा होगा, उसकी भी कुछ फिकर करोगे ?"

"चलो, तुम्हे पहुँचा दूँ । सुप्रकाश दरवाजे पर खडा होगा ।"

गाडी मे बैठकर मनीश ने पूछा—"अच्छा भाभी, शहर मे तो अच्छे से अच्छे मकान है, फिर तुमने गन्दी गली के भीतर वैसे घर मे रहना क्यो पसन्द किया ?"

"वह घर ? वह मेरी नानी का है, साथ मे बडी-सी जमीन है, यह सब मरते समय नानी मुझे दे गई थी, उसी मकान की बदौलत आज मैं गृहस्थी चला रही हूँ । मकान का भाडा नही देना पडता, फल, तरकारी खरीदनी नही पडती क्योकि कुछ बेच भी लेती हूँ, दूध घर का है, गाय आदि उन्ही के थे । वरना आज के दिन डेढ सौ मे होता क्या है ? उसमे उनके स्कूल जाने के लिये ट्राम, बस का खर्चा, सिगरेट, चाय का खर्च पचास निकल जाते है ।"

"ऐसा ! तुम सही कह रही हो भाभी । तुम पाकिस्तान से आई हो न ? अपनी इज्जत-आबरू लिए तुम दोनो यहाँ तक पहुँच सके हो, इसलिए ईश्वर को अनेक धन्यवाद ।"

इज्जत-आबरू लिये ?—तीक्ष्ण तीर-सा लगा सुनन्दा को मनीश का वह वाक्य । मुँह से सहसा निकल गया नन्दा के—"हाँ जी, इज्जत-आबरू लिए ही तो लौटी हूँ ।" उस स्वर ने मनीश को चौका दिया ।

अन्धकार मे वह सुनन्दा की मुखाकृति देख नही पा रहा था, वरना देख पाता उस नारी-आकृति मे व्यथित आह की दाहकारी ज्वाला किस प्रकार से दहक उठी है।

"भाभी।"—देर के बाद मनीश ने पुकारा।

"हाँ"

इस बार उस स्वर को सुनकर मनीश विस्मित हुआ—कैसी जादूगरनी है यह सुनन्दा लडकी ? दो मिनट पहले जिस स्वर ने उसे विमूढ बना दिया था और दो मिनट के बाद वही स्वर सहजता से कैसे भर उठ सका ? यह बात हजार सिर पीटने पर भी मनीश की समझ मे नही आई। कैसी बहुरूपिया है यह सुनन्दा ?

"चुप क्यो हो रहे ? कुछ कह रहे थे न मनीश बाबू ?"

"यही कि तुम विचित्र हो भाभी।"

"विचित्र ? फिर उस विचित्रता मे क्या-क्या देखा तुमने ?"

गाडी नन्दा के द्वार पर रुकी। छायामूर्ति-सा सुप्रकाश अन्धकार मे हट गया, किन्तु सुनन्दा की तीक्ष्ण दृष्टि से बात छिपकर नही रह सकी। उतरी, द्वार खुला, पूछा—"उतरना नही है मनीश बाबू ?"

"नही भाभी, दादू मेरी प्रतीक्षा मे बैठे होगे। कल जरूर आऊँगा।" नन्दा की आवाज गाडी की भरभराहट मे दब गयी। गाडी आगे बढी।

नन्दा भीतर पहुँची, सुप्रकाश को बुलाने की कोई चेष्टा न का, बाहर का दरवाजा खुला छोडकर वह दालान मे भोजन बनाने बैठी। देर हो गई थी, स्टोव जला दिया, गरम-गरम पूरियाँ और आलू-परमल की तरकारी बनाई, रबडी उसने सबेरे बना रखी थी।

देर के बाद सुप्रकाश पहुँचा—"मै दिन भर का थका बन्द दरवाजे पर बैठा रहूँ और उधर पार्टी-वार्टी चलती रहे। मेरी फिकर भला किसी को क्यो होने लगी।" कटुतापूर्ण स्वर।

अपमान से नन्दा का मुंह पीला पड़ गया, परन्तु उसकी शिक्षा

ने कुछ अशोभन करने से बचाया। बोली—"दादू ने आज देर लगा दी, भोजन तैयार है।"

वक्र नेत्रो से सुप्रकाश ने एक बार नन्दा को देखा, फिर बाथरूम मे पहुँचा, मुंह-हाथ धोए, कपडे बदले और भोजन करने बैठ गया।

९

वर्षा का अन्त था। शीत का प्रारम्भ। सुनन्दा के मन मे तब भाव और भावना इन दोनो का युद्ध-सा मचा हुआ था। उसकी आकृति बाहर से जैसी गभीर, शाँत दीखती, किन्तु हृदय मे वैसी ही विशृखलता उपस्थित थी। वैसी स्थिति मे सुप्रकाश ने जब आकर कहा कि, "मेरे प्रभु की शादी सोमवार को है, तुम्हे भी मेरे साथ चलना है।" तब सुनन्दा अकारण ही झु झला पडी,

"तुम तो जानते ही होगे कि हिन्दुस्तान मे आने के बाद से मैं शादी-ब्याह से दूर रहती हूँ फिर कहना क्यो?"

"परन्तु यह मेरे मालिक ठहरे।"

"तुम तो स्कूल के हेडमास्टर हो न?"

"अरे भाई स्कूल तो उन्ही का है, प्रायः एक या दो वर्ष से उन्ही ने यह स्कूल खोला है।"

सुनन्दा का जी उस दिन तर्क-वितर्क से दूर भाग रहा था। वह चुप रही।

"चलोगी न?"

"नही, यो कि एला की शादी के दिन भी नहीं जा रही हूँ।"

"इसी एला से तो उनकी शादी हो रही है।"

"सच? परन्तु एला से तो किसी पाकिस्तान से आए हुए धनवान् की शादी है।"

"यही वह धनी है। यहाँ इन्होने ऐसी जल्दी कार-बार फैलाया कि क्या कहूँ, कही मशीने चल रही है तो कही कुछ, आयल मिलें, स्कूल और जाने क्या-क्या।"

"देखने मे सुन्दर है न ?"

"मैंने आज तक देखा ही नही, ऐसे छोटे-मोटे स्कूलो मे आने की उन्हें कहाँ फुरसत, उनके सेक्रटरी आते है।"

दरवाजे पर कार भरभरा उठी। नन्दा ने खिडकी से झाँक कर देखा, स्वय श्रीनाथ गाडी से उतरे।

"तुम दादू को बैठाना, मै अभी आई।" जल्दी वह चौके में पहुँची, मछली की करी चढाकर गई थी, ढक्कन खोला, देखा, फिर उसे उतार कर भात चढा दिया।

श्रीनाथ के निकट पहुँची, कहा—"बापरे, दादू मेरे घर कितने दिन के बाद आये, वही एक बार आए थे और आज आए, ठीक कह रही हूँ न ?"

"जरूरी काम से आया हूँ लक्ष्मी।"

"यो भला गरीबो के घर क्यो आने लगे दादा जी ?"

"नही भाई प्रकाश, अच्छा लो आज दिन भर मैं तुम दोनो के पास रहूँगा। और लक्ष्मी बेटी के हाथ का बनाया खाना खाऊगा। लो अब तो झगडा नही है ?"

"सच दादू ?" अत्यन्त आनन्द से नन्दा बोली।

"हाँ लक्ष्मी, और सुनो, कल्पना अपने घर आ गई है। उसे मैंने अपने कमरे के बगल वाला कमरा दे दिया है। तुम्हे लेने को आया हूँ, बाकी व्यवस्था तुम चलकर करोगी।"

प्रकाश ने कहा—'आप अभी कह रहे थे यही भोजन करना है।"

अपनी बात स्मरण कर वृद्ध मुस्कराए।—लज्जित वह मुस्कान। कहा—"नन्दा को दोपहर ले जाऊँगा। आज रात मे तुम दोनों वहीं

खाना खाग्रोगे । कहाँ चली गई लक्ष्मी, मेरे लिए विशेष कुछ मत बनाना। लो मैं यह चला। जो भी बना हो, वही रहने दो, बस।"

श्रीनाथ, सुप्रकाश को लेकर चौके मे पहुँचे—"सुनो तो सही नन्दा, चौधरानी जी कह रही थी कि तुम एला की शादी के दिन नहीं जाग्रोगी ?"

श्रीनाथ उस जिद्दी नन्दा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। नन्दा के परिचित जन उस नन्दा की जिद्द से भली भाँति परिचित थे। ईश्वर का ग्रथवा प्रकृति का नियम शायद एक बार टल भी जाए किन्तु नन्दा की जिद्द ग्रटल शैल-सी ग्रडकर रहती। न हिलती न डोलती, फिर टलना तो दूर की बात होती है।

सुनन्दा भात का मॉड पसाती हुई बोली—शादी-ब्याह, भीड़-भाड़ से मै दूर रहती हूँ दादू।"

"क्यो ?"

"ग्रपना-ग्रपना सिद्धाँत ही तो है।"

"लेकिन ग्राज तुम्हारा दादू चौधरानी जी को वचन देकर ग्राया है। मै क्या जानू ? ग्रब ? क्या ग्रब इस बुढापे मे मेरी ही लडकी ससार के सामने दादा का ग्रपमान करेगी ?"

सुप्रकाश धीमा-धीमा हँसने लगा।

नन्दा हँस पडी—"यानी दादू ग्रपनी नन्दा को वहाँ लेकर ही जाएँगे। तो चलूँगी।"

सुप्रकाश ऐसा विस्मित हुग्रा कि देर तक बात नही कर सका। इस नन्दा लडकी से उसका परिचय ग्राज का नही किन्तु बचपन का था, इसकी जिद्द को जितना वह जानता था, दूसरे शायद ही उतना जानते हो। उस नन्दा को ऐसे सहज मे श्रीनाथ की बात पर ग्रौर ग्रपने सिद्धाँत के विरोध मे राजी होते देखकर विस्मय के साथ ही साथ उसे लगा कि यह वृद्ध वास्तव मे ही कोई मन्त्र-सिद्ध हैं।

"जल्दी करो नन्दा, मुझे भूख लगी है।"

नन्दा हँस पड़ी—झरती हुई वर्षा-सी वह हँसी अविराम, छन्द, तालहीन। हँसी रुकी तब बोली—"भूख लगी है या मुझे जल्दी लेजाकर कल्पना से मिलाना है दादू ?"

अप्रस्तुत हो कर श्रीनाथ चिढ गये—"तू तो हर बात मे अपनी अक्ल लगाती है। छप्पन भोजन बनाने को बैठ गई। अब दो बजे तक मुझे भूखो मारेगी।"

"नही, अभी देती हूँ। तुम दोनो पीढे पर बैठो तो सही। कुर्सी, मेज पर तो रोज खाया करते हो, आज पीढे पर ही सही। जीवन विचित्रतामय होता है, आज एक विचित्रता हो जाए, है न दादू ?"

नन्दा ने उठकर दो गिलास पानी पीढे के सामने रखा। भोजन परोस कर सामने बैठी उन्हे खिलाने लगी।

भोजन करते-करते श्रीनाथ तृप्त कठ से बोले—"यह छेना की तरकारी, जानती हो लक्ष्मी, तुम्हारी नानी की मृत्यु के बाद आज खाने को मिली है। और किसमिस डाले हुए मूँग की दाल, मानो अमृत-सा लग रहा है। मास-मछली खाते-खाते उकता उठा हूँ। सो भी बावर्ची साहब एक रीति से बनाता है। कितना अच्छा बनाती है मेरी लक्ष्मी। हर चीज स्वादिष्ट बनी है। क्यों प्रकाश ?"

"जी, यह बहुत अच्छा बनाती है, और यदि आप कभी मेरी माताजी के हाथ का बनाया भोजन खाएँ तो—"

"क्या वे नन्दा से अच्छा बनाती हैं ?"

"दसगुना अच्छा।"

"होगा भी। मुझे तो मेरी लक्ष्मी की सब बाते भली लगती हैं। वे कहाँ पर हैं ?"

"गाँव मे।"

नन्दा टमाटर की मीठी चटनी परोसती हुई बोली, "दादू, इमली

का और बेर का अचार खाना है ? लाऊँ ?"

उन दोनो के भोजन के बाद स्वय भोजन कर नन्दा ने चौका साफ किया । बर्तन माँजे । फिर कपडे बदले । बाल सवार कर श्रीनाथ के निकट पहुँची—"चलो दादू"

चाबी सुप्रकाश को देकर वह श्रीनाथ के साथ कार पर बैठी ।

कौतुक से नन्दा श्रीनाथ के घर पर उतरी, उसे कल्पना को देखना था, उससे मिलना था, न जाने वह कैसी होगी ! घर पहुंचकर श्रीनाथ ड्राइग रूम मे सोफे पर लेट गए—"आज इतना खाया है कि कमरे तक पहुँचने की हिम्मत नही है, कल्पना को यही बुलवा लो ।"

"नही, तुम सोओ, मै मिल लूंगी ।"

"और सुनो, रामाधार से कहना—आज चार-पाँच आदमी खाएँगे, नलिनी देवी आदि को डिनर पर बुलाया है । तुम जरा व्यवस्था कर लेना लक्ष्मी ।"

"अच्छा ! आज क्या है दादू ?" चाँदी के डब्बे मे बाजार के लगे हुए पान टेबिल पर रखे थे, डब्बा खोलकर एक पान नन्दा ने मुह मे डाला ।

"यो ही, कल्पना से इन लोगो का परिचय करवाना हैं ।"

"अच्छा, इसलिए । मै जा रही हूँ ।"

"चाबी लेती जाओ ।"

चाबी लेकर नन्दा अन्त पुर मे पहुँची । श्रीनाथ के कमरे में पहुँच कर ड्रयार खोला । कुछ रुपये निकाले, फिर कागज-पैन्सिल लेकर भोजन की लिस्ट बनाई, जो चीजे बाजार से मँगवानी थी, उनके नाम लिखे और रामाधार को बुलाकर सब कुछ समझाया । लिस्ट और रुपये दिए । कहा—"सामान लाकर सब तैयारी कर लेना, तब मुझे खबर करना, जाकर कुछ-कुछ करवा लूंगी । हाँ, मछली की 'मोली', सैलाट, रसगुल्ले की खीर और 'पाई, तो मैं ही बनाऊँगी । तुम से ठीक नही

बनता। बाकी चीजे, यानी पलाओ नही, बिरियानी, मुरगी, आलू के पराठे आदि तुम बनाना। देखो, मुरगी की करी मे ज्यादा मिर्च नही डालना। और न गरम मसाला।

"जाओ, जल्दी करो।"

रामाधार चलने लगा तो नन्दा ने पूछा—"कल्पनाबाई किस कमरे मे है ?"

"जी, मै समझा नही।"

गृहस्वामियो से अधिक सम्मान उस घर के दास-दासी नन्दा का करते। वे जानते कि इस घर की स्वामिनी यही सुनन्दा है।

"नई मिस साहब जो आई है, उन्हे पूछ रही हूँ।"

"जी हुजूर वे तो—"

"फिर तुमने हुजूर और मेम साहब की धुन लगाई ? भाई, चाहे और सबसे साहब, मेम साहब कहा करो। मुझसे दीदी कहो, बस दीदी ही।

"जी, दीदी जी, वे तो एक बार अपने कमरे से खाने के टेबुल पर आई थी, बस, वह भी बडे साहब के बहुत कहने-सुनने से।"

"अच्छा, तो तुम जाओ, जल्दी करो, एक बज रहा है।"

सुनन्दा खोजती-ढूंढती पहुँच गई उस कमरे मे, जहाँ चटाई बिछाकर कल्पना सिमटी बैठी हुई थी। कोई पुस्तक हाथ मे लिए पढ रही थी।

सुनन्दा पहुँची और उसी चटाई पर बैठ गई, आँखे पसार कर उस मोटी-ताजी, श्यामवर्णा युवती को देखा। परिपुष्ट शरीर, श्यामल रग। सुन्दरी किसी तरह भी उसे कहा नही जा सकता, परन्तु कुरूप भी नही। अति साधारण कल्पना, सुन्दर थे केवल उसके केश। खुली हुई केशराशि धरती पर लहरा रही थी।

नन्दा ने निस्सकोच उसके गले मे हाथ डाला।

"कहो, भला मै कौन हूँ ?"

कल्पना लजाई, सकुचित हुई, एक बार उसने नन्दा की तनी हुई आँखो के प्रति देखा, खिले गुलाब-सा चेहरा देखा, बोली-धीरे—

"आप सुनन्दा देवी हैं।"

"अरी चुप, नाम नही लेते। बडी बहन को क्या कहते हैं? तुमने दादू से मेरा नाम तो सीख लिया, परन्तु जीजी कहना क्यो नही सीखा?"

"अब तो सीख रही हूँ।"

तिनककर नन्दा बोली—"तो तुम सीख सीखाकर जीजी कहोगी। मन से नही? तो ऐसी बहन मुझे नही चाहिए।"

नन्दा को जाते देखकर कल्पना उसके निकट पहुँची, पुकारा—"जीजी।"

"दुर पगली, रो दिया?" अपनी साडी के पल्ले से उसके आँसू पोछकर सुनन्दा ने उसे गले लगाया, कहा—

"अच्छा, फिर पुकार तो सही।"

"जीजी!"

"और पुकार।"

"जीजी! जीजी!! जीजी!!!"

सुनन्दा आँखे बन्दकर खडी रह गई—जैसे उस 'जीजी', सम्बोधन को उसका रिक्त, सर्वशान्त हृदय समेटकर अमूल्य निधि की भाँति मन के किसी एकांत मे सहेजकर रख रहा हो।

जाने कब तक नन्दा वैसी ही खडी रही, बाहर से भृत्य ने पुकारा—"दीदी जी, बडे साहब बुला रहे है।" नन्दा कल्पना के आलिंगन से मुक्त हुई। विस्मय से कल्पना ने देखा, उसकी जीजी की आँखें अश्रु-पूर्ण हैं।

"अभी आ रही हूँ कल्पना। तुम चलोगी? चलो।"

"नही।" कल्पना बैठ गई।

"क्यो ?"

"मुझे डर लगता है।"

"किससे ? दादू से ?"

"हा जीजी, सबसे। यो कि इस घर-मकान तक से।"

"कैसी पगली है ? ऐसा डर क्यो ? नही डरते बहन।"

"जीजी।" उठकर उसने नन्दा का हाथ पकड लिया।

"क्या ?"

"तुम यहा से कभी मत जाना जीजी।"

हँसने जाकर भी नन्दा गंभीर हो उठी—"यदि सम्भव होता तो मैं तुम्हारे पास ही रह जाती कल्पि, अच्छा, अब रोज आऊगी।"

"तुम जहा रहती हो, वहाँ मुझ ले चलो।"

गम्भीर विस्मय से सुनन्दा ने उस तरुणी को देखा, फिर चल दी।

१०

श्रीनाथ के भोजन टेबिल पर हँसी का झरना उभरा हुआ था। नानाविधि भोज्य की सुगन्ध पथ तक फैलती, भोजन टेबिल के चारों तरफ की कुर्सियो पर भटनागर दम्पति, नलिनी आदि उपविष्ट थे। और कल्पना नवोढा वधू-सी सिमटी हुई किसी प्रकार एक कुर्सी पर बैठी हुई थी। न उसका हाथ प्लेट तक पहुच रहा था, और न कुछ खा रही थी।

बाय के हाथ से हँस-हँस कर भोज्य-वस्तु पूर्ण प्लेटो को लेकर सुनन्दा टेबिल पर रख रही थी, और नौकरों को आदेश करती—"फल उस टेबिल पर रखो, मीठी चीजे यहा रखो, गुलाब जल डला पानी देने को न भूलना।" यो जैसे इस घर की स्वामिनी वही हो।

"श्रीमती भटनागर शुरू करिए न ।" नन्दा ने कहा ।

"पहले आप आइए मिसेस राय ।"

"मुझे जरा देर लगेगी, तब तक सब चीजे ठढी हो जाएगी । आप लोग बैठिए ।"

मनीश झुंझलाया—"काम और काम, प्रकाश, तुम इन्हे जरा डाट तो दो, हम लोग भाभी के लिए बैठे हुए हैं, उन्हे परवाह ही नही ।"

"तुम्हारी भाभी को डाटने की हिम्मत मुझमे नही है, यह काम तुम्ही करो ।"—प्रकाश हसकर बोला ।

एक नारी का ऐसा प्राधान्य नलिनी को अच्छा नही लग रहा था बोली, "यह भी कोई बात है ? स्त्रियो की ऐसी स्वाधीनता किस काम की—जो पुरुषो की उपेक्षा करे ? बैठिए न मिसेस राय । देखती नहीं हैं ? आपके लिए सब बैठे हुए हे ।

"बैठ तो जाऊँ नलिनी देवी, किन्तु उसके बाद आपको खाना ठंडा मिलेगा । नौकर भी कभी यत्नपूर्वक काम करते हैं ?"

"तो आपकी बला से, घर वाले समझेंगे ।"

"मेरे यहा उपस्थित रहते हुए ऐसा कैसे हो सकता है ?"

"पहले कैसे चलता था ? आप तो अभी आई हैं ।"

उत्तर दिया सुनन्दा ने नही, मनीश ने—"पहले की बाते पहले खत्म हो चुकी हैं नलिनी जी, अब इस घर की स्वामिनी मेरी भाभी है ।"

"ऐसा" अपमान और शायद ईर्ष्या से नलिनी का मुख नीला पड गया । किन्तु विस्मय ! एक ऐसे अविकार की स्वामिनी होकर भी उस सुनन्दा लडकी के मुख-भाव का जरा भी परिवर्तन नही हुआ । अप्रियता होते देख कर नन्दा टेबिल पर बैठ गई । प्लेट को अपनी ओर खींच लिया । भोजन करते हुए पूछा—"कल्पना से तुम्हारा परिचय हुआ है मनीश बाबू ?"

अवहेलना से मनीश ने कहा—हॉ । आज सवेरे दादा ने कराया था ।"

कल्पना का इस घर मे आना न जाने क्यो नलिनी को बिल्कुल अच्छा नही लग रहा था कहा, "जडभरत क्यो बैठी हुई है ? हाथ निकाल कर खाइए ना"

मनीश ने आवाज लगाई—टेबिल पर बैठकर खाने की आदत शायद उनकी न होगी । उन्हे जमीन या चौके मे बैठाकर तुम्हे खिलाना था भाभी ।"

सुनन्दा को उन लोगो की बाते खराब लगी—माना कि सभ्य समाज मे कल्पना का आचरण शोभन नही हो रहा था, सो यह भी माना कि उस वातावरण मे, वहाँ की सभ्य दृष्टियो मे यह लडकी जगली की तरह लग रही है, किन्तु साथ मे यह भी मानना पड जाता है कि सभ्य समाज का जो बर्ताव कल्पना के साथ हो रहा है, वह जैसा तो निन्दनीय है, वैसा ही असभ्य । सभ्यता के नाते इस समाज मे असभ्यता का स्थान नही होना चाहिए न । तो अब प्रश्न एक नन्दा के मन मे यह रह जाता है कि सभ्यता की दुहाई देने वाले व्यक्तियो को सभ्य कहा जाए या असभ्य ? और यदि सभ्य कहा जाए तो ऐसी सभ्यता का ससार से विनाश होना ही काम्य हो जाता है ।

अपनी विरक्ति और क्रोध को नन्दा ने ओठो तले दबाया और बोली, "मैं नही जानती थी मनीश बाबू, कि स्त्रियो के अभ्यास और अनाभ्यास के तुम इतने बडे समालोचक हो । और कोर्ट मे अब धरा क्या है ? ढेर से बैरिस्टर और वकील । पेपरो मे आलोचनात्मक लेख दे दो । विशेषत स्त्रियो की समालोचना । देखना, कितना आदर होगा तुम्हारा ।"

सुनन्दा के उस व्यग से मनीश तो नही, किन्तु नलिनी का मुख अपमान से रक्तमय हो उठा । मनीश की लज्जा उसी तक सीमित रही ।

किसी ओर ध्यान दिए बिना ही नन्दा ने धीरे से कहा—"कल्पना !

खाओ, सब ठडा हो रहा है ।"

नन्दा ने भोज्य वस्तुओ को उठाकर कल्पना की प्लेट मे डाला और स्वय खाने लगी ।

"दादू तुम खा क्यो नही रहे हो ? सब ज्यो का त्यो पडा है ।"

चौक कर श्रीनाथ बोले—"मैं ? भूख नही है ।"

उस स्वर को सुनकर नन्दा चकित हुई । श्रीनाथ की उदासी का कारण ऐसा स्पष्ट था कि नन्दा जैसी बुद्धिमती नारी को समझने मे देर नही लगी । कल्पना के प्रति प्रथम दर्शन से ही मनीश ने अवहेलना प्रकट की । उससे दादू का निराश होना स्वाभाविक था । वह क्षुब्ध हुई, व्यथित हुई, दृष्टि अपने आप मनीश के प्रति उठ गई, उसके नेत्र नन्दा ने अपने मुख पर आबद्ध पाए । अपनी दृष्टि नन्दा ने फेर ली । और तब लज्जा की गम्भीर आह ने उसके सौन्दर्य को और भी बढा दिया । इसकी खबर उस तक शायद ही पहुँची हो । वह लजाई, शर्माई, सहस्र बार देखी हुई और अपने मुख पर उसकी आबद्ध दृष्टि को पूर्व मे जाने कितने ही बार देखी होगी, परन्तु उस दृष्टि के नीचे न जाने आज वह क्यो लजा गई ।

तब नलिनी पूछ रही थी कल्पना से, "आप कहाँ तक पढी हैं कल्पनादेवी ?"

नन्दा ने अपने को सभाल लिया सो भी मिनट भर मे । सुनन्दा ने उत्तर दिया, "कल्पना का परिवार स्त्री-शिक्षा का सहयोगी नही था न, अब यहाँ पढेगी ।"

विस्मित चौधरानी कह उठी—"क्या आज के दिन में सचमुच ऐसे परिवार हैं ?"

सहज स्वर से नन्दा ने उत्तर दिया—"विस्मय का इस मे क्या है ? अपना-अपना मत और सिद्धान्त तो है न ? इस विचित्र दुनियाँ मे विचित्र मनुष्य रहते हैं । कालेज की डिगरी को कोई महत्व देते हैं,

कोई नही ।"

"तो बासन मांजना, धान कूटने ही को क्या वे शिक्षा कहकर मानते हैं मिसेस राय ? उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सीढियाँ ही हैं डिग्रियाँ लेना ।" कह उठी नलिनी ।

"शायद वे उसे उच्च शिक्षा और वास्तविक शिक्षा कहकर मानते हो—जो कि डिग्री लिए बिना ही शिक्षा के स्वास्थ्य से स्वस्थ हो । आप किसे शिक्षा कह कर मानती हैं नलिनी जी ? और सुनिए, जिसे आप शिक्षा कहकर मानती है; दूसरे उसी को अशिक्षा कहकर मानते हो, दुनियाँ मे ऐसे कितने ही हैं । आपकी दृष्टि मे जो सभ्यता कहलाती हो, दूसरे की दृष्टि मे वही असभ्यता कहला सकती है । ऐसा होना स्वाभाविक है । एक शिक्षा, सभ्यता वह कहलाती है—जो कि बनाव, शृंगार, याने विलासिता, नकली पर निर्भर हो । एक वह कहलाती है—जो कि उन वस्तुओ को उपेक्षा की दृष्टि से देखे, जो कि शायद उन सब से दूर रहती हो, स्वाभाविकता, असली को ही महत्व देती हो ।"

श्रीमती भटनागर आग्नेय गिरी-सी फट पडी—'याने आप मुझे क्रिटीसाईज कर रही है मिसेस राय ।

"जी नही, सच पूछिए तो मै आपको याने आपके रहन-सहन को भली भाँति जानती तक नही हूँ । मेरे विचार से सब बातो मे अच्छाई और बुराई रहा करती है, अपना-अपना दृष्टि कोण, सिद्धान्त है । और हम मनुष्यो का स्वभाव ही है एक-दूसरे पर हँसने का, जबकि कोई वस्तु स्वभाव के अन्तर्गत हो जाती है, तब आलोचना, प्रत्यालोचना की परवाह कम रखना भी स्वभावभूत होता है । परन्तु मेरी समझ मे अब तक नही आया कि व्यक्तिगत रूप से आप इस मे कैसे घिसट आईं ?"

"लेकिन आप मुझे स्पष्ट कह रही हैं ।"

"आखिर बात क्या है ?"—विस्मय से नन्दा ने पूछा ।

और देखकर नन्दा विस्मित हुई, कि विकृत मुख से एव नन्दा को मुह चिढाकर वह बोली—"जी, मैं सब जानती हूँ, मेरा सीनेमा मे जाना, मेरी सुन्दरी बहनो को कहाँ तक अच्छा लगा है। वे पीछे रह गई और मिसेस भटनागर की तारीफ ससार के कोने-कोने मे गूँजने लगी।"

नन्दा ऐसी विस्मित हुई कि देर तक बात न कर सकी। नन्दा सोच उठी, यही है सभ्य समाज। यही-यही ? जो कि सभ्यता का दम्भ भरने वाले नर-नारी सभ्य रीति से बात करना भी नही जानते ?—ईर्ष्या, विलासिता, क्रोध करना ही प्रधान अग होता है, इसे ही सभ्य समाज कहते है ? आए दिन का सभ्य समाज क्या यही है ?

तब गर्व से नलिनी को साक्षी स्वरूप मध्यस्थ रखकर कह-रही थी श्रीमती भटनागर—"सचमुच नलिनी देवी,—जब मेरी तसवीर प्रेम का सौदा' पर सिनेमा हाउस मे भीड लगी रहती है—" हठात् श्रीमती भटनागर चुप हो गई, नन्दा से पूछने लगी—"आप सिनेमा एक्ट्रेस को खराब मानती हैं मिसेसराय ?"

"मैं ?—जरा-सा मुसकराकर नन्दा बोली—"नही तो, अपना अपना मत जो है बहन।"

"अच्छा सोचिए, यदि कभी आपका सौभाग्य हो सिनेमा स्टार बनने का तब ?"

"सौभाग्य ! नही-नही, वह तो मेरा सबसे बडा दुर्भाग्य होगा बहन।"

"ऐसा !" भौंहे ऊपर चढाकर श्रीमती भटनागर बोली—"तो आप सिनेमा स्टारो से घृणा करती है ?"

"नही। मुझे किसी को अच्छा या बुरा कहने का कौन-सा अधिकार है ?"

"तो ?"

"बहन, मैंने ऐसी बाते क्या कही, जिनसे आप इस सिद्धान्त तक

पहुँच सकी है ?"

"फिर आप सिनेमा स्टार बनना दुर्भाग्य क्यो समझती हैं ?"

"क्यो ? यह मेरा मतवाद है। मेरे विचार से माता की जाति नारी के लिये यह समय नही है सिनेमा मे एक्टिंग करने का।"

"तो घर मे बैठे-बैठे सोने का है ?" नलिनी के परिहास ने मानों सुनन्दा के मन को जाग्रत-सा कर दिया। वह कहने लगी शान्ति, धीरता से—"सोनेका ? नही। जागने का है। नलिनी जी, घर बैठकर भी हम स्वाधीन हिन्दुस्तान की स्वाधीनता चिरजीवी रखने के लिए सच्चे और ईमानदार नागरिक बनाकर उसे दे सकते हैं, और उसे देना भी है, हमारा कर्त्तव्य है कि अपनी सन्तानो को इस योग्य बनाएँ—जो आगे चलकर हिन्दुस्तान की स्वाधीनता, उसकी बागडोर सभाल सके। आज युगो के बाद हिन्दुस्तान स्वाधीन हुआ है। कब ? जबकि उसकी सारी विभूतियाँ लुट चुकी। पूरा सौन्दर्य, धन, व्यवसाय ही केवल नही वरन शिल्प, वाणिज्य, व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान आदि-जलकर भस्मीभूत हो गए, तब आई यह स्वाधीनता। इस स्वाधीनता का अर्थ तब तक कुछ नही निकल सकता, जब तक कि हम अपने सूने भडार ऐश्वर्य से भर न लेवें। मैं तो धन को नही किन्तु गुणो को, याने शिल्प-संगीत आदि को ऐश्वर्य मानती हूँ। लुटा हुआ हिन्दुस्तान, सूना, उजडा हुआ यह देश, शस्य विहीन वे उजडे हुए प्रान्तर, जहाँ केवल राख पडी हुई है, उस राख को साफ करने की शक्ति किसी एक मे नही है, वरन समवेत, मिलित शक्ति की जरूरत है। जरूरत है अब यहाँ की जनता को शिक्षित करने की। हम नारी की जाति आदि से देश और उसकी स्वाधीनता का एक अँग विशेष होकर हैं, अब आज, एक ऐसे दुर्दिन मे नाटक, ड्रामा और, विलासिता मे डूबकर हम कैसे रह सकती हैं ? मेरे विचार से वैसा जीवन हमारे लिए कलक के स्वरूप है और दुर्भाग्य है।"

जरा रुककर सुनन्दा पुनः कहने लगी—"सोचो तो बहन, आज यदि हमारे पास साधन होते, यदि हम प्रत्येक भारतीय नागरिक अपनी जिम्मेदारी को समझते, तो क्या पाकिस्तान का यह अत्याचार ? नहीं, नहीं ! पाशविक प्रवृत्ति के हाथ से अपने धर्म को, सम्पत्ति को, पति, पत्नि और सन्तान को नही बचा सकते थे ? पति के सामने पत्नी, माता, पिता और सन्तान पर अत्याचार, जिस अत्याचार की कल्पना शायद मानव इससे पहले नही कर पाया हो, वैसा राक्षसी अत्याचार और—" कहते-कहते उस एक दिन की भाति सहसा सुनन्दा उठकर खडी हो गई, एवं उन विस्मित् दृष्टियो के सामने से चलकर बाहर गाडी पर जा बैठी ।

मौन सुप्रकाश नमस्कार कर बाहर निकल गया । तब प्रत्येक के नेत्रो मे विस्मय अवश्य था । किन्तु मनीश के नेत्रो का विस्मय जैसे उसकी बडी आखो को चीर-फाडकर बाहर आने के लिए बद्ध परिकर हो रहा था । प्रश्न बस एक ही था मनीश के मन मे—भाभी होते हुए भी नन्दा उसके निकट आज भी एक समूची पहेली बनकर है ।

११

"भाभी, ओ भाभी !"

पपीता का जड सावल से खोद रही थी सुनन्दा । परिश्रम के कारण ललाट पर बूँद-बूँद कर स्वेद झलक रहा था, साडी का आँचल कमर में लपेट रखा था । सुनन्दा ने लौटकर मनीश को देखा और मिट्टी भरे हाथो से साडी का छोर खोलने लगी । जिस शीघ्रता से वह शरीर के उन्मुक्त अंगों को ढकना चाह रही थी, उलझे हुए वस्त्र से उसी प्रकार देर होने लगी ।

उच्च शब्द से मनीश हँसा—''क्या मैं शेर-चीता हूँ जो तुम्हे निगल जाऊँगा ? वाह भाभी, सफेद साडी तक मिट्टी लगे हाथो से गन्दी कर डाली !

अकृतकार्यता से नन्दा चिढी, दोनो हाथो से कमर मे लिपटी हुई साडी के छोर को खीचने लगी ।

मनीश जोर से हँसा ।

"क्यो हँसते हो मनीश बाबू ?

"उन नरम हाथो से कमर का फन्दा नही खुलने का, लो, मैं खोले देता हूँ ।" वचन-समाप्ति के साथ ही मनीश उसके कमर से साडी का आँचल खोलने लगा । किस शीघ्रता से यह सब हुआ कि नन्दा समझ सकने के लिए तैयार भी न हो सकी थी ।

मनीश कह रहा था—''भाभी, तुम जैसी भी उलझी हुई पहेली क्यो न हो परन्तु हो सुन्दरता का प्रतीक । यह तो मानना ही पडेगा ।"

रूप की प्रशसा, सो भी युवक पुरुष के मुख से ! हाँ, पुरुष के मुख से नारी के रूप की प्रशसा, वह भी स्वय उसी की, उष्ण होते-होते नन्दा हँस दी—"तो अब खोलोगे भी या मेरी कमर पकडकर यो ही खडे रहोगे ?"

"लेकिन इससे तो तुम्हारा कुछ भी बिगडता नही है न भाभी ?"

बिना कुछ सोचे-समझे ही शायद नन्दा कह उठी—"बिगडता कैसे नही ? इस दशा मे यदि कोई देखले ?"

तरल परिहास से मनीश ने कहा—''ज्यादा और क्या समझेगा ? यही कि मनीश भाभी से प्रेम करता है, बस ।"

बात यो ही कौतुक वश कदाचित् कही गई हो । हो भी सकता है, परिहास की एक सरल हँसी । परन्तु न जाने क्यो नन्दा की घन पलको से घिरी हुई आखे नत हो गईं ।

"अरे भाभी, तुम कांप क्यो रही हो ? बुखार तो नही चढा है ? चलो ! इस मिट्टी सनी साडी को बदलकर लेट जाओ।', तब तक सुनन्दा अपने को नियन्त्रित कर चुकी थी। कहा—"चलो मनीश बाबू, अपने हाथ के लगाए हुए पेडो के फल खिलाऊँ।"

उसने पके हुए पपीते और बिही तोडे, कहा, "कई दिन पहले केले की छौर तोडकर रखा है। वे पक गए होगे, दो रकम के केले है।"

मनीश ने मनोयोग से बगीचे को देखा और देखता हुआ आगे बढा। पीछे-पीछे सुनन्दा फल की टोकरी लिए वृक्षो का परिचय देती हुई चली "यह चार कलमी आम के पेड, इन्हे मैं मिसेज घोष के बगीचे से लाई थी। यह दो लगडा आम के पेड, इनके पौधे मैंने रामबाग के माली से खरीदे थे। और अगूर तो अभी गए साल लगाया है। लीची नही है, कठहर तो देखो, नीचे से ऊपर तक फले है, इनमे एक भूइयाँ कठहर हैं।"

"भूइयाँ ! याने ?"

"यह जमीन के अन्दर होते हैं।"

"ऐसा ! इससे पहले तुम कहाँ थी भाभी ?"

मनीश के प्रश्न को जैसे नन्दा टाल-सी गई—"इधर चलिए मनीश बाबू, यह लौकी जितने तो लम्बे होते हैं, उतने ही नरम। भाटे दो रकम के है, सेम तो प्रायः बारह महीने होती है।'

"वाह, यहाँ फूल के पेड भी हैं, इतने ढेर से गेदा क्यो लगाए ? यह कोई अच्छे फूल थोडे ही है।"

"गेंदा ? यह सब बिक जाते हैं। गेंदा, सदा सुहागिन आदि के हार बनाकर रखती हूँ, मन्दिर और बाहर के माली शाम को आकर ले जाते हैं।"

"रोज ?"

"हाँ।"

"और इतनी ढेर-सी तरकारी क्या करती हो ?"

"सब बिक जाती है। मेरे घर जो खर्च होता है उतनी रखकर सब्जी वालियो को बेच देती हूँ, वे रोज आती है, यदि खुद बेचती तो इससे दुगना पैसा मिलता।"

"फिर स्वय क्यो नही चली जाती हो ?"

हँस कर नन्दा ने कहा—"हानि क्या है ? उन्हे स्कूल मास्टरी कर थोडे-से पैसे मिलते है। और इधर गृहस्थी के लिए ज्यादा पैसो की जरूरत है न। और हा, दिन पर दिन मँहगाई बढती चली जा रही है। मनीश बाबू, मेरे विचार से परिश्रम कर, इज्जत के साथ जीने मे कोई लज्जा नही होनी चाहिए।"

"अरे भाभी, अगर तुम कही बाजार मे बैठ जाओ तो बस भीड लग जाएगी।"

"रहने भी दो। चलो, फल खिलाऊँ।"

दोनो भीतर पहुँचे। और तब "लक्ष्मी-लक्ष्मी" पुकारते हुए श्रीनाथ पहुँचे—"जल्दी करो लक्ष्मी, कल एला की शादी है। तुम्हारे बिना चौधरानी घबरा रही है।"

"किन्तु मैं तो शादी-ब्याह मे नही जाती हूँ न दादू ?"

"सुन लिया था प्रकाश से, तुम सबको हटा सकती हो। लेकिन अपने दादू को नही। तुम्हे मानना ही पडेगा।"

और विस्मय से मनीश ने सुना—उसकी वह जिद्दी भाभी एक वाध्य शिशु की भाति कह रही है—"चलूँगी दादू।"

"अच्छी लडकी, मैंने क्या यो ही लक्ष्मी नाम रखा है ?" कहकर हँसने लगा—"अरे मनीश, तुम यहा हो ? अच्छा-अच्छा। इस लक्ष्मी के सगत मे—"

"क्या बक रहे हो दादू !" कहकर नन्दा वहा पर हँसिया लेकर बैठ गई और पानी मे फलो को धोकर काटकर दो प्लेटो मे रखने लगी!

"कल दस बजे तुम और प्रकाश तैयार रहना। हम सब लोग साथ-साथ चलेंगे।"

"दस बजे से क्या करूँगी जाकर, शादी का लग्न रात आठ बजे है न ?"

"हा, लेकिन बाकी का सब बन्दोबस्त हम तीनो को करना है। और काम रविवार का है, प्रकाश की छुट्टी भी रहेगी। चलूँ लक्ष्मी।"

"और यह फल जो काट रही हूँ ? खाकर जाओ।" दोनो के सामने फल की प्लेट रखकर नन्दा बोली—"चाय ला रही हूँ।"

"यह भी कोई चाय का वक्त है ? तुम मुझे खिला-खिला कर बुढापे मे जवान कर रही हो लक्ष्मी !"

सुनन्दा मुसकराने लगी।

चलते-चलते श्रीनाथ लौटा—"और हाँ, कल्पना को भी लेता चलूंगा, ऐसी अच्छी सीधी लडकी है कि क्या कहूँ।"

मनीश ने उत्तर दिया—"आप भी जाने कहाँ की जगली लडकी को उठा लाए और उसे घर मे रखे हुए है। आज मै साफ कह रहा हूँ दादाजी, अगर वह घर मे रह जावेगी तो मैं घर छोड़ दूंगा। अन्ततः उस जानवर को एला के घर न ले जाना।"

एला के घर जाना श्रीनाथ भूल गया। घुटने टेककर वही जमीन पर बैठा। हृदय पर पहाड-सा टूट पडा। हताश, निराशा से जैसे श्वास हृदय ही मे घुटने लगा।

देखा एक बार नन्दा ने मनीश के विरक्ति—विराग मे भरे हुए मुख को, देखा दूसरी बार दादू के उस उजडे-से चेहरे को और बोली—"बात क्या है दादू ? अभी हम कल्पना को किसी के घर लेकर भी क्यो जाएँ ? बस, उसे मेरे पास भेज देना दादू।"

प्रबल वेग से मस्तक हिलाता हुआ मनीश बोला, "नहीं, नही, किसी तरह भी नही। उस असभ्य लड़की की यहाँ क्या जरूरत ? भाभी,

क्या तुम यही चाहती हो कि मै न आऊँ ? दिन मे दो घडी जो हँस-बोल लेता हूँ, वह भी बन्द कर दूँ ? याने अब दिन-रात बाहर ही बाहर रहा करूँ ?

• पौत्र की बातें सुनकर श्रीनाथ का वृद्धत्व जैसे और भी दस वर्ष आगे बढ गया। कहा—"नही मनी, ऐसा नही कहा जाता, उसे यहाँ नही भेजने का।"

वाद-प्रतिवाद का अवसर दिए बिना ही श्रीनाथ चल पड़े, मनीश मुह बनाकर बैठा रहा।

"मनीश बाबू।"

"सच भाभी, अगर दादा उसे घर मे रखे रहे तो मैं घर छोड दूँगा।"

"वह निराश्रय लडकी अब कहाँ जाए ? यह तो कोई भूलने की बात नही है न कि मरते वक्त कल्पना के पिता उसे दादू के हाथ सौंप गए। और यह भी हम नही भूल सकते कि दादू की इज्जत तुम्हारे हाथो है।"

"मेरे हाथ! क्या मतलब ?"

नन्दा चुप रही।

"दादू उसकी शादी क्यो नही कर रहे हैं ? क्या वे उसकी शादी नही कर सकते ?"

जरा सोचकर नन्दा ने कहा—"कर क्यो नही सकते ? किंतु एक को मृत्यु सेज पर वे वचन दे चुके है न"

विस्मय, विराग से मनीश कह उठा—"याने उसे मेरे लिए रखे हुए हैं। वाह! माफ करो भाभी, उस गोल-मटोल, बदसूरत लड़की से मै कभी भी शादी न कर सकूँगा।" जरा रुककर उत्तप्त स्वर से कह चला, "और दादू या दुनियाँ के किसी को भी ऐसा कौन-सा अधिकार है जो कि मेरे अमत से मेरी जिंदगी बरबाद करे। मुझ पर अत्याचार करने

का किसी को कौन-सा अधिकार है ?"

सुनन्दा जरा-सा हँसी—उस हँसी की जाति ही निराली हुआ करती है। कहने लगी—"अत्याचार करने का अधिकार ? फिर यह तो एक बडा प्रश्न है मनीश बाबू ! मै पूछती हूँ पाकिस्तान मे मनुष्य ने जो मनुष्य पर अत्याचार किया है, क्या वह अत्याचार करने का उन्हे कोई अधिकार था ? हमारी भारतीय सभ्यता का आधार ही व्यक्तिगत स्वाधीनता है। भारत का सन्देश है—स्वाधीन रहो। परमात्मा अनादि, स्वतन्त्र एव स्वयदर्शी है। सो मानव मात्र स्वतन्त्र एव स्वय द्रष्टा हुआ करता है। मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है स्वतन्त्रता, किन्तु मैं पूछती हूँ—हाँ, पाकिस्तान की बाते तो जाने भी दो। यो नित प्रतिदिन कितनो पर अकारण अत्याचार हुआ करता है। बलवान् निर्बल को दबाता है। धनी गरीब का गला घोटता है। कहो, किस अधिकार से ऐसा हुआ करता है ?"

झुझलाकर मनीश ने कहा—"बस वही तर्क। अरे भाई, जरा आदमी की तरह तो सोचकर देखो, जिसे देखकर घृणा होती है, उससे कोई शादी भी कर सकता है ? विवाह क्या बच्चो का खेल है ? कहो भाभी।"

भाभी खिलखिला पडी—"अजी, नलिनी बैठी तपस्या कर रही है। उसी से कर लो।"

"बस, अच्छा न होगा भाभी।"

सहसा सुनन्दा गम्भीर हो गई, कहा—"यदि एला को तुम चाहते थे तो दादू से कहा क्यों नही ?"

मनीश की आँखो मे विस्मय भर उठा—"क्या तुम मुझे ऐसा ही अपदार्थ समझती हो ? भाभी, क्या एला जैसी खेल की गुडिया को मैं जीवन-संगिनी बनाता ? आश्चर्य, आखिर तुम ऐसा सोच ही कैसे सकी ?"

सुनन्दा भी कम विस्मित नही हो रही थी—तो क्या मनीश को समझने मे उसी ने गलती की ?

अनमनी-सी नन्दा पूछ उठी—"तो ?"

दूसरी ओर मुह फेरकर मनीश बोला—शायद जिन्दगी मे मै शादी नही ही करूँ ?"

उस आहत किंतु वेदनातुर स्वर मे क्या था सो नन्दा ही जाने किंतु देर तक वह मौन हो रही, इतना तो सही ही है ।

मनुष्य की छाया द्वार पर पडी । दोनो ने लौटकर देखा । श्रीमती चौधरानी के साथ नलिनी उपस्थित थी । नन्दा ने उन्हे बैठाया ।

हाफती हुई चौधरानी बोली—"स्नो-पाउडर और साडियाँ खरीदते-खरीदते थक गई हूँ । क्या करूँ । मै न करूँ तो करे भी कौन ? मि० चौधरी तो ऐसे है कि सिवा क्रिटिसाइज के और कुछ नही कर सकते । सोचा कि चलो मिसेस राय के घर एक कप चाय पी लूँ । यह बिचारी नलिनी सवेरे से मेरे साथ है ।"

नन्दा उठी—"अभी लाई मौसी जी, और आप मुझे नन्दा कहा करिए मौसी, मिसेस राय नही ।"

वह चल दी ।

नलिनी ने तौल तौल कर बाते करना शुरू कर दिया—"आज इस सभ्यता के युग मे भी कोई मौसी, मामी सम्बोधन किया करता है ? मिसेस राय सभ्य होकर भी असभ्य रह गई ।"

भाभी की निन्दा ? मनीश उबल पडा, कहा—"वे अपने को मिसेस राय नही कहलाना चाहती है, इस लिए ? लेकिन मेरी भाभी जैसी असभ्य अगर आज दो चार स्त्रियाँ हमारे घर निकल आती तो मेरे विचार से हमारे जैसे भाग्यशाली कम होते । और हमारे घरो का चेहरा ही बदल जाता ।"

चौधरानी ने कहा—"जरूर-जरूर, सुनन्दा बडी ही बुद्धिमती है ।"

"लेकिन तो भी अभी उनके भक्तो की कमी रह गई है। है न मनीश बाबू ?"

उस परिहास को मनीश ने सुनकर भी नही सुना। बोला—"ऐसी स्त्रियो के लिए भक्तो की जरूरत नही पडती नलिनी देवी, वे स्वयं अपने आप मे एक करोड हुआ करती हैं। समझी न आप ?"

चाय लेकर सुनन्दा पहुँची।

"अरे यह सब क्या ? इतने फल यह बालूशाही। नही बेटी, मुझे तो सिर्फ चाय चाहिए बस।"

इसके बाद चम्मच से बालूशाही का टुकडा मुँह मे डालकर कहा—"तुम लाई हो, क्या करूं ज़रा सा टुकडा मुँह मे डाल लूँ। अजी वाह, यह बालूशाही, यह तो अमृत के समान बनी है। बाजार से मैने कभी ऐसी बालूशाही नही खाई, यह क्या तुमने आर्डर देकर बनवाई हैं ?"

"नही तो कल मैंने बनाए थे मौसी।"

"अरे सच ? मुझे तो तुमने अचम्भे मे डाल दिया, ऐसी स्वादिष्ट और खस्ता बालूशाही मैंने तो कभी नही खाई।"

और इसके बाद वह पूरा प्लेट खाली कर गईं।

मनीश ने कहा—"केवल यह—बालूशाही ? जो फल आप खा रही है, यह सब इनके हाथ के लगाए हुए हैं, और मेहनत के हैं।"

"बाप रे, यह तो गजब की लडकी है। इसे जितना देखती हूँ, जितना मिल रही हूँ, उतना ही इसके गुणो पर मुग्ध हो रही हूँ।"

इतनी प्रशसा नलिनी से नही सही गयी—"कहा इन्हे शायद बचपन से काम करने की आदत हो।"

किसी ने उसकी बाते सुनी ही नही, या ध्यान नहीं दिया। वह बोली—"आप खडे-खडे चाय क्यो पी रहे हैं, बैठिए न।"

"धन्यवाद, मै आराम से हूँ" मनीश ने कहा।

चलते वक्त चौधरानी बोली—"सब कह रहे थे नन्दा, कि तुम

शादी मे नही जाओगी । अगर ऐसा है तो मैं मि० चौधरी को भेज दूँगी वे तुम्हे पकडकर ले जाएँगे ।"

"नही, नहीं, उन्हे मत भेजिए, मैं जरूर जाऊगी । ।" सुनन्दा के उस स्वर ने मनीश को चकित कर दिया । वह नन्दा के प्रति देखता ही रह गया ।

१२

विवाह और फिर एला का विवाह । धनवान की एक मात्र सन्तान, सभ्य, शिक्षित, अपटुडेट एला का विवाह । आडम्बर तो था ही, उपरान्त पुष्प और पुष्पहार, गुलदस्तो की थी भरमार । वह था चौधरानी का अपना एक दृष्टिकोण । पति के मतामतो की उपेक्षा कर अपने मत को प्रमुख रखना—यही थी चौधरानी की चिरकाल की रुचि । परन्तु यदि वह पति से हारी थी तो बस इस विवाह मे । एला और चौधरानी के हजार सिर पीटने पर भी चौधरी अपने मत मे अटल रह आया—"नही, सिविल मैरिज नही हो सकता, एला का विवाह हिन्दु मत से ही होगा ।"

भोज्य पदार्थ बनवा रही थी—पडोस की सत्या देवी और माया, जलपान तथा स्त्रियो की अभ्यर्थना, भोजन की व्यवस्था आदि सब कुछ सुनन्दा को सौंपा गया था । सो नलिनी चौधरानी के साथ फूलो के हार बाँटती और कमरो मे लटकाती फिर रही थी ।

स्थूल शरीर लेकर चौधरानी हाँफती हुई दालान के मोड पर बैठ गईं । नलिनी ने जल्दी से रूमाल निकाल कर उनके माथे का पसीना पोछा ।

"दौड़ते-दौडते आप पसीने मे डूब गई है, आइए बैठिए । मैं सब कर

लूंगी, अब तुम को उठने भी न दूंगी। कहीं हार्टफेल हो जाए तो?"

वहाँ से जाती हुई सुनन्दा ने लौट कर देखा।

"देखा न नन्दादेवी आन्टी का पसीना? बस अब यही बैठो, ऐसे ही मे तो हार्ट फेल हुआ करता है।"

नन्दा निकट पहुँची, परन्तु पसीने का चिह्न तक न देख कर विस्मित हुई।

शुष्क कठ से चौधरानी ने कहा—"एक कप चाय नन्दरानी।"

"अभी आई" कह कर उसने चाय दी।

बारीक आवाज से नलिनी ने बाय को पुकारा—"बाय, आन्टी को दो स्लाईज केक और मक्खन-बिस्कुट दे जाओ।"

चौधरानी ने कहा—"तुम्हारा मुँह भी तो सूख गया है नलिनी, मुँह-हाथ धोकर जरा कपडे बदल डालो। नहीं, साडी बदलने के लिए घर जाने की जरूरत नही। लो, यह आलमारी की चाबी, मेरी साडियो से जो पसन्द आए, पहन लो। नही, नही, मत करो, आन्टी कहती हो, फिर परायापन क्यो? आलमारी मे सामने ही पाईपिग बार्डर की सफेद जार्जट की साड़ी रखी हुई है, कल मि० चौधरी मेरे लिए खरीद लाए थे। वे जानते हैं कि सफेद साडी मैं फूटी आखो भी नही देख सकती, फिर भी वे लाए।"

"तुम पसन्द नही करती हो, जानते हुए भी उन्हे नही लाना था।"

"अजी, उनकी बात छोडो, शादी के बाद से मैं जल-भुन कर मर रही हूँ। जो भी मैं करना चाहूँ, सब मे उन्हें बाधा देने की बुरी आदत है। पुराने सडे-गन्दे सस्कार मे सने हुए आदमी तो हैं वे। मेरा जो कुछ हुआ वह तो हो ही चुका, एक लडकी, उसके तक पीछे पडते हैं। वह भला क्यों सहने चली? खरी-खरी सुना देती है। हाँ, तुम जाओ, कपडे बदल कर ताजा हो लो। एला को जरा भेज देना।"

नलिनी चाबी लेकर चल दी। एला पहुँची। चाय-पीते-पीते चौध-

रानी ने एला को देखा, कहा—"हा ठीक है। आठ बजे लग्न है, उससे पहले नहा-धोकर तैयार हो लेना। लिपस्टिक जरा डीप शैड देना, पहले शेम्पू से बालो को धो लेना, मैंने आया से कह रखा है कि मिस बाबा के बालो को धोना है। सूखने पर हेयर क्लिप्स लगाना जिससे कि खासे फूले हुए घुघराले बाल बन जाए और गोल्डन ब्रोकेड की साडी व ब्लाउज मैं शादी के वक्त के लिए लाई हूँ। मोती के नही, हीरे के सेट पहनना और सुनहला फ्रेम वाला एमरिकन डिजाइन का चश्मा अच्छा मेच करेगा।"

"ममी, मैं ब्लाउज गोल्डनेट वाला पहनूगी।"

'उसे ? बहुत पतला है, तेरा पापा नाराज होगा।"

मुँह बिचका कर कन्या ने कहा—"मेरी बला से।" और माँ की गोद मे बैठकर दोनो बाहो से कठ लपेट कर बोली, "ममी, मै अब उस से शादी नही करूँगी।

"किससे ?"

"उस रवीन्द्र से।"

माता हँस कर बोली—"किससे करेगी ?"

"मिस्टर रे से करूगी।" और तब परम उत्साह से वह कहने लगी—"जानती हो ममी, अभी उस दिन की तो बात है, वह सिनेमा मे एक्टिंग करने उतरा, बस दो ही चार महिनो मे ऐसा नाम कर लिया कि जनता उसके नाम से पागल है, एकट्रेसगण उसके साथ एक्टिंग करने के लिए खुशामद किया करती हैं। सिनेमा के मैनेजर से लेकर डायरेक्टर तक हाथ जोडे खडे रहा करते हैं। तुमने भी उसका एक्टिंग जरूर देखा है।"

सोचती हुई माँ बोली—"देखा होगा। कौन-सा है ?"

"अजी, वही तो है ममी, मिसेस भटनागर याने सुव्रता का पार्टनर।"

आखे निकालकर माँ ने कहा—"अच्छा, वह गोरा-दुबला सा आदमी ?'

"हाँ, हाँ। कितना अच्छा एक्टिग करता है। है न ममी ?"

माँ ने लडकी की हाँ मे हाँ मिलाई—"सच, बहुत ही अच्छा।"

"मै उसीसे शादी करूगी ममी।"

एला के मस्तक पर हाथ फेरती हुई चौधरानी ने कहा, "आज आठ बजे शादी है। अब चार बज चुके है। पगली, अब कही यह शादी रुक सकती है ? पहले तूने क्यो नही कहा ? लड-झगडकर मै तेरे पापा को राजी कर लेती। तब तो तुम्ही ने कहा था एला—" रवीन्द्र पुराने चाल का है तो होता रहे, पर अतुल धन तो है। चाहे वह जैसा रहा आवे। एक कार मेरे लिए रहेगी, बस, रुपयो की गद्दी पर बैठी मन-मानी किया करूँगी, नही कहा था ?"

"कहा तो था, लेकिन वह पुराने विचार वाला है, मोना कह रही थी—'तुझे वह सुव्रता की तरह डिनर पार्टी मे थोडे ही जाने देगा। न सुव्रता की तरह बालडान्स ही करने देगा, हर बात मे टोका करेगा। पर्दे मे रखेगा'। सच ममी ?"

अहकार के साथ चौधरानी ने कहा—"अगर वह ऐसा करेगा तो मैं भी देख लूगी। इसीलिए न मैं सिविल मैरेज देना चाहती थी। खैर, तू जाकर नहा ले। वक्त कम है। अरी नलिनी ओ नलिनी, श्रीनाथ साहब आए कि नही ? जरा देखना। मैं तो शादी-ब्याह का कुछ नही जानती। आ गए। जान बची, नमस्कार, नमस्कार, अब आप उधर संभालिए, देखिए, मण्डप-अण्डप क्या कहा जाता है, और वहाँ क्या-क्या चाहिए ? मुहल्ले की बूढी पुरानी स्त्रियो ने बहुत कुछ कर रखा होगा।"

रात्रि के आठ बजने मे कुछ ही विलम्ब था। चौधरानी की आपत्ति होते हुए भी शहनाई, बैंड सब कुछ बज रहे थे और लाउडस्पीकर भी।

दोनो हाथो से कानो को आच्छादित किए चौधरानी मण्डप के नीचे

बैठ गईं, कहा—"इन बाजो ने तो मेरे कानो के पर्दे फाड दिए। सब बातें गँवारो की तरह। मारे दर्द के सर फटा जा रहा है। मुझसे अब कुछ नही हो सकेगा। समझे न श्रीनाथ साहब!"

नलिनी गुलाब जल और पखा लेकर दौड़ी आई। चौधरानी के मस्तक पर गुलाब जल मला जाने लगा।

श्रीनाथ ने कहा—"आप बैठी रहिए, सब हो जाएगा।"

विवाह आरम्भ हो गया। वर मण्डप के नीचे आया।

व्यस्तता से श्रीनाथ ने पुकारा—"लक्ष्मी, ओ बेटी लक्ष्मी।" सुनन्दा पहुँची और उसकी दृष्टि वर के मुख पर पडी। वही समय था जब कि रवीन्द्र की आँखे उठी और सुनन्दा के मुख पर स्थिर हो रही। भूतग्रस्त की भाँति उनकी दृष्टि विचित्र हो रही। नन्दा एक बार सिहरी, कापी और तब सयत स्वर से पूछा—"पुकारा था दादू?" निकट खडे सुप्रकाश ने वर को देखा और कदाचित् उसके अनजान मे मुख से निकल गया—"यह कौन है?"

कोई बोला—"अजी, वाह, सुप्रकाश बाबू, आप ही अपने मालिक को नही पहचानते?"

"पहचान?"—स्वप्नग्रस्त की भाँति कहने लगा प्रकाश "पहचान? एक रवीन्द्र से मेरा शायद परिचय रहा है, और वह पहचान पाकिस्तान ही मे खतम कर आया था। वे भी प्राय ऐसे, इन्हीं की तरह देखने मे थे।"

"विचित्र आदमी हो यार? अपने मालिक को नही पहचानते। यह शायद बाहर से आए है। अमीर आदमी हैं, किसी से मिलते-मिलाते कम हैं, इनके कई कारखाने हैं। स्कूल है, इन्ही का तो वह स्कूल है, जहाँ मास्टर हो। करोडो रुपये का कारबार है।"

सहमकर प्रकाश ने कहा—"लेकिन यह तो कभी स्कूल मे जाते नही। इनके शायद वे सेक्रेटरी हो, जिनसे अब तक वास्ता पडा।"

तब नन्दा से कह रहे थे श्रीनाथ-"समझी लक्ष्मी, अब सब नियम-दस्तूर तुम्हे ही करना है। चौधरानी जी अचानक बीमार हो गई है। उनके बदले उनका सब काम, याने मडवा के नीचे दुल्हा-दुलहिन की आरती उतारने से लेकर सारा नियम तुम्हारे सिर है। इन सब शुभ कार्यों के लिए सती-साध्वी, पतिव्रता की जरूरत पडती है न। और तुम्हारे सिवा ऐसी साक्षात् लक्ष्मी यहाँ शायद ही कोई हो।" इसके बाद नन्दा के कान से लगाकर निम्नस्वर से वृद्ध ने कहा--"इनमे कौन स्त्री कैसी है। कौन कह सकता है ? मुझे तो तुम्हारे सिवा किसी पर विश्वास नही।" और तब कठस्वर को उच्चतर कर कहा--"तैयार हो ? यह काम तुम्हे ही करना है।" किन्तु इतने पर भी जब नन्दा ने हिलने का नाम नही लिया, तब सहसा ही श्रीनाथ ने नन्दा के मुख के प्रति देखा। वैसा सर्वस्व लुटा हुआ, रिक्त, रक्तशून्य मुख इससे पहले शायद ही श्रीनाथ ने कभी देखा हो। आकुल स्वर से वे बोले--"तुम्हे, तुम्हे क्या हो गया है ?"

पुरोहित ने आवाज लगाई--"लग्न निकाला जा रहा है, नियम-रस्म पूरा करो।"

"नन्दा जल्दी, लो यह घी के दिए हैं। थाली मे उठा लो और चलो। मेरी सती-लक्ष्मी बेटी के सिवा यह काम कोई नही कर सकता।"

श्रीनाथ ने उसका हाथ पकडकर खीचा।

"नही।"

"क्या नही ?"

"सुप्रकाश मेरे पति नही है।" परिष्कार किंतु धीरस्वर से वह बोली।

श्रीनाथ को मानो करोडो वृश्चिक ने दशन कर लिया। अनजान से पूछने लगे--"तो प्रकाश तुम्हारा कौन है ?"

सो प्रकाश ? वह वर्ण-हीन मुख से उन शत-सहस्र कौतूहली नेत्रों

के सामने से हट जाना चाहने लगा। और निकटवर्ती जिन्होने सुना, वे सब नन्दा के चहुँ ओर घिर आए। नलिनी के मुख पर व्यग्य की हँसी भर उठी। चौधरानी सिर दर्द भूल गई।

और जो नारी कि इतने सब का दर्शनीय बन रही थी, उस नन्दा की आवाज मानो जलन्त विद्रोह से भर-सी उठी—"वे ? प्रकाश बाबू ? वे मेरे आज के साथी है। और हैं पाकिस्तान के खूनी वातावरण से मुझे यहाँ तक लाने वाले ! मेरे आश्रय दाता मित्र, मेरे बान्धव।"

चौधरानी कह उठी—"या भगवान्।"

"चलो भाभी, मुझे नीद आ रही है। तुम्हे घर पहुँचा दूँ। फिर आराम से सोऊँगा। दो दिन से जाग रहा हूँ।"—वचन समाप्त कर मनीश ने सुनन्दा का हाथ पकडा और भीड को चीरता हुआ बाहर निकला।

तब बाहर शहनाई मे बेहाग की मीठी धुन बज रही थी।

नन्दा धीरे जाकर कार पर बैठी।

मनीश ने आँखे घुमाकर चहुँ ओर देखा, सुप्रकाश का कही पता न चला।

श्रीनाथ भागे हुए आ रहे थे। चिल्लाकर पुकारा—"मनीश, ओ मनीश।"

"भाभी को घर ले जा रहा हूँ" तीव्र स्वर से मनीश ने कहा।

"सुनो तो।" श्रीनाथ बोले।

"पहले भाभी को पहुँचा दू।" और वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कार पर बैठ गया—"चलो मोहनसिह।"

सुनन्दा के द्वार पर गाडी रुकी। हडबडाकर सुनन्दा से पहले मनीश घर मे घुसा और नीचे की दालान मे बैठ गया—"बाप रे, मारे भूख के आखे निकली आ रही हैं। कल से भूखा हूँ। तुम कपड़े पीछे बदलना भाभी, पहले मेरा खाना तैयार करो। बस, गरम-गरम

पूरियाँ, और आलू का फ्राई। पापड भी तल लेना। जरा तौलिया देना, मैं नहा लू।"

कहा मनीश ने और ऐसे सहज ढग से कहा कि जैसे मानो कहीं कुछ हुआ ही न हो।

१३

सन्ध्या, सिन्दूर भरी डिबिया-सी, साँझ की नवोढा-सी झाँक रही थी गृहस्थो के द्वार पर, प्रातः सन्ध्या मे समाहित हो चुका था। और गत काल आज मे। जन्म की व्यथा लिए मौन रात्रि विश्व के प्रातर मे खडी बिखरे कुन्तलो मे ससार की वार्ता समेटने लगी थी।

जब उस मौन व्यथा की मुखरित आह, कम्पित गुजना के साथ सुनन्दा के मुक्तद्वार पर पहुँची, तब वह चाँद भरी रात्रि मे ऊपर के झरोखे मे बैठी स्वयं ही एक जीवित आह बनी हुई थी। कब सन्ध्या रात्रि मे परिवर्तित हुई, नन्दा कुछ नही जानती।

सोच रही हो शायद वह पथ के उस पार की अट्टालिका के प्रति दृष्टि निबद्ध किए—जन्म की वेदना मे सनी यदि वह जन्मी थी, तो वेदना का अन्त भी कहाँ है ?

अट्टालिका का वातायन खुला। राशि-राशि उज्ज्वल प्रकाश बाहर निकलकर खुशी की वार्ता मे स्वय ही मस्ताने लगा। देखा नन्दा ने उस प्रकाश को, निबद्ध हो रही दृष्टि प्रकाश की उज्ज्वलता मे।

यह प्रकाश जीवन की हरी खुशी मे रगा, दूर्वादल के शीर्ष-सा ताजा यह प्रकाश—उस उतरती हुई सन्ध्या के मोहजाल-सा। नन्दा के मन मे आया—क्या उसे उस प्रकाश का तिल बराबर अश भी दुनिया मे प्राप्त नही हो सकता था ? किन्तु क्यो ? माना कि दुनिया की पूर्ण

व्यथा लिए वह जन्मी । परन्तु एक उसी को सब कुछ सह सकने के लिए क्यो बनाया गया ? क्यो विधाता ने उसे सिरजा ? और उस विधाता को कौन-सा अधिकार था—उसे मरुभूमि की आह की तृष्णा मे बसाने का ? नही-नही ! वरन स्वय उस एक नारी ही को एक मरुभूमि की आह बना देने का ?

पथ चलता पथिक गा उठा—"प्रेम के गान सुनाओ राधे, प्रेम गीत मे समाओ ।"—उस अन्धकार मे भी सुनन्दा के नेत्र अग्नि शिखा से प्रज्ज्वलित हो उठे ।

भौंहे सिकोडकर वह गुनगुनाई—मानो अपने आपको सुना रही हो—" सब झूठा है, सब झूठा ।" और फिर विद्रोह की तीव्रता में फट-सी पडने लगी—"प्रेम ! प्यार ! स्नेह ! ममता ! सब झूठा है । बच्चो का खेल है, कवि की कोरी कल्पना है । है अलैया का दीपक, जिसे कि कल्पना के हवाई जहाज़ पर चढाकर असम्भव विचित्रता मे रग भर दिया जाता है । किन्तु जिसके वास्तव जीवन मे वह जैसा तो मिथ्या है, वैसा ही हास्यास्पद भी ।"

प्रेम ! और उस मौन बेला मे पुन: नन्दा के मन मे प्रश्न उठा—प्रेम ! वह तो कवि-कल्पना की उडान है । न उसकी कोई सत्ता है, न वास्तविकता । प्रेम की परिभाषा मानव ने कितने ही प्रकार से की । युग-युग मे बसे हुए उस प्रेम को किसी ने आदिम सत्ता के रूप मे चाहे क्यो न माना हो, परन्तु है वह,— हाँ, उसकी भित्ति स्थापित है बालुका के ढेर मात्र पर । सो है स्थापित स्वार्थ पर । नही-नही । पुन: नन्दा ने अपने मन के अन्तरतम प्रदेश मे कहा—उसकी भीत जमी हुई है—अन्याय पर, सच तो यह है कि वह छूत मार्ग का साथी है ।

नन्दा के नेत्रो की ज्वाला के स्थान को विस्मय और वेदना ने निगल-सा लिया— सो भी ऐसे सहसा कि वह वार्ता कदाचित नन्दा ही के निकट गोपन रह गई । उसका जी अखण्ड विस्मय और वेदना से

भर उठा।

बैठी-बैठी नन्दा सोचने लगी— बाल्यावस्था मे पितृमातृहीन होकर, उस स्नेह से वह वञ्चित रही थी। परन्तु हिन्दुस्तान मे पहुँची तो पाया दादू को। सौम्य, देवतुल्य वह दादू, और शायद जी भरकर नन्दा ने उस दादू को श्रद्धा-भक्ति से स्नेह किया। और वह दादू ! उनका वह अकृत्रिम-सा स्नेह ? जो कि एक दिन उसे देखे बिना आतुर होकर भरी दोपहरी मे भागकर आते थे और अपना ममत्व जतलाने लगते थे। जो कि भ्रमर-गुजना से उसके कानो मे गुनगुनाया करे—मनीश और उसमे कोई भी अन्तर नही रह गया है उनके पास। और उन्ही वृद्ध हृदय का वह परिपुष्ट प्रेम, स्नेह, ममता—जो कि अपने पौत्र के शत अन्याय, अत्याचार, उच्छृङ्खलता पर भी उदार बाहो मे समेटे रहा करे। वही वह उच्चगामी प्रेम आज एक असहाय नारी को–जिसे कि एक दिन उस प्रेम ने अति निकट अपना लिया था, वही प्रेम एक छोटे से शब्द पर चूर्ण-विचूर्ण हो गया ! एक दिन के स्नेह की पात्री दूसरे दिन की घृणा की पात्री बन भी कैसे सकी ?

प्रश्न पर प्रश्न उठने लगे उसके मन मे—तो ऐसा क्यो ? दण्ड उसे दिया गया—गुरुतर दण्ड। परन्तु उस पर क्या कभी विचार किया गया था ?

और न्याय ! दुनिया ने उसे त्याग दिया है, सो ठीक है। परन्तु यदि वह अपराधिनी है तो उसके अपराध का उचित विचार क्या कभी दुनिया ने करना चाहा है ?

नही।—मन के प्राण से उत्तर आया—नही-नही, नही ही। सो तब दूसरा और तीसरा प्रश्न सामने अड गया।

नही ? तो वह अपराधिनी भी क्यो ? वह दादू—जो कि छूत-मार्गी होते हुए भी पौत्र के मतवाद मे इस वृद्ध अवस्था मे भी अपने आपको रग सके हो, छुआछूत को मानते हुए भी मुसलमान बावर्ची के

हाथ का भोजन तक कर रहे हो, और अपनी रुचि, अपने संस्कार से बहिर्भूत भोजन कर सक रहे हो। वही स्नेही हृदय, अपने परम स्नेह की पात्री के एक ऐसे अपराध को बढा-चढा कर वास्तविक अपराध के रूप मे मान बैठा जो कि उस नारी का वास्तविक अपराध न हो। और ऐसा स्नेह, प्रेम, ममत्व, क्या वह भी स्नेह कहला सकने योग्य है ?

"भाभी—ओ भाभी।"—कोमल, निकटतापूर्ण स्वर से पुकारा मनीश ने।

और तब नन्दा ने मानो अपनी चिंता को दोनो हाथो से समेट कर दूर फेक दिया। उठी, स्विच दबाया और हँस सकने का प्रयास करती हुई बोली—"आज भी तुम पहुँच गए मनीश बाबू ?"

"न आऊँ ? क्यो भाभी ? ओ भाभी, तुम मुझे आने को मना कर रही हो ?"

"नही तो।"

"नही न ? फिर क्यो कह रही थी—कि आज भी आ गए ? आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?"

"मै ?"—और वह चुप रह गई।

"नही, तुम्हे कहना ही पडेगा। आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?"

"जब कि मुझे सब ने त्याग दिया, तुम, तुमही एक ऐसे क्यो बचो कि उन सब से अलग रहो।"

"फेंक देना और उठा लेना क्या कोई मजाक समझ रखा है। और अपनी ही सुनन्दा को मै फेक दूँ ? क्यो भला ?"

"परन्तु वही जो दुनिया का नियम है।"

"ऐसा ? शायद दुनिया का यह मतवाद हो। और मेरी भाभी के मत से ?" मनीश हँस रहा था।

जरा सोच कर सुनन्दा बोली—मै तो एक समूची नारी ही हूँ। सुनन्दा सुनन्दा होकर ही रही आऊँगी और हूँ भी। यो रक्त का सम्बन्ध ही सबसे बडा होकर थोडे ही रहा आता है मनीश बाबू।"

"तो ?" उत्सुकता से ओतप्रोत मनीश की वह जिज्ञासा।

"हृदय ने जिसे एक बार अपनत्व दे दिया हो, उस अपनत्व का विनाश कभी हो कैसे सकता है ?"

"नही, मै सुनन्दा का सिद्धान्त सुनना चाहता हूँ।"

सुनन्दा केवल मुसकराने लगी।

"कहो भाभी, तुम्हारा अपना मत, निज सिद्धान्त।"

"कह जो चुकी।"

"नही, अपना निजी मत कहो।"

"मत ? नही-नही मनीश बाबू, जानकारी कहो। सुनोगे ? किंतु उसके बाद भी भाभी कहकर पुकार सकोगे न ?"

"ओ भाभी।"

"चुप—चुप। हाँ। मेरी अपनी जानकारी, खोज का निष्कर्ष।"

"क्या ?"

"सब झूठ है, सब झूठा।"

"झूठा है ? प्रेम, प्यार। सब-सब ?"

"चौंक रहे हो ? सब मिथ्या है। है केवल अभ्यास का एक छोटा-मोटा रूप जिसे कि तुम प्रेम कह रहे हो। मेरे विचार से हजारो फन्दे मे जकडा हुआ वह है मात्र एक सङ्कीर्ण और अस्थाई वस्तु। जिसे कि कलाकारो ने अपनी कल्पना की उडान मे बसाकर उच्चस्तर मे बैठाने की चेष्टा की है। ससार को धोखा देकर बेवकूफ बनाया है। उस प्रेम की न कोई स्वत स्फूर्ति है, न कोई स्थायित्व। एक शब्द मे है वह बच्चो का खेल। ताश का बना हुआ सुदृश्य महल जो कि एक जरा से धक्के से सदा धूल मे मिल जाता है, टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाता है।"

सहानुभूति पूर्ण दर्दीली दृष्टि से मनीश नन्दा को देखने लगा और देखता ही रहा।

सोच उठा मनीश—वह जो रिक्त, सर्वशान्त नारी आज उसके सामने खडी आहो की अँधेरी दुनियाँ बसा रही है, पुरुष वह, वह उसे ऐसी कौन-सी वस्तु दे सकता है, जिससे कि उसकी अँधेरी दुनियाँ मे खुशी का एक दीप जल उठे ?

उस निर्यानिता नारी को ऐसी कौन-सी बाते सुना सकता है, ऐसा कौन-सा विश्वास दिला सकता है, जिससे कि उसकी अँधेरी दुनियाँ पुन हरियाली से हरी हो उठे ?

"क्या सोच रहे हो मनीश बाबू ?"

"तुम्हे।"

"क्या मेरे लिए कुछ सोच-विचार करने को भी है ?"

मनीश चुप हो रहा, क्या उत्तर देता उसे ? एक युवती, सुन्दरी नारी पुरुष के सामने खडी पूछ रही है, मेरे लिए कुछ सोचने को भी है ? क्या उत्तर देता उसे ?

वही, वह पुरुष अपने पुरुषत्व को सँवारे, सँजोए, नारी के निर्यातन का, अत्याचार का शेष पृष्ठ देखने के लिए चुप-चाप बैठा हुआ है ? सो भी—एक साक्षी के रूप मे। सोचते-सोचते मनीश का पुरुषत्व कदाचित् अन्तःकरण मे अपनी सत्ता जता उठा। मन के कोमल अश मे सहानुभूति का मधु-प्रलेप लिप गया, और शायद नर के हृदय के प्रेम का प्रथम चुम्बन भी उस हृदय मे अकित हो गया हो तो कौन जाने ?

सहसा कह उठा मनीश—"अगर अपने लिए तुम्हे सोचना खत्म हो चुका हो, तो मेरे लिए बहुत कुछ सोचने को है न।"

"सोचना ? और मेरे लिए ?"

"हाँ, नन्दा विश्वास नही होता ?"

"विश्वास ? दुनिया पर विश्वास ? पुरुष पर नारी का विश्वास ?"

नन्दा दाँतो तले अधर दबाकर वक्र हसी ।

"सब दानव नही है ससार मे । आदमी भी हैं भाभी ।"

"सच ?, जैसे कि तुम एक हो ?"

उस चपल परिहास से मनीश चिढा—"सचमुच नन्दा तुम एक पहेली हो । बेवकूफ नही हूँ । समझ रहा हूँ कि पुरुष के, ससार के कठोर अन्याय, अत्याचार ने आज तुम्हे विद्रोहिणी ही नही, वरन पत्थर बना दिया है । नारी-हृदय की कोमलता, नम्रता सब कुछ को चूस लिया है । तो भी कहूँगा तुम गलत रास्ते पर हो । अगर यहाँ दानव हैं, तो मानव भी है । अगर अत्याचार है तो विचार भी है, न्याय भी है ।"

"नही, सब झूठा है, सब झूठा । केवल है अधिकार का दम्भ । मानव की स्वाधीन इच्छा को नाखून द्वारा छिन्न-भिन्न कर डालना । और—और—" वह हाँफने लगी ।

"हमेशा तुमने मुझसे छिपाया है । छिपाती रहो । पाकिस्तान से आई हुई सुनन्दा ने भूल धारणा कर ली है, इतना तो मै जोर के साथ कह सकता हूँ । किसी एक पुरुष के अत्याचार से पुरुषमात्र को घृणा करना कहाँ तक ठीक है, वह तो तुम्ही जानो । लेकिन मै कहता हूँ, एक दिन तुम्हे इसी पुरुष को श्रद्धा के साथ अपनाना ही पडेगा ।"

"ऐसा ! तो वह पुरुष कौन है ? तुम स्वय ?" उस उलंग परिहास से मनीश उत्तप्त हो उठा ।

कहा—"भाभी ।"

"कैसी भूलती हूँ, आज तुलसी मच पर दीप तक नही जलाया ।"

मनीश ने उसका पथ रोध किया—"ठहरो, भागने का वक्त मिल जाएगा । तुम चाहे जैसी भी पहेली क्यो न हो, लेकिन मैं शायद सुलझा पाया हूँ । ठहरो ?"

"ठहरूं ? और तुलसी पर—"

"बस करो भाभी, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो ।"

और न जाने क्यो सुनन्दा-सी जिद्दी नारी बाध्य शिशु की भाँति खडी रह गई, पूछा—"कहो।"

"प्रकाश ने क्या उसी दिन से यहाँ रहना छोड दिया है ?"

"नही तो।"

"झूठ बोल रही हो, और मुझी से भाभी ?"

"और मैं कहती हूँ, मेरी बात मुझ ही पर क्यों न छोड दी जाए ? दूसरे को वे बाते जानने की क्या जरूरत ?"

अपमान की लज्जा से मनीश तिलमिला उठा। कठोर व्यग्य से हठात् वह कह उठा—"बहुत अच्छा नन्दरानी, अनधिकार चर्चा है ? अच्छा तो अधिकार और अनधिकार का पाठ भी अब शायद तुम्ही से लेना पडेगा। पाकिस्तान से जो आई हुई हो न।"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही मनीश चल दिया। सुनन्दा ने एक बार उस ओर आँखे उठा कर देख भर लिया।

१४

ऊपर के कमरे मे पहुँचकर नन्दा अवाक् हो रही। स्कूल न जाकर प्रकाश आँखे बन्दकर आराम कुर्सी पर पडा हुआ था। नन्दा निकट पहुँची, माथे पर हाथ रखा। पूछा—

"क्यो ? बुखार है क्या ?"

सुप्रकाश ने आँखे खोली, उठकर बैठा। फिर अपना मस्तक हटाकर बोला—"मैं अच्छा हूँ, जरा उस कुर्सी पर बैठ जाओ।"

सुनन्दा के मुख पर न तो विस्मय था, न विराग। वह जानती थी कि उन दिनो सुप्रकाश उसके सान्निध्य से कोसो दूर भागता फिरता था। यो कि कभी-कभी भोजन करने घर तक नही आता। पहले की

तरह आराम कुर्सी के हाथ पर वह स्वय ही नही बैठ रही थी। सुनन्दा एक कुर्सी जरा दूर हटाकर बैठी।

"कहो।"

"पिताजी ने सब कुछ तय कर लिया है।"—दूसरी ओर देखता हुआ प्रकाश कहने लगा—"याने—शादी का दिन तक।"

शान्त स्वर से नन्दा ने कहा—"जिस दिन जाना हो, उसके एक दिन पहले कह देना। तुम्हारा सब सामान बाधकर तैयार कर दूँगी।"

ऐसे सहज मे बात बन गई, यह देखकर प्रकाश अत्यधिक विस्मित हुआ। जरा रुका और मस्तक खुजलाता हुआ बोला—"शायद समझ रही हो कि मेरा यह जाना चिर दिन के लिए है।" और शुष्क कण्ठ को साफ कर बोला—"सोचता हूँ, तुम्हारा क्या होगा?"

"मेरे लिए यह मकान और फल तरकारी का बगीचा क्या यथेष्ट न होगा? एक स्त्री के लिए और कितना चाहिए!" जरा मुसकरा कर नन्दा पुन बोली—"मेरी नानी जरूर ही भविष्य की जानकार रही है। तभी तो मेरे नाम अपना यह मकान लिख गई।"

"अकेली तुम कैसे रह सकोगी?"

"परन्तु नही भी क्यो? ससार मे तो हम अकेले ही आए है न? फिर सोचो तो सही—पाकिस्तान मे मेरी दुर्दशा की बात। मुझे मरा हुआ समझ कर शायद किसी ने रास्ते मे मुझे घसीट कर फेक दिया था। वह तुम्ही तो थे न जो कि सकट, विपत्ति की अवहेलना कर मुझे उठा लाए थे। सोचो, यदि आज तुम न लाए होते तो मुझे अकेली ही रहना पड़ता न?"

अनमना-सा प्रकाश ने कहा—"वह तो मै अपनी बहन के लिए पहुँच गया—पाकिस्तान। सोचा—चलो तुम्हे भी देखता जाऊँ, एक साथ कालेज में पढने की साथिन तुम। हम दोनो तुम्हारी शादी के बाद से बिछुड़े हैं न? तुम अमीर की स्त्री बनकर चली गई। और मैं

कलकत्ता ही मे रहा आया।"—उसके बाद सुप्रकाश ने आँखे बन्द कर ली और अपने आप बडबडाने लगा—"कितना भयानक, बीभत्स दृश्य था। रास्ते खून से रगे हुए थे, जले और अधजले मकानो का करुण चित्र, तड्फते हुए नर-नारी, नग्न मृत शरीरो का ढेर, और उसी भयानक वातावरण मे मृतको के बीच तुमको पाया।"

नन्दा चुप रही।

"रवीन्द्र को मैंने वही शादी के वक्त देखा था और दूसरी बार उसे पुनः वर के वेश मे देखा। जब तुम्हारी वह दुर्दशा हो रही थी, तब क्या रवीन्द्र पाकिस्तान मे नही था ?"

"वे पहले ही धन-सम्पत्ति की व्यवस्था करने के लिए वहाँ से चले गए थे।"

"मैं कई बार पूछना चाहता था कि तब तुम्हे साथ क्यो न ले गया ?"

"मेरी सास उन दिनो मृत्यु शय्या पर थी न।"

"ऐसा ? उसके बाद ?"

जब वे घर वापस पहुँचे, तब सब कुछ का अन्त हो चुका था। कौन जाने वे कब पहुँचे। मै तो तब बेसुध थी।"

"और तुम्हे रास्ते मे कौन फेक गया था ?"

"कौन जाने।"

"कुछ याद नही ?"

"नही, शायद मुझे मृत जान कर अत्याचारीगण फेक गए हो। शायद वे लौटे हो और मुझे मरा जानकर वहाँ से चले आए हो।"

"ऐसा हो सकता है।" प्रकाश स्तब्ध-सा बैठा रहा।

नन्दा उठी—"चलूँ, तुम्हारी तैयारी कर दूँ।"

"और तुम ?"

"मैं ?"—म्लान हँस कर वह बोली—"मैं तो हूँ ही, और सुनन्दा

इसी घर मे बनी रहेगी ।"

"नही, अभी तैयारी मत करो नन्दा। सिर मे जोर का दर्द है। जरा टहल आऊँ।" और जाता हुआ वह लौटा—

"नही—नही, तैयारी मत करो। सबने तो तुम्हे छोड दिया है, अकेली कैसे रहोगी ? किसकी होकर रहोगी नन्दा ?"

"अपने-आपकी । मैं हूँ और मेरी सत्ता है। उसे अस्वीकार करने वाला, मिटाने वाला है भी कौन ? सबने छोडा ? जाने दो, दुनिया का नियम जो है। कल का अपना, आज का पराया हो जाता है। दोष किसे देना ? नियम ही जो है न। सुनो, तुम कल ही चले जाओ।"

"जरा सोच लूँ।"

नन्दा पुनः हँसी—"यह तो अपने मन को धोखा देना है। आज का सत्य है—तुम्हे जाना ही है। इस बात को तो मैं बहुत पहले ही से जानती थी।"

"तुम ? तुम जानती थी नन्दा ?"

वह चुपचाप हँसने लगी। वह हँसी कदाचित् उसका जबरदस्ती हँस सकने का प्रयास हो, या तो वह हँसी उसने कर्ज ली हुई हो। और वह हँसी कदाचित् विद्रोह का रूप ही हो। या तो कोई विचित्र जाति की हँसी हो। परन्तु सुनन्दा हँस रही थी—सो तो सही ही है।

"अगर तुम जानती थी तो मुझ से कह क्यो न दिया ? अपने—सान्निध्य से हटा क्यो न दिया ?"

"इसकी क्या जरूरत थी ? उस दिन के सत्य को यदि तुमने अपने मन के किसी-कोने मे सजो कर रखना चाहा हो तो मैं उसमे बाधा देने वाली कौन होती हूँ ? माना कि यह जो कुछ है, सब कुछ मिथ्या है। अलीक स्वप्न है, किन्तु उस दिन का सत्य तो यही था न कि तुम्हारा और मेरा एक साथ रहना, एक ही परिचय मे बधना।"

"मुझे सतर्क क्यो न कर दिया तुमने ?"

नन्दा मौन रही आई।

प्रकाश बार-बार कहने लगा—"क्यो न मुझे बतला दिया ? क्यो-क्यो ?"

"तुम्हे बतलाकर क्या होता ? यह तो जानी हुई बात थी, कि तुम जैसे दयालु हो वैसे ही कमजोर मन के आदमी हो, जिस कमजोरी —"

'कमजोर मन ? कापुरुष हूँ नन्दा मैं ?"

"दया से भरा हुआ हृदय तुम्हारा जरूर है, वरना अपने को मौत के मुह मे डालकर मुझे उठा कैसे ले आते ? उस दिन पाकिस्तान की परिस्थिति ऐसी थी कि सन्तान अपने जन्मदाता से डरती थी। अरे तुम तो नाराज हो गए। ससार मे कई तरह के आदमी है, और उनका स्वभाव भी भिन्न प्रकार का हुआ करता है। कापुरुषता एक चीज है और दया दूसरी। और इनकी तुलना एक दूसरे से नही हो सकती है। फिर—दया की किसी वस्तु से तुलना भी कैसे की जा सकती है ?"

ज्वलन्त अगार से शब्दो मे प्रकाश कहने लगा– "और वह रवीन्द्र, कापुरुष साथी रवीन्द्र—जो कि वैसी स्थिति मे विवाहित पत्नी को रख कर दौलत समेटने के लिए जान बचाकर भाग गया। और अब अमीर बना कार पर घूमा करता है, अपनी पत्नी की आँखो के सामने दूसरी नारी से शादी कर बैठे, ऐसा एक आदमी तुम्हारी आँखो मे देवता बना बैठा है न ? मैं दावे के साथ कह सकता हूँ अब भी तुम्हारा मन, प्रेम—प्यार उसी के दरवाजे पर भटका करता है। क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ? बोलो वह है साहसी ? वीर ?"

वेदना से सुनन्दा का मुख पीला पड गया। परन्तु उसकी शिक्षा ने उसका साथ न छोडा। कहा—सो भी धीरता से—"यदि किसी मे शायद कुछ कमजोरी हो तो रहने भी न दिया जाए ? किसी की

एक सच्ची या झूठी कमजोरी को दिखलाकर अपने आपको छोटा करना बुद्धिमानी नही है। दूसरी बात—मेरी आँखो के सामने उसने शादी नही की, मुझे अब भी विश्वास है।"

"क्या ?"

"मेरे मरने का उन्हे पूरा विश्वास है।"

"क्या कहती हो ? क्या मण्डप मे जाकर रवीन्द्र ने तुम्हारी तरफ नही देखा ?"

"पल भर के लिए उनकी आँखे स्थिर हुई थी। किन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकती हूँ, उन आँखो मे परिचय का चिह्न तक नही था। मै नारी हूँ और उनकी धर्मपत्नी, क्या अपने ही पति की आँखो की भाषा नही पहचानती ?"

"याने तुम्हारे विचार से वह वीर है ?"

"वीर ? किन्तु ऐसा मैने कब कहा ? और है या नही, यह बात अभी से मै कैसे कह सकती हूँ ? वह तो परिस्थिति ही बतला सकती है। कापुरुषता कई प्रकार की हुआ करती है। हो सकता है वे समाज के और उसके बने हुए नियम के निष्ठावान् हो।"

"और मै ?"

वह बात को टाल-सी गई, कहा—"मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। तुमने जो कुछ मेरे लिए किया है, वह कितने मनुष्य कर सकते है ?"

"केवल कृतज्ञ ही ? कहो नन्दा, मात्र कृतज्ञ।"

नन्दा के मौन मुख के प्रति देखते हुए प्रकाश ने पुन. कहा—

"क्या एक बात मुझ से सच कहोगी ?"

"अब तक झूठ कहने की जरूरत नही पडी न।"

"क्या तुम अब तक रवीन्द्र को चाहती हो ?"

नन्दा मौन रही।

"उत्तर न दोगी ?"

"उसे सुनकर कोई क्या करेगा ? और उससे दूसरो को लाभ ही क्या है ? प्रेम की परिभाषा क्या है, सो मैं नही जानती। परन्तु नारी का एक बार लुटा हुआ प्यार"—वह चुप हो गई।

"तो ?" आग्रह से प्रकाश ने पूछा।

"तो ? अपने आधार को शायद जल्दी न भूलता हो।"

"समझा। और रवीन्द्र ?"

"किसी के मन की बात दूसरा क्या जाने।"

"और पहले ?"

"उनका प्यार ! वह तो मुझे ही केन्द्रित कर अकुरित हुआ। बढा——पनपा था न।"

आक्रोश भरी दृष्टि से सुप्रकाश सुनन्दा को देखने लगा, मनमे आया हो शायद—यह नारी, जिसके लिए उसने इतने दिनो तक अपने आत्मीय जनो को, मित्र-बान्धवो को त्याग रखा था, पिता की उस बडी सम्पत्ति के रहते हुए भी यहा थोडे से वेतन पर स्कूल मास्टरी करता हुआ पडा हुआ है, वही-वह नारी अब तक एक दूसरे की आराधना मे बैठी तपस्या कर रही है।

और वह ? एक उसी की तरह पुरुष। उपरान्त कृतघ्न, और कापुरुष वह पुरुष। और ऐसे एक के लिए अब भी उसके मन का प्रेम जीवित रह कर पनपता चला आ रहा है।

और वह स्वय ? इतना सब कुछ त्याग करते हुए भी वह उस नारी के निकट से पा रहा है क्या ? मात्र कृतज्ञता। कोरी श्रद्धा। ईर्ष्या से सुप्रकाश के नेत्र प्रदीप्त हो उठे।

"चलूँ। तुम्हारा सब सामान बाँध दूँ। अगले माह की शादी है। अरे हाँ, सूटकेस का कब्जा तो लगवालो। सुन रहे हो ?"

"तुम्हारी बला से। लगवाऊँ चाहे न लगवाऊँ।"

"तो टूटे सूटकेस को ले जाओगे।"

"मुझे नही जाना है—नही—नही, तुमको मेरे जाने न जाने की सोचने की जरूरत नही।"

नन्दा विस्मय से स्तब्ध रह गई। और उन्माद आँधी की भाँति प्रकाश निकल कर चल दिया।

१५

तुलसी मच मे सान्ध्यदीप उजियार कर, गले मे आँचल डाले वह तुलसी की वन्दना कर रही थी—वही सुनन्दा। उसके मुद्रित नेत्रों के भीतर भक्ति थी, प्रार्थना, अथवा केवल ही अनुयोग? उसके नारी-जीवन को बिना दोष के, बिना अपराध के, बिना विचार के विफलता मे समा देने के लिए देवता के द्वार पर अनुयोग कर रही थी या निष्काम अर्चना, यह कह सकना कठिन है। अथवा यौवन के पुष्पित पलो को आग्नेय गिरि के स्फुलिगो मे सुलझा देने के लिए, मन के विद्रोह द्वारा मानव और देवता से झगड रही थी या समझौता कर रही थी या नही ऐसा कह सकना तो असम्भव ही है।

तब खुशी की हवा मे बहती-सी पहुँची वह एला।

"जीजी—जीजी" पुकारती हुई उपस्थित हुई।

सुनन्दा ने प्रणाम किया। घृत दीप के पलीतो को जरा आगे बढाया और दीप को तुलसी-मच के ऊपर रखा तब उत्तर दिया—"मैं यहाँ हूँ एला। तुम फिर छिपकर भाग आई हो? कही मौसी सुन पावे तो?"

ओठो को बिचकाकर एला ने कहा—"मैं कब किसी से डरती हूँ?"

एला सहसा नन्दा के गले से लिपट गई, कहने लगी—"न जाने क्यो जीजी, तुम मुझे बहुत अच्छी लगती हो। जानती हो जीजी। ममी और पापा ने सख्त मनाई करदी है मुझे यहाँ आने के लिए।"

"और तुम्हारे उनने ?"

"उन्हे यह सब क्या मालूम ? वे तुम्हे थोडे ही पहचानते है। लेकिन जीजी, कितना बडा अन्याय है। सोचो तो सही। किसी के व्यैक्तिगत मामले मे दूसरो को क्यो पडना ? और मैं आश्चर्य से सोचती हूँ। एक दिन जिसे उन लोगो ने आदर्श नारी कहकर माना, वही आज सब की त्याज्या बन गई। उसे ही धूल मे फेक दिया ? मैं तो ऐसे समाज को फूटी आँखो भी देखने के लिए, उसके विधानो को मानने के लिए तैयार नही हूँ।"

नन्दा ने कहा--गम्भीरता से परिपूर्ण वह स्वर--"किन्तु समाज का विधान, नियम तो मानना ही है बहन।"

"अन्याय भी ?"

उसकी बातो का उत्तर न देकर नन्दा ने कहा—"यदि आज समाज न होता, उसके नियम, विधान न होते तो—उच्छृखलता, मार-पीट ऐसी बढ जाती कि जिसका अन्तिम परिणाम हम सोच भी नही सकते। ससार चलता है, समाज चलता है नियम पर, शृंखला पर एला।"

"चुप रहो जीजी। समाज--समाज--समाज। अन्यायी, अन्धा समाज। सब कुछ जानबूझकर भी जो समाज मुँह मोड लेवे, अन्धा बन जावे, उसकी तरह स्वार्थी को मैं क्यो मानूँ ? ऐसे एक को समाज कह कर मानने के लिए अन्ततः मैं तैयार नही हूँ। चाहे तुम उसके लिए कितनी ही वकालत करो। इन नलिनी देवी ही को लो न।"

"क्यो, उनने क्या किया ?"

"अजी, वे बीमार है बीमार। और मेरी ममी रोज उन्हे देखने के लिए जाती है।"

"ठीक तो करती है। एक दूसरे का न करे तो कैसे चल सकता है ? विशेषकर बीमारी मे।"

"जीजी, पहले यह पूछो कि उन्हे कौन-सी बीमारी है ? क्यो बीमार हैं।"

नन्दा हँस दी—"पागल लडकी। क्यो बीमार है ? भला यह भी कोई पूछने की बात है। बीमारी क्या कह-सुनकर आया करती है री ? उन्हे क्या हुआ है ?"

"अब मुझ से न कहलाओ। मैं तो साफ-साफ कहने वाली हूँ। लो सुनो।" एला ने नन्दा के कान मे लगकर कुछ कहा। सिहर कर नन्दा हट गई।

कहने लगी एला—"तुम सोच सकती हो जीजी। लेडी डाक्टर को कौन लाई थी ? मेरी ममी। और सब चीजे किस ने जुटाई थी ? मेरी ममी ने।—आया के हाथ गड्ढा किसने खुदवाया था ? ममी ने—वही ममी, जिनने कि तुम जैसी विदुषी और भली स्त्री से मुझे मिलने के लिए वरज रखा है।"

नन्दा मौन रही आई।

क्रोध से एला का श्वास फूल रहा था। कह चली—"तुम सोचती हो, सहसा एला को क्या हो गया जो मेरे लिए दीवानी रहती है, जो पहले कभी किसी दिन आया करती थी, वह अब प्राय ही क्यो आती है ? है न यही बात ? तो सुनो। ममी की बातो ने और नलिनी देवी की हरकतो ने मुझे तुम्हारा भक्त बनाया। मजा यह कि वे स्वय इस बात को न जानती होगी। अजी, यह सब पाप नही तो क्या है ! और अन्धा यह समाज। सचमुच के हत्यारे का साथी नही तो क्या है ?"

नन्दा हँसी—खिन्नता मे भरी-भरी वह हँसी—"भूल कर रही हो एला। वह पाप जो परदे के अन्दर छिपा हुआ, परदे के अन्दर है न।"

"वाह-वाह, यहाँ तो मजेदार बाते हो रही है। किस ने पाप किया भाभी ?"

मनीश को देखकर दोनो चुप हो रही।

"मुझे देखकर चुप क्यो हो गई ? अन्दर चला आऊँ ? या लौट जाऊँ ?"

"आओ मनीश बाबू।"

मनीश कुर्सी खींचकर बैठा···और अपने उसी प्रश्न को दुहराया, "किस पाप की बात कह रही थी भाभी।"

नन्दा मुसकराई—"यो ही, कोई विशेष बात नही है।"

"जीजी, छिपा रही है मनीश बाबू, नलिनी देवी की कीर्ति कह रही थी। सुनिएगा ? कह रही थी, उन जैसी स्त्री भी आज समाज मे देवी बन कर बैठी हुई है।"

"वह तो बीमार है।"

"बीमार है ? देखिए, मुझसे मत कहलाइए।"

"क्यो ? आखिर बात क्या है ?"

"उनकी बीमारी डाक्टरो की समझ से बाहर है। कहूँ ?"

नन्दा ने शासन के स्वर मे कहा—"ऐसी बाते नही करते एला, अपने सत् साहस को ऐसी वातो मे उलझाकर बर्बाद नही करते। वही समय ··जव कि हम ऐसी चर्चा करते हैं, उसी समय साहस और विचार को दूसरे कोई अच्छे काम मे लगा सकते हैं।"

विस्मय से एला का हृदय भर उठा—यह कैसी नारी है, जिसे कि सब ने अस्पृश्य के रूप मे एक ओर ठेल रखा है, वही आज उसी ससार के दुराचार को, दुराचारी को लोक नेत्रो के अन्तस्तल मे रखने की चेष्टा करे ? सोच उठी एला दूसरे पल और मौनता मे वह अपने साथ नन्दा की तुलना करने बैठ गई, हाँ, यदि वह नन्दा के स्थान पर होती तो क्या करती ?

वही करती। वह यह कि दूसरे वास्तविक अपराधो की, व्यभिचारो की सूची बनाती और उन्हे ससार के सामने रखकर पूछती—'कहो, यह सब क्या है ? समाज की यह कौन-सी सुकीर्ति है ? और भी पूछती—एक नारी दूसरे पुरुष के साथ यदि परिस्थिति मे बँधकर मित्र के रूप मे रही आवे, तो वह अच्छा है या पर्दे की आड मे बैठकर व्यभिचार करना अच्छा है ?'

अरे हाँ, और तब दूर खडी विद्रोही परिहास की हँसी हँसती—सी भी तालियाँ पीट-पीटकर। नही वह सुनन्दा की तरह किसी प्रकार भी दूसरो के व्यभिचारो को छिपाने की चेष्टा न करती, किसी तरह से भी नही। और नही ही नीरव, एकाकीपन से अपने ऊपर किया गया निर्वासन सहन करती।

तो ? तुलना शेषकर सोच उठी एला—तो नन्दा क्या है ? एक उसी की तरह मानवी, उसी-सी नारी ही न ? और सोचते-सोचते कब उसके श्रद्धा से परिपूर्ण चन्दन का पात्र सुनन्दा के पाद मूल मे शेष, नि.शेष होकर शून्य हो गया, सो वह जान पाई तब, जब कि नन्दा के हृदय मे उसका मस्तक अपने आप लोट गया, तब नन्दा एक हाथ से उसे हृदय मे समेटे हुई, दूसरे हाथ से मस्तक पर हाथ फेरती हुई कह रही थी—"भावुक लडकी, मेरी एला, रानी एला।"

तब भी एला गुनगुना रही थी—"जीजी, कैसी अद्भुत हो तुम !"

उच्च स्वर से मनीश हँस पडा—"वाह-वाह, श्रीमती रवीन्द्र यह कौन-से नाटक का श्रीगणेश हुआ ?"

"नाटक यानी ?" गिडगिड़ाई एला।

उसे चिढते देखकर कदाचित् मनीश की परिहास प्रवृत्ति तीव्रतर हुई—"यानी अभी-अभी आप ने जो कुछ किया ?"

"आप—आप, आखिर कह क्या रहे हैं, और किससे ?"

"माननीया श्रीमती रवीन्द्र से पूछ रहा था, अभी जो नाटक का पहला पर्दा उठ चुका है—"

"अभद्र-असभ्य, आप ऐसे है ?"

"क्यो, उसे चिढाते हो मनीश बाबू। बस करो।" नन्दा ने स्नेह-पूर्ण किन्तु एक ऐसे स्वर से कहा, जैसे माता अपनी सन्तान को शासन कर रही हो।

उसके बाद मनीश धीमा-धीमा हँसता हुआ चुप रह गया। यद्यपि

परिहास उसके कठ के बाहर निकलने के लिए अकुला रहा था।

एला का क्रोध कुछ शान्त हुआ। नन्दा ने कहा "चलो, हम तीनो जरा घूम आएँ।"

"चलो।" अनायास मनीश कह उठा—"यो मेरा सिगार केस भी खाली था, एक डब्बा खरीदना है। चलो चलो।"

मनीश को खडे होते देखकर विकृत मुख से एला ने कहा—"तुम दोनो जाओ, मुझे नही जाना।"

"तो मैं जा रहा हूँ भाभी, उन्हे शायद मेरा सग पसन्द न हो।"

"अजी ऐसी क्या जल्दी है? महीनो बाद तो आज आए हो, कई माह से आए ही नही।"

"सिगार लेकर अभी आता हूँ।" मनीश चल दिया।

"जीजी, आज तुम्हे जाना ही होगा मेरे साथ, चलो तैयार हो लो।"

"कहाँ जाना है?"

"सिनेमा। आज मिसेस भटनागर की पहली तसवीर है, तुम नही जानती? पेपर नही पढती? शहर भर मे धूम मची हुई है, मिसेस भटनागर जैसी सभ्य, सुशिक्षित, आफीसर की पत्नी का एक्टिग जनता देखने के लिए पागल हो रही है।" जरा रुककर बोली—'जीजी', आज मैं भी सिनेस्टार कहला सकती, लेकिन पापा ने किसी तरह जाने नही दिया। ममी हर बातो मे जोर लगाती हैं, लेकिन इस बात पर राजी न हुईं, क्योकि इसके विरोध मे है, वरना मैं दावे के साथ कह सकती हूँ—दो दिन मे मै मिसेस भटनागर को ऐसा डिफीट देती कि बस उनसे भागते ही बनता।"

एक ही श्वास मे इतनी बाते कहकर वह नन्दा का मुँह देखने लगी।

उस मुख मे उत्साह वर्द्धक चिह्न तक एला ने नही पाया, निराश होकर बोली—"लो, छः बजने मे बीस मिनट रह गए है, उठो जीजी।"

इतने पर भी जब सुनन्दा न उठी तब एला झुंझलाई, "तुम्हें चलना है या नही ?"

"नही ।"

"क्यो ?"

"मुझे सिनेमा पसन्द नही ।"

"लेकिन आज तो मै लेकर ही चलूंगी ।"

"बडी जिद्दी है तू एला । जरा ठहरो, मनीश बाबू को आ जाने दो ।"

विकृत मुख से एला ने कहा—"उनकी हमे कोई जरूरत नही ।" परिस्थिति को हलका और सहज कर नन्दा ने कहा—"किन्तु नही, उनकी जरूरत है री पगली ।"

"किसकी भाभी ?" द्वार पर से मनीश ने आवाज़ लगाई, "तुम्हारी ।"

एला खिलखिला कर हँस पडी ।

तीनो निकलकर चल दिए । गाडी चलती चली जाती ।

नन्दा ने पूछा—"यह दो सीटो की गाडी है न ? यह गाडियाँ बडी भली हुआ करती हैं, बैठकर आराम मिलता है । मुझे तो शेवरलेट, प्लेकार्ड, फोर्ड आदि गाडियां जरा भी अच्छी नही लगती, न मै उनपर बैठती ही थी ।"

कह गई नन्दा अनमनी-सी । एला ने उस बात पर ध्यान नही दिया हो, परन्तु मनीश के नेत्रो का विस्मय साकार हो उठा । वह चुप-चाप नन्दा को देखने लगा, वैसे ही नन्दा ने पूछा—"यह कार तुम्हारी है न एला ?"

"नही, मनी साहब की है ।"

"कब खरीदी मनीश बाबू ?"

उत्तर न पाकर सुनन्दा ने घूम कर मनीश को देखा तो आँखें वहीं आबद्ध हो रहीं ।

"क्या बात है मनीश बाबू ?"

"सोच रहा हूँ भाभी, कि तुम पहेली का दरवाजा कब खोलोगी ?"

"ऐसा ?" जरा हँस कर पीछे रखा हुआ बडा-सा और सुन्दर एलबम सुनन्दा ने दोनो हाथो से उठा लिया, एलबम गोद मे रखकर पूछा, "बहुत सुन्दर एलबम है, किसका है ?"

"चौधरानी जी का है।"—मनीश ने कहा।

"मम्मी का तो है ही, और आप कैसे उठा लाए ?" एला कौतूहल अनुभव कर रही थी।

"इसके कुछ फोटो एनलार्ज करवाने के लिए उन्होने दिया है।"

एलबम खोलकर नन्दा देखने लगी। कार भागती चली जाती, एला काँच की खिडकी से बाहर की ओर दृष्टि निबद्ध किए बैठी थी। सुनन्दा चित्रों मे गुम गई थी, और मनीश नन्दा के क्षण-क्षण मे मुखभाव के परिवर्तन को आश्चर्य से देख रहा था। उसकी समझ मे नहीं आ रहा था कि एलबम के फोटो मे ऐसी कौन-सी अनहोनी बात है—जो कि नन्दा के मुखभाव को प्रति पल मे परिवर्तित करने मे सक्षम हो रही है ? कभी स्नेह की छाया मुख पर उभर उठती, कभी परिहास की तो कभी आतक, घृणा और अवहेलना की, कभी विस्मय, भय, करुणा आदि की। मनीश का मन आतुर हो रहा था—जानने के लिए कि एल-बम मे चौधरानी के नानाविध पोज के सौ के करीब फोटो हैं, उनमे ऐसी कौनसी विचित्रता है ? परन्तु एला के सामने उसी की माता के फोटो के विषय मे आलोचना करने का उसका जी नही चाहा।

गाडी सिनेमा के द्वार पर रुकी, टिकट घर के सामने भीड लगी हुइ थी। एला व्यस्तता से उतरी। मनीश ने नन्दा के हाथ से एलबम उठा लिया, कहा—"पहुँच गये हैं भाभी, एलबम रातभर तुम्हारे ही पास रहा आवेगा, देख लेना और कल मुझ से कह देना कि इसमे विचित्रता ऐसी कौन-सी पाई—जिससे कि तुम खोई हुई थी एलबम मे ? अब चलो।"

१६

रात्रि गभीरता मे उतर रही थी, बिछुडते हुए पलो की याद दीर्घश्वास की आह मे समाकर चुम्बक बन गया था, उस चुम्बक के चहुँ ओर अमावस्या का अन्धकार जमा चला जाता, अन्धकार, अन्धकार के स्तर, अन्धकार के ऊँचे-ऊँचे ऊबड-खाबड पर्वत। महल, अट्टालिका के दीप निर्वापित हो चुके थे। उस अन्धकार मे वे हिमालय पर्वत से प्रतिभान होतें। पथ के पोस्ट लाइटो का उज्ज्वल प्रकाश, जैसे पथ पर पड कर धूली पर सो रहा हो, किन्तु सुनन्दा के द्वितल गृह का दीप तब भी अन्धकार को ठेल-ठेल कर बाहर फेक-सा रहा था।

ध्यान मग्न तपस्विनी की नाईं कुर्सी पर बैठी हुई सुनन्दा, टेबिल पर खुला रखा एलबम। वही उस चौधरानी के नानाविध पोज युक्त एलबम, पचासो फोटो।

देख रही थी उन फोटो को। नेत्रो के पलक कभी उन्हीं आखो मे अकड जाते, कभी लज्जा से झुकते। नम्बर एक फोटो—दुबली, पतली सुन्दर युवती, स्वर्ण स्वप्न-सी रगीन वे आँखे, मोती की झालर युक्त सोने की टिकली माथे पर। कदाचित् चौधरानी के विवाह के समय का फोटो रहा हो। अनुराग किन्तु लज्जा से झुकती हुई दृष्टि।

मुसकरा कर नन्दा ने एलबम का पन्ना उलटा। सामने आया दूसरा, तीसरा फोटो, गृहिणीत्व, पत्नीत्व की उस गभीर दायित्व पूर्ण आकृति को देख कर सुनन्दा प्रभावित हो उठी। आया सामने—रसमय यौवन का छलकता हुआ कलस, सो ऐसा—जैसे कलस का रस केवल उसी कलस मे रहकर पूर्णत तृप्त नही हो रहा है, अपने चहुँ ओर रस-कणो को छिटका कर, फैला कर परितृप्त होना चाह रहा है।

मुसकराई नन्दा, बोली गुनगुना कर—"शायद तब एला गर्भ मे रही हो, बस एला ही तो हुई है मौसी के।"

एलबम का पन्ना उलटा और उसपर झुक पडी सुनन्दा, देखने लगी फोटो को—भूली-सी, बिसरी-सी उन चित्रो मे खोई-सी। माँ—माता, जननी, माँ हो सकने के गर्व से, तृप्तता से परिपूर्ण चौधरानी की यह आकृति।—मन ही मन फोटो का निष्कर्ष निकालती चली सुनन्दा—इन नेत्रो की दृष्टि मे ससार-पूज्य मातृप्रेम स्पष्ट है।—और तब अकुला कर देखने लगी सुनन्दा। देखते-देखते न जाने क्यो नन्दा का हृदय हाहाकार से भर उठा। उस हाहाकार मे जाने क्या-क्या प्रश्न उठने और मिटने लगे—इस फोटो की नारी, जिसके कि प्रत्येक अग-प्रत्यग माॅ बन सकने की सार्थकता से, परितृप्तता से भर उठे है, जिसके अधर की मुस्कराहट मे गर्व की रेखा अकित है, जिसकी आखो की दृष्टि स्नेह से सिक्त है, तो इस नारी ने ऐसी-कौन-सी सुकृति की थी, जिससे कि ससार के गौरवान्वित, श्रेष्ठ मातृत्व के सिंहासन पर आरूढ हो सकी?

और वह? स्वय वह? नन्दा की चिन्ता बढ चली—चौधरानी की तरह ही रक्त-मास, मन, हृदय और अनुभूति युक्त नारी वह! उसने ऐसी कौन-सी दुष्कृति की थी? हाँ कौन सी कमी है उसमे, जिससे कि उसका शुद्ध, सुन्दर मातृत्व अभिशप्त कर दिया गया? आज तो उसका भी नारीत्व मातृत्व की चरम सीमा को पहुँच कर सार्थक, चरितार्थ हो सकता था न। किस पाप का यह दण्ड दिया गया उसे? इसके सहज सिद्ध अधिकार, नारी का अपना वह अधिकार तथा मातृत्व को उससे जबरन छीनकर पृथ्वी की आवर्जना मे फेक दिया गया। परन्तु क्यो?

और शपथ पूर्वक कौन कह सकता है कि उसके गर्भ से एक दिन राम, लक्ष्मण, कृष्ण, अर्जुन, विवेकानन्द या गाॅधी, रवीन्द्र, या सुभाष आदि जन्म नहीं ले सकते थे? सो यह भी कौन दृढ स्वर से कह सकता है कि स्वाधीन भारत के इस नव-राष्ट्र-निर्माण के इस नवीन युग मे अपनी उस सन्तान की ससार को भेट देकर वह नारी, माँ अपने मातृत्व को सार्थक नही कर सकती थी?

नन्दा सोचती चली जाती—न आगे-पीछे देखती, न सामने देखती। उसका, विचार आगे बढता चला जाता, मन की भावना, कल्पना, वह निजी विचार—क्यो क्यो, उसके शुद्ध सुन्दर मातृत्व को उससे छीन कर, शतछिन्न कर धूल मे फेक दिया गया ? जबरन ही उसके मातृत्व को चुरमुराकर तोड कर पदनिम्न मे मथित कर दिया गया ?—

सुनन्दा का जी सोचते-सोचते जाने कैसा होने लगा, शरीर की नसें तन गई। ज्वालामुखी की ज्वाला आँखो मे समा गई। ओष्ठाधर फडकने लगे और शरीर के रक्त मे मानो चीटियाँ चलने लगी। मानो मातृत्व की तृष्णा से उसका यौवन शरीर को त्याग कर बाहर आने के लिए युद्ध की घोषणा कर बैठा।

घडी टनटनाई—एक-दो। नन्दा ने सहम कर हाथो से बालो को समेटा, पास मे रखी हुई सुराही से गिलास मे पानी डालकर पिया और पुन गिलास भर कर पानी मुँह से लगाया।

आकण्ठ तृष्णा से उसका कण्ठ सूख कर फटा-सा जा रहा था। मा मा, माता, जननी बनने ही के लिए तो वह ससार मे आई थी न। आदिम सत्यो मे का एक ध्रुव सत्य ही तो है न नारी का मातृत्व।

तो माँ बन सकने के प्रथम मुहूर्त मे ही कैसे छिन गया उसका वह मातृत्व ? किस पाताल के अतल मे छिपा दिया गया चिर दिन के लिए उसका मातृत्व ?

बाल्य-खेल के घरौंदे मे, गुडियो के खेल मे, पुतली को गोद मे, सुलाकर उसे प्रेम-स्नेह से थपकिया देती हुई उस बालिका के मन के प्राण ने जिस मातृत्व को खोज निकाला था। सहसा ही जन्म हो गया था, घरौंदे में गुडियो के बीच बैठी बालिका के हृदय मे जिस मातृत्व का, माँ और जननी का, उस मातृत्व को नही वरन् पत्नी के गौरव मे बसी वह युवती, उसके अंक से वैसे एक मातृत्व को छीन लेना, यह किस न्याय के अनुसार हो सका ?

सोचते हुई चौककर नन्दा ने एक समय एलबम का पन्ना उलटा तब ? प्रसाधन-प्रियता का आकर्षण फोटो मे बढता चला जाता। नन्दा पन्ने पलटती जाती, तीस, पैंतीस, चालीस। फोटो की सख्या शेष न होती, क्रमशः दुबली, पतली युवती के स्थान पर स्थूलागी, प्रौढा उपस्थित होती और प्रौढा के ओठो का लिपस्टिक गाढ वर्ण होता, आँखो के काजल की लकीर दीर्घतर होती। साज-शृ गार बढता।

पन्ने पलटती जाती नन्दा। आती इस बार गले तक कटे हुए बाल (वावहू) वाली प्रौढ नारी, जिसके प्रत्येक शिथिल अग को कस-कसाकर यौवन की उमग—स्फुलिग भर देने के लिए दीर्घ किन्तु व्यर्थ प्रयास किया गया है। रंग बिरग की साडियाँ, कपोलो पर गुलाबीपन वढता चला जाता, साडियो के हल्के रग के स्थान पर गाढे रग होते।

नन्दा देखती आँखे गडाकर। देखती वह प्रौढा की उस अद्भुत मनःवृत्ति को, मनके उस विचित्र विकास को, देखती उन आँखो को। पाठ करना चाहती आँखो की भाषा को। देखती हुई सुनन्दा के नेत्र पलकहीन, विस्फारित हो रहे। घृणा की रेखा ओठो पर अकित हुई, आतक की छाया व्याप्त हुई मुख पर।

सो फोटो को देखती ही रह जाती नन्दा। नारी-मन के उस अपरिचित किन्तु अदभुत मन वृत्ति के आमने-सामने खडी वह अपना परिचय नही, किन्तु परिचित होना चाहती। एलबम के पन्ने उलटना नन्दा भूल जाती। मानो एक विराट् विस्मय से उसका प्रथम बार ही परिचय हो रहा हो।

"इस फोटो मे ऐसी कौन-सी अद्भुत बात है नन्दा ?" देर से पीछे खडा सुप्रकाश सुनन्दा का भाव-विपर्यय देख रहा था। विस्मय, कौतुक से अन्त मे वह पूछ ही बैठा।

"नारी की एक विचित्र प्रवृत्ति।"—कहा, नन्दा ने, इस तरह जैसे स्वय अपने को सुना रही हो, किसी दूसरे को नही।

"प्रवृत्ति ? और नारी की ?"

"हेय और अप्रशसनीय वृत्ति ।"

"क्या कह रही हो नन्दा ?" क्रमश· प्रकाश विस्मित हो रहा था।

"प्रौढत्व की दुर्बलता, हाँ, प्रौढत्व का भीख माँगना गत यौवन से। और हाहाकार का शव, उस गये-गुजरे जीवन के लिए।" और फिर अँगुली निर्देश द्वारा कहने लगी नन्दा—"यह कटे हुए बाल, अपने को बीस वर्ष की आयु मे लाने की चेष्टा, आँखो मे खिची हुई काजल रेखा, ललाट पर लम्बी, लाल और अवरख लगी बिन्दी, पतले जार्जट का ब्लाउज, आवरण हीन वक्षस्थल। नेत्रो की दृष्टि मे यौवन की मादकता भर सकने का व्यर्थ प्रयास,—और—"

"नन्दा, नन्दा, ओ सुनन्दा।"—उसे झकझोर कर सुप्रकाश पुकारने लगा—तुम प्रकृतिस्थ तो हो न नन्दा ?"

नन्दा जैसे सोते से जागी। शायद इतनी देर के बाद उसने सुप्रकाश को देखा, पहचाना। सहमी। खास कर गले के आबद्ध स्वर को साफ कर कहा—"तुम ? अभी तक सोए नही ?"

"बहुत देर से यहाँ खडा-खडा तुम्हे और एलबम को देख रहा हूँ। तुम इन फोटो मे ऐसी खो गई कि मेरा यहाँ खडा होना जान तक न सकी, यह सब चौधरानी जी के फोटो है न ?"

घडी ने भोर के चार की घटी बजा दी। नन्दा ने एलबम बन्द किया। उठकर खडी हो गई।

"चार बज गए। जाओ सो रहो।"

१७

पथ पर लाउडस्पीकर चिल्लाता जा रहा था—"आज छ बजे शाम को

न्युथिएटर्स मे—'मदन मजरी मे' श्रीमती एलादेवी का मन-मुग्धकारी अभिनय देखिए।" भात की मॉड पसाती हुई सुनन्दा स्तब्ध हो रही। असावधानी से गरम मॉड हाथ पर गिरी, यन्त्रणा से अस्फुट ध्वनि मुँह से निकली। अपने आप हाथ उसका खिच आया, सारा भात जमीन पर गिर गया।

सो वैसी ही बैठी रही नन्दा—विमूढ, विमर्ष, स्तब्ध,—यद्यपि सिनेमा मे एला का योग देना नन्दा के निकट विस्मयकर वार्ता नही थी। यह तो जानी हुई बात रही कि एक दिन वह एला लडकी सिनेमा स्टार बनकर ही रहेगी, सो ठीक है, किन्तु तो भी जाने क्यो नन्दा को उस वार्ता ने विमर्ष कर दिया। एकदम उदास, सोचने लगी वह—यही कारण था जो प्राय दो-ढाई महीने से एला नहीं आई।

सुप्रकाश ने दरवाजे से झाँककर कहा—"कितनी देर है? आज मुझे जरा पहले स्कूल जाना है।"—कहते-कहते वह चौके मे पहुँचा एव आश्चर्य से नन्दा की उस स्थिति को निहारता हुआ बोला—"तुम्हे क्या हो गया है सुनन्दा?"

चौंककर नन्दा ने गिरे हुए भात के प्रति देखा, और देखा चूल्हे पर चढी हुई कढाई को, तरकारी जल चुकी थी। जल्दी से वह उठी।

"क्या तबियत खराब है?" प्रकाश का विस्मय बढ रहा था।

"नही तो।"

यद्यपि नन्दा ने कहा "नही तो।"—तो भी उसके मुख को, उस दृष्टि को देखकर प्रकाश सिहरा, पूछा—"क्या बात है?"

"बात यो कुछ भी नही। एला सिनेमा मे क्यो गई, वही सोच रही थी।"

और दीवाल पर टँगी हुई छोटी-सी कढाई उतारकर चूल्हे पर चढाई, उसमे घी डालकर आटा निकाल कर सानती हुई बोली—"आसन पर बैठ जाओ, भात तो गिर गया, जल्दी से तुम्हे पूरी बनाए

देती हूँ, कुमढे की तरकारी बन चुकी है, दही है, किसी तरह चल जाएगा।"

आसन पर बैठकर प्रकाश ने कहा—"सिनेमा मे एक्टिग करना क्या कोई बुरी बात है ? मैं तो बहुत दिनो से जानता था और मैंने तो सोचा था, एला के साथ तुम भी कही सिनेमा स्टार न बन जाओ।"

सुनन्दा ने केवल लौटकर सुप्रकाश को देखा, अद्‌भुत वह दृष्टि, चित्रित वह मुख-भाव। जिस मुख-भाव को देख सकने के बाद और कुछ कहने का साहस सुप्रकाश को नही हो सका।

"तो तुमने सोच लिया था मै भी जा रही हूँ"—सहज स्वर मे नन्दा कहने लगी—"इस बात पर मैंने अब तक सोचा नही यानी सिनेमा मे जाने के लिए। अब सोचूंगी।"

परम उत्साह से प्रकाश बोला, "जरूर सोचो, जाने कितनी भद्र, शिक्षित स्त्रियाँ सिनेमा मे उतर रही है।"

अपने प्रति प्रकाश का स्पष्ट इगित सुनन्दा नही समझी हो, ऐसा नही, एव उसे किसी का सहारा देकर प्रकाश उसके दायित्व से मुक्त होना चाहता है, यह बात नन्दा ने उसी समय जानी हो—एक नवीन ढग से, ऐसा भी नही, इस बात को वह बहुत पहले से समझ सकी थी, किन्तु सब कुछ सुस्पष्ट जान, समझकर भी सुनन्दा ने जैसे उस विषय को जबरन दबा देना चाहा। उस चर्चा से जाने क्यो उसका व्यक्तित्व सकुचित होता।

कहा उसने—साफ़-सुथरी वह आवाज़—"बडे सरल मन की लडकी है एला।"

चुपचाप भोजन शेषकर प्रकाश उठा। और हठात् उसने पूछा—"आज एला का एक्टिग देखने जा रही हो न ?

"मैं ? क्या तुम जा रहे हो ?"

"अजी, हम स्कूल मास्टरो को घूमने, फिरने, सिनेमा देखने का

वक्त कहाँ ? स्कूल की छुट्टी हुई तो ढेर-सी कापियाँ जाँचो, सात-आठ बजे रात को कही फुरसत मिलती है। तुम तो इन दिनो जाती रहती हो, और तुम्हे ले जाने वाले भी बहुत है।"

"हूँ।" कहकर नन्दा चुप हो गई। इन दिनो सुप्रकाश की बाते जाने कैसी टेढी-मेढी हुआ करती थी और जिसे समझ सकने के बाद उत्तर-प्रत्युत्तर के लिए नन्दा की जरा भी इच्छा नही होती।

कभी निराले मे वह सोचती—जब दस बार वह सुप्रकाश से कह चुकी कि वह जा सकता है विवाह करने के लिए, जा ही सकता है। अपने आप के लिए वह अकेली यथेष्ट है। कह दिया उसने कि—तुम जाओ, जाओ, ऐ मेरे जीवनदाता, आश्रयदाता, बन्धु तुम्हारा ऋण अपरिमेय है, मेरे निकट ऐसा कुछ देय नही है, जिससे कि उस ऋण को चुका सकूँ। एक वस्तु मात्र अब भी अवशिष्ट है, वह है उसका मन, उसी मन की पुकार है मुक्ति, तो नन्दा हास्य मुख से तुम्हे इस बन्धन से मुक्ति दे चुकी है। तब बार बार यह विडम्बना क्यो ? बात-बात मे उसे विद्ध करने की चेष्टा क्यो ? द्वार बन्द कर उसने तुम्हे बन्दी करने की चेष्टा तो कभी नही की थी। बहुत पहले से द्वार खुला पडा हुआ है। उस मुक्तद्वार से हे पथिक ! तुम चले भी क्यो नही जाते ?

सो पथ के पथिक कब किसके हुए है ? नीलगिरि के नीलाचल-सा मोह-जडित यह प्रशस्त राज-पथ। उस पथ पर चलते हुए करोडो पथिक, उनके नानारूप वर्ण युक्त विचित्र पद-ध्वनि, विरामहीन वह ध्वनि पथ के धूलिकण पर, नित्य झकृत हुआ करती है। उस ध्वनि की गुजना कब किसकी अपनी हुई है ? और उसने तो कभी भी उस ध्वनि की गुजना को अपने वीणा के तार मे भरकर नही रखना चाहा था। तो फिर भी यह विडम्बना क्यो ? हे मेरे मित्र, बन्धु तब तुम चले ही क्यो नही जाते ? पथ पर विचित्र वर्ण के पैरो की छाप, वे छापे कब किसने चिरदिन के लिए सजो कर रखी है ?

इस क्षण-भगुर ससार मे कब किसने पथिक की बजाई हुई बाँसुरी की तान को अपने मन की सत्ता मे सजो कर रख पाया है ? तो मेरे बान्धव, चलने की वेला यह परिहास कैसा ? लौट-लौटकर रुकने का यह बहाना भी कैसा ?

चलते-चलते प्रकाश ने पूछा—"मेरा नोटबुक कहाँ रखा है ? कल भी नही मिला।"

नन्दा जैसे नीद से जागी, कढाई का घी कटोरी मे ढालती हुई बोली—"कोट के पाकेट मे रखा होगा।"

प्रकाश निकाल कर चल दिया।

नन्दा ने चौका साफ किया। बासन नल के नीचे रखे। बची हुई पूरियो को उठाकर रख दिया। उसे भोजन की जरा भी रुचि नही थी।

उस दिन सैकेन्ड शो से जब सुनन्दा घर लौटी, तब रात्रि का एक बज चुका था। बाहर के दरवाजे की जजीर को नन्दा ने बहुतेरा हिलाया, पुकारा, परन्तु दरवाजा बन्द ही रहा आया। तब वह चुपचाप बन्द द्वार के बाहर सीढी पर बैठ गई। मनीश उसे दरवाजे पर उतारकर चला गया था।

चहुँ ओर का अन्धकार नन्दा की गोद मे सिमट कर एक भग्न स्तूप-सा बन गया।

गली के उस पार कोई मद्यप प्रलाप-सा बक उठा—"मादिका भर दे प्याली बार बार।" वह विकृत स्वर से बीभत्स गान गाता हुआ उसी ओर आने लगा। नन्दा सिकुडकर द्वार से चिपटकर बैठ गई।

बेसुरा सगीत निकटतर होने लगा। नन्दा उठी, और अपने वस्त्र को सँभालकर खडी हो गई। गिरता-पडता व्यक्ति पहुँचा। नन्दा का शरीर विद्युत स्पर्श की भाँति एकदम झनझनाकर फिर स्थिर हो गया। वह दाँतो तले ओठ दबाकर खडी रही आई। दूर के पोस्ट लाइट से

उजेला आकर कुछ स्थान तक पड रहा था। उसके निकटतर हुआ शराबी और दीवाल पकडकर झूमने लगा।

विकृत स्वर से पूछा--'ऐँ, तुम अब तक मेरे लिए बैठी हो ?"

"जाओ, सीधे चले जाओ। जा--ओ।"

"अरे बापरे।" कहता हुआ वह उसी भाँति गिरता-पडता चल दिया।

गली के दूसरे मोडपर पहरेदार ने सीटी बजाई। नन्दा सिहरी-हाँ अब यह दूसरा सकट उपस्थित है। उस अन्धकार मे शायद उसके मुख पर भय की छाया एक बार झलक उठी हो। किन्तु तुरन्त वह साहस के साथ मुसकराई और द्वार से मस्तक टिकाकर बैठ गई।

रात्रि बढती चली जाती, और उस नीरव रात्रि की नीरव साथिन के रूप मे जागती हुई बैठी रही आई सुनन्दा।

रात कट गई, और यह भोर का प्रकाश ? चकित नन्दा ने आँखे खोली। प्रकाश फैल रहा था, गगा-स्नानार्थी चले जा रहे थे। हाँ, इस सबेरे के प्रकाश के साथ उसे निबटारा करना बाकी है। पचासो जिज्ञासु नेत्रो की जिज्ञासा से उसे सुलझना है। यह है कठिन परीक्षा। नन्दा के सरल ओष्ठाधर पर कठोरता की छाया दृढ हुई: मस्तक पर पल्ला ढाँककर वह चुपचाप बैठी रही आई। स्नानार्थियों की विस्मित दृष्टि उसपर आबद्ध हुई या नही, इन बातो को जाँचने की, देखने की प्रवृत्ति नन्दा मे तब बिल्कुल ही नही थी। वह दूसरी गली की ओर आँखें गडाकर बैठी रही।

मुहल्ले की नौकरानियाँ हल्ला करती हुई निकली, कोई पूछ उठी-"तुम किसके घर की बहू हो बाई ?"

नन्दा ने कोई उत्तर न दिया।

उसने पुन पूछा--"यहाँ क्यो बैठी हो बाई ?"

इस बार भी उत्तर न पाकर दासी ने अपनी सहचरी की ओर ताका,

तब उस सहचरी का कथन सहज ही सुनन्दा के कानो तक पहुँच गया, "देखती नही, रातभर घूमकर लौटी है ।"

दासियो का झुण्ड आगे बढा । तब ग्वाले निकले, नन्दा ने उस ओर से मुँह फेर लिया ।

परन्तु उसके मुँह फेरने से उस स्नानार्थिनी वृद्धा ने नही माना, निकट पहुँची, पूछा—"तुम किसके घर की बहू हो बेटी ?"

उत्तर न पाकर वह कहने लगी—'देखने से तो भले घर की बहू-बेटी-सी लगती हो, जवान, सुन्दर लडकी । लेकिन बन्द दरवाजे पर ऐसे सबेरे क्यो बैठी हो ?"

इस बार भी उत्तर न पाकर वृद्धा चिढी, "घर से भाग आई हो क्या ?"

वृद्धा के प्रश्न से पथचारीगण आकृष्ट हो आए । सुनन्दा ने आँख उठाकर देखा, हाँ, भीड ही तो लग रही है, और इन सब की दर्शनीय है—वह स्वयं । वैसी स्थिति मे भी नन्दा को हँसी आ गई । कहा—"मैं सिनेमा स्टार हूँ, आप लोग अपना-अपना काम देखिए ।"

और नन्दा ने हर्ष के साथ देखा—दूसरे पल भीड हट गई । गली नीरव हो रही ।

तब उसके घर की दासी पहुँची । बन्द दरवाजे पर गृहस्वामिनी को बैठे देखकर वह शायद अति शीघ्र अपने निष्कर्ष पर पहुँच गई । कहा—"आप यहाँ क्यो बैठी है बहू जी ? बाबू जी ने निकालकर दरवाजा बन्द कर दिया है ? किसके घर झगडा नही होता ? ऐसा हुआ ही करता है ।"

द्वार खुला । किसी ओर देखे बिना नन्दा भीतर पहुँची ।

स्नान कर सुनन्दा बालो को पोछ रही थी । सुप्रकाश पहुँचा, कहा—"आज इसी दस बजे की गाडी से मैं घर जा रहा हूँ । तुम्हे तकलीफ करने की जरूरत नही, अपना सामान मैं बाँध चुका हूँ ।"

नन्दा को नीरवता से बालो को पोछते देखकर सुप्रकाश विद्रोही स्वर से कह उठा—"अपना रास्ता तुमने स्वय अच्छी तरह चुन लिया है। इस बार के सीन पर मनीश आवेगा और······।"

"बस", कडककर नन्दा ने कहा— 'बस" ।

और उस 'बस' के निकट सुप्रकाश का परिहास कोडा खाया हुआ, अपराधी की भाँति एक दम सिमटकर दब रहा। वह वैसे ही खडा रह गया।

नन्दा ने बालो को पोछा, माँग मे सिन्दूर भरा, ललाट पर सिन्दूर की विन्दी लगाई फिर उसके सामने आकर बोली—"क्या तुम कह सकते हो, तुम्हे जाने से और विवाह करने से मैंने कब रोका था ? फिर इस झूठ का आश्रय लेकर अपने आप को छोटा क्यो बना रहे हो ? एक मित्र के नाते, महत के नाते मेरे मन मे तुम्हारे लिए थोडी-सी जगह बचने दो। तुम्हारा अब चला जाना ही उचित है। इससे ज्यादा अवनति तुम्हारी और मैं नही देखना चाहती। सब कुछ मिथ्या है, जानकर भी एक नारी को रात भर पथ पर बैठाकर रखना, यह किस अवनति का पूर्वाभास है, सो तुम जितना समझ सकते हो, उतना ही मैं भी। जाओ, तुम्हारा जाना ही ठीक है, यदि आज तुम तैयार न भी होते तो मैं तुम्हे तैयार करा देती। किसी बहाने से भी अब तुम्हारा यहाँ रहना नही हो सकता है। जाओ, आज तुम्हे जाना ही पडेगा। जाओ, तुम जाओ, तुम्हारा यह जाना हमारे और तुम्हारे लिए अब भी शुभ है। अब भी शायद तुम्हारे महत्व के लिए मेरे मन मे श्रद्धा बच रही हो।" उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही नन्दा वहाँ से चल दी।

स्तब्ध, मिट्टी का गुड्डा-सा सुप्रकाश खडा रह गया। और शायद खडा ही रह जाता यदि सुनन्दा द्वार पर से पुकार कर ताँगा आने की तथा उस पर उसके सामान के रखे जाने की खबर न देती

प्रकाश को ताँगे पर बिठाकर सुनन्दा द्वार पर खडी रह गई। कहा—"देखो, टिफिनकेरियर अपने साथ रखना, वरना भूखा रहना पडेगा। पूरी, मिठाई आदि सब उसमे है।"

दूसरी ओर मुह फेरे हुए सुप्रकाश गाडी पर यो बैठा कि जैसे द्वार पर खड़ी नारी के प्रति देखने तक का साहस उसमे नही है। सामान का ताँगा पहले और प्रकाश का तागा पीछे चल पडा।

नन्दा खड़ी-खडी देखती रही, और उस सूने रास्ते पर आँखे पसारे हुई खडी ही रही। ताँगे की घरघराहट धीरे-धीरे उसके अणु-परमाणु मे व्याप्त हो गई। वह वैसी ही खडी रही—खुले हुए द्वार पर एक विराट् शून्यता लिए, उसकी शिरा-उपशिराए क्रमश जैसे उस महाशून्यता मे शून्य, अवश, मूर्छातुर हो रही। बोध-शक्ति पर सूना और निरालापन व्याप गया। और उसके मन की स्फूर्ति को मानो उस शून्यता ने निगलकर तृप्ति का उद्गार लिया।

सूना-सूना विराट् एकाकीपन, एक अकेली रात की साथिन, एक अकेली वह। एक विराट् विश्व, विपुल उसके जीव-जन्तु, कपोत से लेकर मनुष्य तक के प्रत्येक के एक जोडे। और उन जोडो मे बिछुडी हुई एक अकेली वह नारी, सुनन्दा—युवती, सुन्दरी सुनन्दा, एकाकी एक नारी, एक महाशून्यता, उस शून्यता मे खडी-खडी कब सुनन्दा आकार हीन शून्य हो रही, आकार विहीन, सत्ता विहीन मात्र, शून्य! सो वह पहरेदार की सतर्क आवाज से जान सकी।

चकित नन्दा सँभलकर खडी हो गई। मन उसका उस शून्यता को सँजो-संभालकर बोल उठा—सब झूठा है, सब झूठा। कौन कब किसका साथी, कौन किसका कब अपना हुआ है? जीवन? वही तो एक महा-शून्य है न जो कि उसी शून्यता से उत्पन्न, उसी शून्यता मे आकर्षित हुआ एकाकार हो जाता है। न उसका कोई रूप है, न रग, न जाति है, न आयु, ऐसा एक रूप, रस गन्धहीन जीवन शून्य, वह निराकार शून्य।

वैसा जीवन का साथी, इष्ट मित्र और जोडा भी कैसा ? एकाकी एक नारी ने जन्म लिया था, किसी दिन इस धरती पर। और अकेली एक दिन इसी धरती पर वह आराम से सो रहेगी। फिर शून्यता का मोले भी कहाँ ?

'मिथ्या का मोह जाल,' नन्दा के अन्त.करण से कोई कह उठा—मिथ्या है, सब झूठा, एक बार रास्ते की ओर देखा—अजगर की तरह टेढा-मेडा पथ सूना पडा सो रहा था। देखा पोस्ट लाइट के प्रति। जलता हुआ दीप जैसे थकान से ऊब रहा हो। देखा उसने अपने अन्तर के प्रति, ताँगे की घर-घर ध्वनि की ध्वनि मे अन्त करण का श्वास झनझना रहा हो। ओठो तले दाँत दबाकर सुनन्दा ने अपने को नियन्त्रित किया और भीतर चली गई। द्वार खुला ही पडा रह गया—जैसे बिछुडे हुए के आने की प्रतीक्षा को अपने खुले पल्लो पर अकित किए।

१८

सुनन्दा अस्वस्थ थी और वह अस्वस्थता कदाचित् उसके जीवन मे प्रथम बार ही रही हो। खुले द्वार के प्रति पडी-पडी निहार रही थी वह, मन उसका सूना था—एकदम सूना, जाने कितने ही दिनो से इस एकाकी नीरवता मे रहते-रहते उसके गले का स्वर भी जैसे मरनमुख हो रहा था।

नन्दा सोच रही थी—सबने यदि उसे त्याग दिया तो त्यागा करें, किन्तु एला एव मनीश ने तो उसे अपना लिया था न, एकदम निकटस्थ होकर।

प्रश्न उठा—क्या उन दोनो ने वास्तविक ही अपनाया ? यदि

अपना ही लिया था तो बिना कारण त्याग भी कैसे दिया ? त्याग ? त्यागना ! नही तो क्या ? प्रकाश के जाने के बाद मनीश आया ही नही, और एला भी नही आती ।

नन्दा उठकर बैठ गई, यह कैसी नीरवता है ? लगा उसे, वह नीरन्ध्र नीरवता उसके मन की स्वाभाविक स्फूर्ति, गति को पल-पल मे द्रुत-ग्रास कर रही है । घर के चहुँ ओर उसने आँखे फाड-फाडकर देखा, यह कैसा विराट् एकाकीपन है ? नीरव, नीरवता, विराट् एकाकीपन । सो तब लगने लगा उसे, इस गृह के अणु-अणु मे जो भीषण नीरवता व्यापी हुई है—वही वह नीरवता उसे द्रुत-ग्रास करती चली जा रही है । बीमारी कहाँ और कैसी ? यह तो एकाकीपन की गहरी आह है ।

जाने कितने दिनो से उसने मनुष्य को देखा नही, नन्दा के मन मे जाने कैसी अस्वच्छन्दता होने लगी । वह खठिया पकडकर उठी । किसी तरह दीवार के सहारे से ड्रेसिंग टेबिल के बृहत दर्पण के सामने पहुँची । दर्पण मे तब रुग्ण किन्तु अपूर्व सुन्दरी नारी की आकृति अकित हो चुकी थी । छाया-छाया—मनुष्य की छाया, उसके अन्तर प्रदेश से आवाज उठी । उसकी छाया है ? हुआ करे, है वह मनुष्य ही की छाया न ।

आग्रह-आकुलता से वह दर्पण मे अकित नारी की छाया को देखने लगी । ऐसे कि मानो कोई अमूल्य निधि मिल गई हो । इससे पहले शायद ही नन्दा ने अपने प्रतिबिम्ब को इस तन्मयता, मुग्धता से देखा हो । शायद ही इतनी देर तक देखा हो । और फिर एक समय उसकी रुद्ध आवाज बाहर निकल पडी,—"क्या ?" अस्वाभाविक वह स्वर—क्या ? अपने ही स्वर से नन्दा भीत हुई, चकित हुई, शरीर काँप उठा, और तब नन्दा गिरने लगी । पीछे से दो कोमल बाँहो ने उसके पतनोन्मुख शरीर को पकड़ लिया ।

"जीजी, ओ जीजी !" नन्दा को अपनी गोद मे जमीन पर सुलाया और उसके मुँह के निकट झुककर पुकारने लगी—

"जीजी, ओ जीजी ।"

नन्दा ने एक बार आँखें खोली, पुन: बन्द कर ली । अकुलाकर एला चहुँ ओर देखने लगी—क्या करे वह ? नन्दा की दशा देखकर एला एकदम घबरा गई । नन्दा का मस्तक जमीन पर रखकर वह सीढियो की तरफ भागी—हाँ, स्वयं वह डाक्टर बुला लाएगी, या फिर पास-पडोस के घर से मनीश को फोन कर देवेगी ।

एला क्रमश अपरिचित तीन घरों मे पहुँची । किसी गृह-स्वामिनी ने समालोचक दृष्टि से उसे घूरा, किसी ने अवहेलना से और किसी ने भद्रभाव से ही उससे कह दिया—"मेरे घर फोन नही है । बहन आप मल्लिक जी के घर जाइए, इस मुहल्ले मे और कही फोन नही है । मल्लिक जी का घर ? रास्ते के उस पार नाला, सबसे बडा मकान हाँ, वही है ।"

एक प्रकार दौडती हुई एला मल्लिक के घर पहुँची । और मनीश के घर फोन किया । फोन पकडा स्वय श्रीनाथ ने । वहाँ से भागकर एला पुन सुनन्दा के निकट पहुँची । वह एक ही प्रकार बेसुध पडी हुई थी ।

सीढी पर जूतो के शब्द से एला ने उतावली से चिल्ला कर कहा—

"जल्दी आइए मनीश बाबू, इनकी हालत खराब है ।"

अकेला मनीश नही, श्रीनाथ भी साथ थे । वे दोनो नन्दा के बोध-हीन, शव जैसी वर्णहीन आकृति को देखकर सिहरे ।

"क्या भाभी बीमार थी श्रीमती रवीन्द्र ?"

"बीमार ही रही होगी, देखिए न कितनी कमजोर हो गई है । कई महीनो के बाद आज जीजी के पास पहुँच पाई हूँ ।"

श्रीनाथ वज्राहत से खडे रह गए ।

"दादा जी, जीजी की नब्ज तो देखिए ।"

श्रीनाथ के वक्षस्थल को चीरकर सहसा गम्भीर दीर्घश्वास निकल पडा। नब्ज देखी। "बहुत ही कमजोर हो गई है लक्ष्मी, उस पर तेज बुखार चढा हुआ है। कमजोरी से गश आ गया होगा।"

मनीश ने अपनी सबल बाहो से नन्दा को उठाकर पलग पर सुलाया।

"कहाँ गया सुप्रकाश ऐसी दशा मे, उन्हे छुट्टी लेनी थी। अगर न लेते तो अन्तत हम लोगो को भाभी की बीमारी की खबर तो दे देते।" —कहा मनीश ने।

नन्दा के मस्तक पर ओडिकालोन की पट्टी रखकर श्रीनाथ ने कहा—"वह चला गया है।"

"चला गया ? कौन प्रकाश ? चला गया ?" बात जैसे समझ मे न आ रही हो, इस प्रकार मनीश और एला एक ही स्वर मे कह उठे।

"हाँ, चला ही गया। उस दिन मैं विपिन को पहुँचाने के लिए स्टेशन गया था, याद है न मनीश ? अजी वही तो, जिस दिन मेरे पैर मे चोट लगी और महीनो पलंग पर पडा ही रहा, उसी दिन की बात है, सामान लेकर वह अपने घर चला गया।"

"अब नही आएगे ? कहिए न दादा जी, अब मेरी जीजी अकेली ही रहेगी ?" उस आग्रह पूर्ण प्रश्न का उत्तर देते वृद्ध श्रीनाथ का जी जाने कैसा कर उठा, कहा—

"वैसा ही तो उसने कहा, बोला था प्रकाश, उसकी शादी होने वाली है। सुनकर उसपर जाने मेरी कैसी अश्रद्धा हुई।"

"उन्हे रोका क्यो नही दादा जी ?"

"जाने वाले को कब कौन रोक सका है। मैं उसी वक्त नन्दा के पास आ रहा था और एक्सिडेंट हो गया। आज तक पलग पर पडा हुआ हूँ।"

"मैं डाक्टर को लिवा लाऊँ।" मनीश चल दिया।

थोडी देर बाद मनीश अपनी कार पर डाक्टर को तथा फलो की भरी टोकरी लेकर लौटा।

परीक्षा कर डाक्टर ने कहा, "मियादी बुखार की तरह लग रहा है। खून की परीक्षा करनी चाहिए।" बाकी की व्यवस्था देकर वह चला गया।

नन्दा ने आँखे खोली, रक्तवर्ण आँखे। सर्व प्रथम दृष्टि पडी श्रीनाथ पर और उन आँखो मे विस्मय के साथ-साथ रिक्तता भर उठी और उसके बाद उनमे रक्त जाने लगा जैसे किसी की आँखो मे अग्नि की-सी ज्वाला। वृद्ध ने परम स्नेह से उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"मुझे पहचान नही रही हो लक्ष्मी ?"

झटके के साथ श्रीनाथ का हाथ हटाकर नन्दा बोली—"मत छुइए, मत छुइए। मेरे स्पर्श से आप भी असत् हो जाएँगे। हटिए—हटिए, मुझे अकेली मरने दीजिए।" उत्तेजना से उसकी नासिका स्फीत हुई, ओठ फडकने लगे। हृदयश्वास फूलने लगा। वह उसी उत्तेजना मे भरी-भरी कहने लगी—अपने आप—"सती-सती-सती। कभी उस सर्वस्व खोई हुई नारी के मन का पाठ भी किया है ? किया है कभी अनुभव नारी-मन की उस अन्तर्वेदना का ? जबरन जिससे सब कुछ छीन लिया गया हो। वह भी हठात्, सो भी आतङ्कित भाव से, रात की चुप्पी मे नही, दिन के सूर्य-प्रकाश मे और भी उसी के परिजनो की आँखो के सामने। कभी ऐसी नारी के मन की वेदना की असहनीय यातना को अनुभव करने की चेष्ट की है ? जिस नारी की आँखो के सामने उसकी सन्तान को दो टुकडे कर डाला हो और नेत्रो मे तप्त लोहे की सीको का प्रवेश कर दिया हो। पिता को खम्भे के साथ बाध दिया हो और माता को कन्या की दुर्दशा देखने के लिए साक्षी स्वरूप सामने खडा कर दिया हो। पति के हाथ-पैर काटकर फेक दिए हो और तब सबके सामने उस पर अत्याचार की मुहर छापने लग गया हो। ऐसी नारी के मन की वेदना

को, दाहकारी अग्नि को सोच सकने की और सहानुभूति के साथ अनुभव करने की चेष्टा भी कभी की है ?"—

कहते-कहते नन्दा एकदम उठकर बैठ गई। रूखे बाल खुलकर बिखर गए। आँखे विस्तारित हो उठी, हृदय का कम्पन द्रुततर हुआ। और तब गृह के तीनो व्यक्ति विमूढता से खडे के खडे ही रहे आए।

नन्दा कहने लगी—"असती, असती, असती। पूछती हूँ यदि पुरुष का पुरुषत्व है तो उसने नारी के सतीत्व को बचा क्यो नही लिया ? वहाँ का अत्याचार तो एक ही दिन मे समाप्त नही हुआ था ? तब क्या मर्द सो रहे थे ?"

नारी पर जो उसकी इच्छा के विरुद्ध जबरन ही अत्याचार किया गया, तब अत्याचारिता नारी असती ही कैसे हुई ? दो—दो, मेरी बातों का जबाब दो। पाप—पाप, पाप तो मन से हुआ करता है, दैव घटित घटना (एक्सिडेंट) पाप कैसे हो सका ? क्या इसकी जवाबदेही नारी पर, उसके नारीत्व पर, सतीत्व पर लादी जावेगी ? क्या यही इस युग की सभ्यता, उदारता तथा न्याय है ?"

एला को लग रहा था, उत्तेजना से नन्दा का श्वास हृदय को चीर-फाड कर अभी-अभी बाहर निकल आवेगा। श्रीनाथ और मनीश रुद्ध श्वास से एक दूसरे का मुँह निहारने लगे। एला ने जबरन नन्दा को सुला दिया नही तो वह बेहोश हो गई। निस्तब्ध गृह, सध्या की छाया घनी होती जा रही थी, वे तीनो प्रेत-मूर्ति की भाँति नन्दा को घेर कर बैठे हुए थे। तीनो उदास थे।

रात्रि गभीर होने लगी। डाक्टर दो बार आकर रोगी को देख गया था। ज्वर कम हो चला था।

खोली सुनन्दा ने आँखे, आँखो की लालिमा कम थी। सर्व प्रथम नन्दा की दृष्टि एला पर पडी—"तू ? और इतने दिनो के बाद ?"

"जीजी माफी मागती हूँ इस बार, कम्पनी में शूटिंग चल रहा है, इसलिए नही पहुँच पाई। मैं क्या जानूँ कि तुम्हारी दशा ऐसी हो रही है।" कहते कहते एला रुक गई—"ऐ री जीजी, तुम्हे फिर से यह क्या हो गया ? यह आँखे ऐसी क्यो हो रही हैं ?"

नन्दा पुन. बुडबुडाने लगी—उन्मादी-सी उसकी दृष्टि। मनीश ने धीरे कहा—"डिलिरियम अभी है ही।"

विद्रोह पूर्ण मुस्कान मुख पर लपेटी हुई दीवार की ओर मुँह किए कह रही थी नन्दा—"मन अगर हमारा निष्पाप है तो असती कैसे ? हमारी असली भारतीय सस्कृति मे ऐसा विधान नही दिया गया है, न वेदो मे है। गीता कहती है, मनसा-वाचा पाप को ही पाप कहते हैं। पाप मन से होता है। मनु, कौटल्य ने भी यही व्यवस्था दी है। तो वह नारी असती कैसे ? मनु, कौटल्य ने भी आज की तरह नारी के प्रति अन्याय की कल्पना नही की, न वैसी परिस्थिति मे ऐसी व्यवस्था दी कि धर्षिता नारी त्याज्य हो। और फिर वह पुरुष जोकि अपनी पत्नी, अपनी माता, कन्या की रक्षा ही न कर सके, वह स्वय आप फिर से समाज मे प्रतिष्ठावान् होकर पवित्र बनकर रह भी कैसे सकता है ?—कहो-कहो, जवाब दो न ?"—जैसे वह दीवार से उत्तर पूछ रही हो। बुडबुडाती हुई नन्दा सो रही।

प्रात का प्रकाश फैलने लगा था, सुनन्दा जागी, मानो कोई दु स्वप्न देखकर वह अभी-अभी जागी हो। आँखो की दृष्टि स्वाभाविक थी। उसने विस्मय से मुँह फेरा और श्रीनाथ पर आँखे पडी। जरा ठहरी; तब सुनन्दा पुन दीवार की ओर मुँह फेरकर पड रही।

"लक्ष्मी, सुनन्दा, क्या अपने दादू से मुँह फेरकर ही रहोगी ?"

"परन्तु आज तो यहाँ दादू की जरूरत नही है।"

"जरूरत नही है–कह रही हो ? नन्दा, तुम्हारे दादू की जरूरत क्या अब सचमुच नही है।"—मुँह के निकट झुककर वृद्ध ने पूछा।

"आज—अब नही है न।"

"ऐसा ? तो किसी दिन थी ? कब नन्दा ?"

"दादू की ? उस दिन, भरी हुई सभा मे थी न नन्दा को अपने दादू की जरूरत।"

श्रीनाथ ने मस्तक झुका लिया।

"आदमी की कमजोरी कब उसका साथ छोड सकी है लक्ष्मी ? और हठात् आघात एक देन भी तो हुआ करता है।" देर के बाद श्रीनाथ ने कहा।

"कह रही थी—आज नही है दादू की जरूरत।"

वृद्ध हँसा, स्नेह से ओत-प्रोत वह हँसी—"तुम नही जानती; लेकिन मैं जानता हूँ, आज नन्दा को उसके बूढे दादू की कितनी जरूरत है। जब स्टेशन पर प्रकाश से उसका चला जाना सुना था, उसी वक्त लक्ष्मी का दादू उसके पास दौडकर आ रहा था।"

नन्दा की आँखे बन्द हो गई।

मनीश ने कहा—"तुम घर जाओ दादा जी, रात भर के जागे हो। पैर भी अभी ठीक नही हो पाया है। और आप श्रीमती रवीन्द्र, घर जाइए, वहाँ सब खोजते फिर रहे होगे।"

सुनन्दा ने पुन· आँखे खोली, चहुँ ओर देखने लगी, इतनी देर के बाद उसने मनीश को देखा और देखती ही रही आई।

"मैं नन्दा को घर ले जाना चाहता था।" श्रीनाथ ने कहा।

"लेकिन डाक्टर ने उठाने को मना किया है।"

"तो अकेली बीमार लडकी को छोड जाऊँ ? यहाँ कौन रहेगा ?"

"मैं तो हूँ ही।"

"क्या जरूरत है इसकी।" दुर्बल स्वर से नन्दा बोली।

"तुम चुप रहो भाभी, जरूरत है या नही, वह मैं समझूँगा।"

वैसी बीमारी मे भी परिहास-स्पृहा ने नन्दा का साथ न छोडा—

" कभी-कभी भाभी की सुध लेने की जरूरत महीनो नही हुआ करती है। आपकी समझ विचित्रता लिए हुए जरूर होती है ।"

मनीश ने कोई उत्तर न दिया ।

उठते हुए श्रीनाथ ने कहा—" दिन मे तो हम लोग आएगे, लेकिन अकेले तुम रात को कैसे जागा करोगे मनीश ?"

"क्यो ? भाभी तो अब अच्छी है, डिलिरियम कट चुका है ।"

"घर पहुँचकर मैं कल्पना को भेज दूँ ? वह बडे काम की लडकी है। "

"नही-नही-नही ।"

मनीश के उस स्वर ने अस्वस्थ नन्दा तक को चौंका दिया। नीरवता मे वे तीनो मूक से हो रहे । नन्दा पड़ी-पडी जाने क्या सोचने लगी ।

"अच्छा तो ।"— दीर्घश्वास श्रीनाथ का किसी से छिपकर नही रहा ।

"चलो एला, तुम्हे घर तक पहुँचा दूँ । वरना सब लोग जाने क्या-क्या सोचे ।"

"जरूरत नही है दादा जी, मैं किसी से डरती थोडे हूँ ।" आगे-आगे एला और पीछे-पीछे श्रीनाथ चल पडे ।

१६

दिवा द्विप्रहर, उग्र, रौद्र, कार्यादि शेषकर श्रीनाथ के दास दासी विश्राम कर रहे थे । आहारादिक बाद दिवा-निद्रा श्रीनाथ का अभ्यास था । ऊपर के कमरे मे आराम-कुर्सी पर लेटी हुई सुनन्दा रवीन्द्र की 'गीताजली' पढकर कल्पना को समझा रही थी । कल्पना शायद ही कुछ समझ पा रही हो, प्राय: प्रत्येक लाइन पर प्रश्न करती—"जीजी, यह लाइन एकदम पहेली-सी है । क्या मतलब है इसका ?"

हँसकर नन्दा इस नवीन छात्रा को अर्थ समझाती।

नन्दा को, अस्वस्थ अवस्था मे एव उसकी आपत्ति करने पर भी श्रीनाथ अपने घर उठा लाए थे। उपस्थित वह पूर्ण स्वस्थ थी, केवल दुर्बल। अपने घर लौटने के लिए नन्दा व्यग्र होती। श्रीनाथ कहते, "बस दो दिन और ठहरो। अभी तुम्हारी यह हालत नही है कि अकेली रह सको।"

"मै अब बिल्कुल अच्छी हूँ दादू।"

"नही रे पगली। और यह क्या कोई दूसरे का घर है ?"

"नही! यह मेरे दादू का घर है।"

"नही-नही !"—वृद्ध मस्तक हिलाते हुए कहते—"यह घर है लक्ष्मी का।"

नन्दा मुसकराकर कहती—"यह घर लक्ष्मी का है ? तो सुनन्दा यहाँ कैसे रहे ?"

"तू बडी नटखट है री लडकी।" एकदम अपने निजत्व के अधिकार और पुकार मे कह उठता दादू।

दिन टलते चले जाते। सो दो दिन के स्थान पर दस दिन हो जाते। और उतावली के साथ नन्दा घर जाने के लिए प्रस्तुत होती।

श्रीनाथ पुन कहते—"इस वक्त मेरा जी खराब लग रहा है लक्ष्मी, तुम्हारी बात शाम को सुनूँगा।"

और किसी प्रकार दादा की सम्मति पा भी जाती—तो कल्पना के आँसू का बाँध टूटकर बह निकलता। सिसकती हुई कहती कल्पना—"तुम नही जाओ जीजी, इस निर्बान्धव पुरी मे मुझे अकेली छोडकर मत जाओ। या तो मुझे साथ लेती चलो, नही तो तुम यही रही आओ।"

यो नन्दा सकट मे पडी हुई थी। कह रही थी नन्दा—"आदमी सब अत्याचारो के हाथ से बच सकता है, किन्तु स्नेह के अत्याचार से

बचना कठिन होता है।"

"ऐसा ! स्नेह तो स्नेह ही होता है। फिर उसका अत्याचार कैसा ?" विस्मय से कल्पना ने पूछा।

नन्दा मुसकरा कर बोली—

"फिर कभी बतलाऊँगी।"

गीताजली पढते-पढते नन्दा ने करुणा से कल्पना के प्रति देखा। पूछा—"तुम कहाँ तक पढी हो कल्पना ?"

"मै ? तीसरी तक।"

"हिंदी या अग्रेजी ?"

"अजी हिन्दी। अच्छा जीजी, रवीन्द्रनाथ ऐसी कविताए क्यो लिखा करते थे ? "

"कैसी ?"

"यो दुर्बोध जोकि आदमी समझ ही न सके ?"

इसका उत्तर नन्दा के देने से पहले ही द्वार पर से उत्तर आया—"रवीन्द्र क्या जाने कि इस सभ्य, शिक्षित युग मे भी ऐसे प्रश्न करने वाले पैदा होगे ? अगर जानते तो कलम क्यो उठाते ?"

दोनो ने लौट कर देखा मनीश को।

"लौट क्यो रहे हो ? अन्दर आओ मनीश बाबू।"

"आऊँ ? लेकिन, जबकि मेरा आना तुम्हे पसन्द नही, तब क्यो आऊँ ?"

"ऊपर से झूठ कहते हो कि मुझे पसन्द नही ? तीन दिन के बाद तो आज घर आ रहे हो। तुमसे किसने कहा कि तुम्हारा आना मुझे पसन्द नही ?"

"तुमने।"

"मैंने !"—आश्चर्य से नन्दा का मुँह खुला ही रह गया।

"कोई साफ-साफ कहता है और कोई अपने कार्य द्वारा बतलाता है। यदि मेरा सान्निध्य तुम्हे पसन्द होता भाभी, तो बेकार भीड अपने

पास क्यो इकट्ठा कर रखती ?"

कल्पना का मुख पीला पड गया। नन्दा के कुछ कहने से पहले वह निकल कर चली गई। मनीश अन्दर आया, कुर्सी खीच कर नन्दा के निकट बैठ गया।

"उस बिचारी ने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? गरीब लडकी मुँह लटका कर चली गई।"

"रहने भी दो भाभी, मैं सब कुछ समझता हूँ, दादा जी उसे यहाँ क्यो लाए है, वह भी जानता हूँ। तुम क्यो उसे अपने पास बिठा कर रखती हो, यह सब जानता हूँ।"

कौतुक से नन्दा ने पूछा—"ऐसा ? अच्छा तुम्हारी समझ,. समझते हो तो जरा सुनूं।"

"उस जगली को दादा जी मेरे साथ शादी करने के लिए लाए हैं।" इसके बाद उत्तेजित स्वर से कहने लगा मनीश—"तुम उनसे साफ-साफ कह देना—मे उससे कभी शादी नही कर सकूँगा। उस निरपराध लडकी का जीवन वे क्यो बर्बाद कर रहे हैं ? उसकी शादी किसी से वे कर दें ?"

"किन्तु मनीश बाबू—"

"कुछ नही, जो कभी हो ही नही सकता है, उसके लिए सिर पीटने की जरूरत नही है भाभी।"

"नही हो सकेगा ?"

"कितनी बार कहूँ कि— नही–नही, नही, अपने मन का मालिक मैं स्वय हूँ, न तुम हो, न दादा जी है। मैं तो किसी से प्रेम की भीख नही मागने जा रहा हूँ, न किसी को अपनी दु खभरी वेदना ही सुनाना चाहता हूँ, जो कुछ है वह उचित है या अनुचित, इससे कोई मतलब नही, क्योकि वह है ही और वह मेरा अपना है, उससे मैं स्वय समझौता कर लूंगा, निपटारा कर लूंगा।"

उसकी बातो मे क्या था, कौन जाने ! नन्दा का साहस जाता रहा, न जाने क्यो उसका जी काँप उठा, धीरे से बोली—"तो तुम अपनी प्रेम-पात्री ही से शादी क्यो नही करते ?"

मनीश ने सुनन्दा के अशान्त मुख के प्रति देखा, कुछ कहने के लिए मुख खोला, किन्तु दूसरे पल जबरन उसने अपने ओठ एक दूसरे के साथ सटा लिए, यो जैसे वे कभी खुलेगे ही नही ।

नन्दा सहमी, पूर्ण दृष्टि मनीश के मुख पर प्रसारित किए बोली—"गृहस्थी बसा लो मनीश बाबू, आवारा की तरह कोई कब तक रह सकता है ? इसमे कोई लाभ नही । जिसे प्यार करते हो, उसी से शादी कर लो, दादू आपत्ति नही करेगे । ऐसा मेरा विश्वास है ।"

"अगर वह सम्भव होता सुनन्दा ! तो क्या आवारा की तरह मैं रात-दिन गलियो मे भटकता फिरता ?"

"ऐसा ! असम्भव है ? तब तुमने ऐसी एक को प्यार क्यो किया ?"

विस्मय से उसे देखते हुए मनीश ने कहा—"आखिर निरी पत्थर निकली नन्दा । सोचता था—स्त्रियों मे तुम एक ऐसी हो जिसे कि बुद्धिमती कहा जा सकता है । नही जानती तुम ? क्या प्रेम, पात्र-अपात्र, न्याय-अन्याय के बन्धन में बध सका है ? सोच-समझ कर कब किसका प्रेम किसी के दरवाजे लुटा था, या लुट सका है ? तुम्हारी तरह पत्थर की तरह मनवाली स्त्री मेरी बातो को नही समझ सकेगी । मुझे किसी से कहना भी तो नही है नन्दरानी ।"

नन्दा तीक्ष्ण दृष्टि से मनीश को देखने लगी । क्या देखा, क्या पाया उसने मनीश मे, सो तो वही जाने, परन्तु अन्तरात्मा उसका सिहर उठा, इतना तो सही ही है ।

कुछ दिनो से नन्दा के मन मे जो एक आतंकित सन्देह की छाया पड रही थी, वह छाया कुछ स्पष्टतर हुई ।

नन्दा कुछ देर चुप रही, फिर प्रसग बदलती हुई बोली—"तुम्हे अब मनीश बाबू नही कहा करूँगी।"

कौतुक से मनीश हँसा—"ऐसा ! और क्या कहोगी ?"

"आवारा।"

"क्यो ?"

"मेरी खुशी।"

"अच्छी बात हैं। मैं भी अब भाभी नही कहूँगा।"

"तो क्या कहोगे ?" जरा रुक कर नन्दा ने पुन कहा—

"एक बार जिसे भाभी, भाई, या जो कुछ कहकर मान लिया हो, उस सम्बन्ध को जिन्दगी भर निभाना भी पडता है, समझे मनीश बाबू ? वचन का मूल्य हुआ करता है, आदमी की बातो का यदि मूल्य ही न रहा तो वह आदमी कैसा ?"

उस रुग्ण, दुर्बल, आतकित स्वर की गूढ वार्ता पलभर मे मनीश के निकट स्पष्ट हो गई। वह मलीन हँसा—"अरे ! डर गई भाभी ? और अपने मनीश से ! नही, मुझसे मत डरा करो नन्दरानी।"—सुनन्दा का दाहिना हाथ खीच कर अपनी गोद मे रखकर पुन कहने लगा मनीश—"डर, भय, यह सब तुम्हारे लिए नई बात है, यह बाते मेरी भाभी को शोभा नही देती।" कहता हुआ मनीश नन्दा के एक दम निकटतर हुआ। मदिरा की गध सुनन्दा की नासिका मे पहुँची। नन्दा ने एक बार विवर्ण मुख उठा भर लिया।

अपनी बातो का छोर समेटता हुआ मनीश कह रहा था—"तुम कितनी कमजोर हो गई हो भाभी, वे गोल-गोल हाथ दुबले हो गए है, आँखे धस गई है ! यद्यपि इस कमजोरी ने तुम्हारे मुख की कठोरता को हटा कर कोमलता को ला दिया है, तुम अब और भी भली लगती हो भाभी। लेकिन कमजोर हो गई हो, यहाँ तक कि मेरी तरह एक शराबी से भी डरने लगी हो।" जरा देर मनीश खिडकी की ओर मुँह किए

जाने क्या सोचता रहा, फिर नन्दा के रूखे बालो पर हाथ फेरता हुआ कहने लगा—"चाहे मैं शराबी होऊँ, लम्पट होऊँ, किन्तु नन्दा का अनिष्ट कभी नही करूँगा, अपनी भाभी का अपमान करने का साहस मनीश मे नही है, डर गईं भाभी ?"

मुख पर हँसी खीचती हुई सुनन्दा बोली—"तुम्हारे करने से क्या होता है ? डरूँ भी क्यो ? अजी, डर कैसा ?"

"जाने भी दो, अब कुछ ताकत पा रही हो ? कैसी हो भाभी ?"

"तुम्हारी बला से, चाहे मैं मरूँ या जिऊँ, तुम्हे क्या करना ? दिन-रात बाहर से तुम्हे मतलब। घर मे भाभी मरे या कोई भी मरे, तुम्हे क्या करना ?"

उदास, असहाय दृष्टि से मनीश ने नन्दा को देखा, और देखता ही रह गया। जाने कब तक वह देखता रहा और एक समय हठात् मनीश कह उठा—"सब कुछ भूलकर रहने के लिए, हाँ शराब के नशे मे मस्त होकर मन की पीडा को भूलने का वही तो एक रास्ता मेरे लिए बच रहा है अब, सुनन्दा।" मनीश के स्वर की, उसकी बातो की व्यथित गुंजना नन्दा के मन को छूने लगी। वह सहानुभूति तथा आतुरता से व्याकुल हुई।

और तब नन्दा का मन शिशु जैसा सरल हो गया, उसमे उठी यह भावना—बेचारा, दुखी शिशु स्वभाव का मातृहीन युवक। तब नन्दा के मन का परिपूर्ण ममत्व मानो बाहे बढाकर उस युवक को आलिंगनाबद्ध कर प्यार करने के लिए आकुल हो उठा।

सुनन्दा उठी, मनीश को अपने निकट आदर से बैठाया, कहा—"दुख-दर्द को भूलने के लिए, नशे का आश्रय लेना तो मन की कमजोरी है मनीश बाबू।"

निकट बैठा मनीश—बाध्य शिशु की भाँति, बोला—"मारे दर्द के सिर फटा जा रहा है भाभी।"

"दर्द है ? अब तक कहा क्यो नही ? लेट जाओ, मै बाम मले दे रही हूँ।"

नन्दा की जाँघो पर मनीश आँखें बन्द कर लेट गया।

"ज़रा-सा उठो, मै बाम की शीशी ले आऊँ।"

"नही, तुम सिर दबा दो।"

सिर दबाने लगी नन्दा, सन्ध्या का अन्धकार क्रमशः घनीभूत हो आया। मनीश उसी भाँति आँखे बन्द कर पडा रह गया।

द्वार पर से कोई छाया की भाँति हटने लगा। सुनन्दा ने देखा और पहचान कर बोली--"नलिनी बहन, आप आई हैं ? तो लौट क्यो रही हो ? आइए न, जाने कितने दिनो के बाद आप को देख रही हूँ। बडी कमजोर हो रही है।"

"आई थी कल्पना के पास, मोजे का नमूना लेने के लिए। मै क्या जानूँ ? अचानक इस समय यहाँ पहुच गई। माफ करना। इस समय यहाँ पर पहुँचकर मैने शायद आप लोगो को--"

पूरी बात न सुनकर नन्दा ने कहा--"खैर, कृपा कर टेबिल पर रखी हुई बाम की शीशी देती जाओ, जरा स्विच खोल दीजिए।"

बाम की शीशी हाथ मे लेकर नन्दा ने कहा--"धन्यवाद।"

मनीश, जो कि पडा-पडा सब कुछ सुन रहा था और भीतर ही भीतर क्रोध दबा रहा था, उठकर बैठ गया, बोला--"अरे आप नलिनी देवी, नमस्ते-नमस्ते, तो मोजे का नमूना लेने आई थी ? बच्चे के लिए शायद इन्हे जरूरत हो, तुम बतला दो न भाभी, मेरे तो विचार से बाजार के बने हुए मोजे और भी अच्छे होते हैं।"

"बच्चे के लिए यानी ? देखिए मजाक आदमी देखकर किया जाता है। किसी निष्ठावान् हिन्दू विधवा से इस तरह मजाक करना अच्छा नही होता। बच्चा-बच्चा, अजी मेरा बच्चा कहाँ से आता ? दूसरो की भाँति सब को समझ रखना। वाह, अच्छा मजाक रहा।"

हँसी रोककर मनीश ने कहा—"लेकिन ऐसा मैंने क्या कहा, जिससे आप को अपमान करना हो सकता है, मेरी समझ मे अब तक यह बात नही आई नलिनी देवी। और बच्चा केवल आप ही का हो सकता है, ऐसा भी नही कहा।"

नलिनी ने केवल कहा, "हूँ।"

"ओ, आप तो बीमार थी?"

और कोई उत्तर न पाकर पुन. मनीश ने जैसे उसी नलिनी को साक्षी मानकर कहा—"यही बात है न नलिनी देवी?"

"थी तो, फिर इससे आप को क्या?"

"कुछ नही, कुछ नही, बीमारी मे सब लोग पूछा-पाछा करते ही है। लेकिन आप चिढ क्यो रही है?"

एक बार प्रज्वलित दृष्टि उन दोनो के प्रति डालती हुई नलिनी निकल कर चल दी।

"उसे बेकार तुमने चिढाया, इसका परिणाम अच्छा न होगा।"

"तो मै चुपचाप आँखो के सामने भाभी का अपमान सहता रहता? यह मुझसे नही हो सकता। और सब कुछ सह सकता हूँ, लेकिन भाभी का अपमान नही सह सकता।"

"हूँ।"

"आखिर वह करेगी ही क्या? मुझे फाँसी पर लटका देगी?"

नन्दा मुसकराने लगी।

२०

दोपहर निकलकर पाँच बज रहे थे। सुनन्दा बगीचे के काम में जुटी हुई थी। उसकी बीमारी मे झाड-पेड को हानि पहुँची, वे सब

पानी के बिना सूख रहे थे। घर पहुँच कर भी नन्दा की कमजोरी ने कुछ करने न दिया। अब क्रमशः उसकी दुर्बलता हटती जाती।

द्वार पर मोटर का हार्न बज उठा। मिट्टी सने हाथो को धोकर उसने दरवाजा खोला। शोफर ने पत्र दिया। श्रीनाथ ने उसे अविलम्ब बुलाया है। चाय पार्टी है।

नन्दा ने पूछा—"तुम सबेरे आए थे क्या ?"

"जी, लेकिन दरवाजे पर ताला बन्द था।"

"ठहरो, आती हूँ।"

नन्दा ने जल्दी-जल्दी स्नान कर बालो को सँभाला, माँग मे सिंदूर भरा। कपडे की आलमारी खोली, सर्वप्रथम उसकी आँखे आकृष्ट हुई—सिंदूर रग की साडी पर। हाथ मे साडी लेकर वह खडी रह गई। इस साडी का छोटा-सा इतिहास उसे स्मरण हो आया। गत वर्ष उसने मनीश के साथ होली खेली थी। दूसरे दिन मनीश स्वयं साडी खरीद लाकर बोला था—"भाभी, आज मोटर का हार्न खरीदने बाजार गया तो यह साडी देखी, तुम्हारे लिए लाया हूँ, इसका रग मुझे बहुत पसन्द आया, पहनो तो सही, देखूं। तुम्हे यह रग कैसा लगेगा—ऐसा—ऐसा—"

"बस करो मनी बाबू, चुप भी रहो।" और फिर साडी हाथ मे लेकर नन्दा ने कहा था—"सचमुच सुन्दर साडी है।"

"पहनो, मैं देखूं जरा।"

"परन्तु रगीन साडी मैं पहनती नही हूँ न।"

मनीश ने बच्चो की तरह मचल कर कहा था—"चाहे न पहनती हो, लेकिन आज तो पहनना ही पडेगा।"

"नही, माफी चाहती हूँ।"—साडी लेकर वह तुरन्त चली गई थी और आलमारी मे उसे बन्द कर रख दिया था। उसके बाद कई दिनो तक मनीश उसके घर आया नही; और मुलाकात होने पर मुँह फेर

लिया करता था। किन्तु उसने साडी नही पहनी।

नन्दा जरा-सा म्लान हँसी। उस नीरव गृह मे उसकी वह हँसी दीवाल से टकरा कर उसी के मुँह पर लौट पडी। अनमनी-सी नन्दा साडी लिए जाने कब तक खडी रही। शोफर ने हार्न बजाया। चेतन्य होकर नन्दा पुन मुसकराई, और सिंदूर रग की साडी पहन कर दर्पण के सम्मुख खडी हो गई। सिंदूर की बिन्दी ललाट पर, दोनो भौहो के बीच लगाई और दरवाजे पर ताला बन्द कर कार पर बैठ गई।

श्रीनाथ के प्रासाद तुल्य गृह द्वार पर कार रुकी। सामने नन्दा ने किसी को देखने न पाया।

डाइनिंग रूम से हँसी का उच्छ्वास, और काँटे, चम्मचो की टुनटुनाहट सुनने वालो को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी।

"दादू-दादू !"—पुकारती हुई सुनन्दा डाइनिंग रूम मे पहुँची। नन्दा पहुँची—सो तो ठीक है और टेबिल की तरफ—ठीक द्वार के प्रति मुँह किए हुए उपविष्ट व्यक्ति के प्रति उसकी दृष्टि पडी वह भी असत्य नही है। एव दोनो की दृष्टि एक होकर कुछ क्षण तक एक दूसरी मे अटकी रही आई सो भी निर्मूल सत्य है। किन्तु उसके बाद क्या हुआ, नन्दा ने क्या किया, यह बात,—हाँ। उसका वह आचरण स्वय ही नन्दा को ज्ञात नही।

मनीश ने आतक से आवाज लगाई—"भाभी !"

तब तक सामने उपविष्ट रवीन्द्र के हाथ का कप जमीन पर गिर कर टूट चुका था। पति के सूट पर गिरे हुए चाय के छीटे रूमाल द्वारा पौंछ कर एला ने पूछा—"गरम चाय से हाथ तो नही जला ?" और वह पति के मुख पर अपनी जिज्ञासित दृष्टि उठाकर अवाक् हो रही।—"ऐ, तुम्हे अचानक क्या हो गया है—चेहरा ऐसा हो रहा है—मानो अभी-अभी तुमने प्रेत देखा हो।"

चौधरानी ने बारीक आवाज से कहा—"अगर तबियत खराब हो

रही हो तो उन्हें सोफे पर लिटा दो एला ।"

प्याला गिरने की आवाज से सुनन्दा का क्षणिक मोह, अव्यवस्थित चित्त, व्यवस्थित हो चुका था। मुँह पर हँसी खीचकर वह बोली;—"मुझे देर लग गई दादू ।"

मनीश ने अपने निकट की खाली कुर्सी पर उसे बैठाया, श्रीनाथ ने नन्दा का परिचय करवाया "यह मेरी बेटी सुनन्दा है रवीन्द्र।" और मुसकराकर कहा—"लेकिन मै इसे लक्ष्मी कहकर पुकारता हूँ। इन्हे शायद तुमने देखा हो, पहचानती हो इन्हे नन्दा ?"

नन्दा ने जरा इतस्तत किया, बोली—"हाँ।"

"और आप इन्हे जानते है रवीन्द्र बाबू ?"

रवीन्द्र अस्वस्थ हो रहा था। उसके मुख से हठात् ही निकल गया—"नही।"

नही ! एक सीधा—साफ 'नही' था। यदि रवीन्द्र जानता, यदि वह अन्तर्यामी होता तो अनायास देख पाता कि उस छोटी-सी 'नही' ने सामने उपविष्ट नारी के मन की शेष श्रद्धा, पुरुष के प्रति अवशिष्ट सम्मान तक को किस प्रकार से शेष—निःशेष कर दिया। यदि वह जान पाता तो शायद ही 'नही' शब्द को मुह से निकालता, हाँ तब वह देख पाता कि उस नही शब्द ने उस नारी के व्यथित हृदय पर की वेदना की अमिट आहो को लजाकर, सँजो कर बैठा दिया। मानो सतर्क प्रहरी की भाँति वे आहे उसे याद दिलाया करेगी—एक पुरुष के 'नही' की। नही, रवीन्द्र यह सब कुछ नही जान सका। उसकी चकित दृष्टि कदाचित् अनिच्छा से एक बार घूम गई नन्दा के मुख पर, नही, नन्दा के मुख पर तब वेदना, या दु:ख का कोई चिह्न तक नही था।

मनीश हँसने लगा—"एक पहचानता है और दूसरा नही, यह तो बडे मजे की बात है।"

सुनन्दा को देखने के बाद वही जो चौधरानी ने भौहे सिकोड कर

मुँह फेर लिया था, फिर वह वैसी ही रही आई, भोजन से खींचा हुआ हाथ, खिंचकर रहा आया। और नलिनी ने तो पानरत चाय का कप ही टेबिल पर रख दिया।

इस परिस्थिति को और नारीत्व के मनः भाव को दूसरे शायद कभी समझे हो, परन्तु सुनन्दा ने दर्पण मे अकित छाया की भाँति समझ-पढ लिया उनके मन भाव को। हाँ, उस जैसी पतिता के साथ बैठकर वे दोनो पान--भोजन नही कर सकती।

वैसी दशा मे भी सुनन्दा को हँसी आई।

श्रीनाथ ने कहा--"नलिनी बेटी, यह क्या ? चाय ठडी हो रही है ना। और चौधरानी जी, आपने भोजन से हाथ क्यो खींच लिया ?"

"खा रही हूँ।"

तब तक नलिनी ने मानो अपने व्यग्य को उलग कर टेबिल पर खडा कर दिया-"सुप्रकाश बाबू की शादी मे आप गई थी नन्दादेवी ? नही ? अजी, इतने दिनो तक उनके पास थी, जाना तो चाहिए था।"

मनीश झु झलाकर कुछ कहने को हुआ, तब नन्दा का सयत स्वर ध्वनित हो उठा--"समाज से निकाली हुई नारियो को शादी-विवाह मे जगह कहाँ है बहन ? वरना शायद अपने मित्र के विवाह मे जाती ही।"

और जिसे विद्धकर कुछ कहा गया, उसने स्वय ही जब सबके सामने अपने को पतिता कह कर घोषणा कर दी, तब नलिनी के निकट कहने-सुनने को कुछ नही बचा।

चौधरानी ने नलिनी की बात को जीवित कर रखना चाहा-"सुप्रकाश बाबू तो गए। आप से कह रही हूँ श्रीनाथ बाबू, जवान लडकी सुनन्दा अकेली कैसे रह सकती है ?"

एला का मुख कठोर हुआ--"ममी, ममी, तुम यह किससे क्या कह रही हो ?"

मनीश ने क्रुद्ध गर्जना की--"देखिए चौधरानी जी, भद्र समाज मे

बैठकर एक भद्र नारी को—"

और तब नन्दा उन सब को बाधा सी देती हुई बोली—"मनीश बाबू, एला, बडो पर बाते नही करते।"

"चुप रहो भाभी, उठो यहाँ से। तुम्हारे साथ बैठने की योग्यता भी तो हममे नही है।"

उन कुत्सित व्यग्यो-परिहासो को सुनकर अब तक श्रीनाथ स्तम्भित हो रहे थे। वे सहसा सोते से जागे—"लेकिन जिस लक्ष्मी को आदर-सम्मान के साथ अपने परिवार मे अपने भोजन टेबिल पर बैठा सका हूँ, उसे यहाँ से हटाने का साहस तुम भी नही कर सकते हो मनीश। मै यह नही चाहता कि इस विषय पर आगे कोई चर्चा हो।"

और विस्मय, पलभर मे वहाँ का वातावरण शात हो गया। चौधरानी का स्वर हठात् कोमलता से भर उठा—"बीमार थी क्या सुनन्दा ? बहुत कमजोर हो रही हो।"

उत्तर दिया एला ने—"तुम नही जानती ममी ? जीजी बहुत बीमार थी, मै तो प्राय: रोज ही जीजी के पास जाती थी।"

चौधरानी ने क्रोधित नेत्रो से कन्या को देखा।

उत्तर की प्रतीक्षा न कर एला ने रवीन्द्र के कन्धे पर हाथ रखकर —"मेरी जीजी को देखा न तुमने ? बहुत ही अच्छी है। इन्ही की बाते तो किया करती हूँ। तुम समझते नही थे। अब तो देख लिया न ?" फिर पति का हाथ पकडकर खीचने लगी—"चलो न ! डान्स मे चलो ! जीजी को जबरन ले चलो। उन्हे डान्स पसन्द नही तो न सही, तुम्हारी बात नही टालेगी। मै मि० कुमार के साथ डान्स करूँगी। तुम दोनो बैठे रहना।"

रवीन्द्र वहाँ बैठा हुआ अत्यन्त अस्थिरता अनुभव कर रहा था। वह वहाँ से भाग जाना चाह रहा था। परन्तु अधिक विस्मय तो यह है कि भागने का सुयोग मिलने पर भी वह भाग न सका। बैठा ही रह गया।

"चलो न।"

"नही, बाल-डान्स मुझे पसन्द नही।"

रवीन्द्र घर जाने के लिए उठकर खडा हो गया। किन्तु उस एक तुच्छ दृश्य ने उसे ऐसा भी विचलित किया कि मूर्तिवत् खडा रह गया।

सुनन्दा एक हाथ से मनीश का मुख ऊपर को उठाकर दूसरे हाथ से आँचल के छोर द्वारा मनीश की आँख मे गिरी हुई किरकिरी को निकाल रही थी।

रवीन्द्र धम्म से पुन. कुर्सी पर बैठ गया। न जाने क्यो उसके मुख पर ईर्ष्या की छाया स्पष्टतर हुई।

मनीश की आँख की किरकिरी निकाल कर नन्दा आकर अपने स्थान पर बैठी। रसगुल्ला का प्लेट बढाकर कहा—"दादू, तुमने एक भी रसगुल्ला नही लिया। रसगुल्ले तुम्हे प्रिय है। और मि० गुप्त आपने तो कुछ खाया ही नही।" कहकर उसने केक, पेस्ट्री के प्लेट रवीन्द्र के सामने रख दी। तब नलिनी से पूछा—"आप बीमार थी क्या नलिनी बहन ?"

नलिनी के कुछ कहने से पहले अति शीघ्रता से उत्तर दिया एला ने—"तुम्हारी तरह इनकी बीमारी नही थी जीजी, समझी ? मुझ से कितनी बार सुन चुकी हो। भूल गई ? अजी। इनकी तो ऐसी बीमारी रही है, कि लेडी डाक्टर आई, और मेरी ममी—"

बीच मे कठोर स्वर से चौधरानी ने आवाज लगाई।

"एला।"

"क्या है ममी ? क्या मै झूठ कह रही हूँ ?"

"तुम बहुत बातूनी हो रही हो।"

एला ने कहा—"बात न करूँ ? झूठ बोलूँ ? तुम मुझे झूठ कहने को कह रही हो ममी ?"

सुनन्दा एला के स्वभाव से थोडे ही दिनो में परिचित हो चुकी

थी। यह मुँहजोर किन्तु न्याय-पसन्द लडकी अभी क्या से क्या कह बैठेगी, इस बात को समझकर वह बीच मे बोली—"एला।"

"जीजी"

"बडो का सम्मान किया जाता है।"

"मैंने ममी का अपमान कहाँ किया ?"

"अच्छी लडकी। और उनकी चर्चा कहने का विषय बहुत रहा करता है। बस एला।"

सबो ने और विशेषकर चौधरानी ने विस्मय से देखा, वह दुर्दान्त लडकी एला मन्त्रमुग्ध की भाँति केवल नन्दा के मुख के प्रति देखती हुई चुप रह गई। हल्की-सी मुस्कान उसके पतले ओठो मे लिपट रही।

"अच्छा तो नमस्कार।" रवीन्द्र उठकर खडा हो गया। चौधरानी बैठी रह गई। आज की बातचीत से वह सुनन्दा के प्रति असम्भव रूप से प्रसन्न हो उठी थी। बैठी-बैठी वह नन्दा से बाते करने लगी।

२१

आँखे मलती हुई सुनन्दा सोकर उठ रही थी। तब श्रीनाथ पहुँचे—"लक्ष्मी-लक्ष्मी" पुकारते हुए।

"अरे, दादू ?"

"इतने सवेरे मुझे देखकर अचरज कर रही हो। ? वह काम ही ऐसा आ गया।"

वृद्ध को मोढे पर बैठाकर नन्दा ने कहा—"आज शायद पन्द्रह-बीस दिन हुए, मै तुम्हारे पास नही जा सकी। किन्तु इन थोडे से दिनो मे परिवर्तन हुआ है तुम्हारा।"

"हूँ।"

"बीमार थे दादू क्या ?"

"बीमार होऊँ, मर जाऊँ, यह तो मै चाहता ही हूँ। लेकिन बुलाने पर मौत नही आती।"

"आज कैसी बाते कर रहे हो दादू ? आखिर बात क्या है ?"

"अब जिन्दगी मे सुख नही रहा लक्ष्मी। जिस पौधे को सेवा, यत्न देकर, पाल-पोषकर बडा किया, जिसके सुख-शान्ति के लिए बुढापे मे अपना तक मैने परिवर्तन कर डाला और करता जा रहा हूँ, वही मनीश उच्छृखलता के चरम मे पहुंच रहा है। न उसे अपनी इज्जत की परवाह है, न घर की और न मेरी। शादी के लिए अच्छी से अच्छी लडकी खोज निकाली, लडकियो के लिए शहरो को छान डाला। उसे एक से एक सुन्दर, सुशिक्षित लडकी बतलाई। लेकिन सब बेकार। मनीश ने किसी को भी पसन्द नही किया। यो घर मे कल्पना है ही, सुन्दरी नही तो कुरूप भी नही है। ऊँचे घराने की सुशील लडकी है। सोचा, एक साथ रहते-रहते उसपर मनीश की ममता पडेगी। इसी से उसे घर लाकर रखा। कल्पना की तरफ वह लौटकर भी नही देखता। और भाग्य से वह लडकी भी ऐसी निकली कि अपने कमरे से बाहर निकलती ही नही। मै सब कुछ कर चुका हूँ नन्दा, उस मनीश के लिए। सब बेकार हुआ। अब अपनी जिन्दगी से ऊब गया हूँ।"

"बात क्या है दादू ?"

"आज पन्द्रह-बीस दिन हुए, मनी घर पर नही आया।"

नन्दा का मुख गम्भीर हुआ, पूछा—"उनके रहने की जगह जानते हो दादू ?"

"ठीक तो नही जानता। क्योकि इतने दिनो तक घर छोडकर वह कभी रहा नही, कभी-कभी रात मे वह घर नही लौटता था। लेकिन इतने दिनो तक नही। हाँ, शहर के बाहर अपना एक उद्यान-वाटिका है। नही, तुमने नही देखा, दीपू कह रहा था, कई दिन पहले उसे कुछ

लडकियो के साथ वहाँ उसने देखा था ।

सुनन्दा ऐसी चौंकी कि देर तक बात न कर सकी ।

"यह आदत उसकी शायद कुछ महीनो से हुई है, पहले शराब जरूर पीता था लेकिन स्त्रियो के साथ रहना यह पहली बार मैंने सुना ।"

"कैसी स्त्रियाँ ? मै समझी नही । वेश्या ?"

"नही। दीपू कह रहा था—घर-गृहस्थ की स्त्रियाँ, अपटूडेट लडकियो को उसने देखा था । उस उद्यान-वाटिका मे बालडाँस हो रहा था ।"

नन्दा उठकर खडी हो गई—"चलो घर । मै चल रही हूँ तुम्हारे साथ । यदि आज वे नही आए तो शाम को देखूंगी ।"

"तुम एक स्त्री, उसका क्या कर सकोगी लक्ष्मी । मै उस सूने घर मे, मनी जहाँ नही है, वहाँ मै कैसे जाऊँ ?"

"तुम्हे कह रही हूँ दादू, शाम तक उन्हे मै ज़रूर लौटाकर घर लाऊँगी ।"

आग्रह से शिशु की भाति श्रीनाथ कहने लगे—"कर सकोगी ? उसे ला सकोगी लक्ष्मी ? एं, सच ? आज पन्द्रह दिनो से मनी को मैने देखा नही । तुम—तुम उसे घर लौटाकर ला सकोगी लक्ष्मी ?"

"ज़रूर, तुम चाय पीकर आए हो या लाऊँ ?"

और तब वह बोली—"पी ली है ? कह रही थी कल्पना की शादी अब कर दो, वरन् जहाँ तक जल्दी हो सके करो । लडके बहुत मिल जाएँगे ।"

वृद्ध के आशाहत मुख को देखकर नन्दा का हृदय आर्द्र जरूर हुआ, परन्तु मिथ्या के आवरण मे दादू को छिपकर रहना या रखना उसे खटक रहा था । जो कि कभी सम्भव नही उसे असम्भव कहकर ही क्यो न त्याग दिया जाय ? कहा नन्दा ने दृढ धीरता से—'मनीश बाबू उससे कभी भी शादी नही करेगे । तो कल्पना की जिन्दगी को क्यो

बर्बाद किया जाए। तुम्हारे पडोस मे उसके योग्य वर है। क्यो, दीपक बाबू। जितनी जल्दी हो शादी निपटा डालो। मै स्नान कर लू ।"

स्नान भोजन कर श्रीनाथ के ड्राइग-रूम मे सुनन्दा बैठी कुछ सोच रही थी। सोफे पर श्रीनाथ आँखे बद कर पडे हुए थे।

हठात् नन्दा ने पूछा—"अच्छा दादू—भले घर की लडकियाँ डास करती है ?"

श्रीनाथ नन्दा के इस प्रश्न को पहले समझे नही, और जब समझ सके तब जरा-सी दु.ख भरी हँसी हँसकर कहा—"आए दिन की सभ्यता की सभ्य स्त्रियाँ ही तो होती है—जो बालडान्स आदि मे भाग लेना गौरव समझती हैं। ऐसा सुना है लक्ष्मी। यानी उच्छृखलता ही है सभ्यरुचि की परिचायक।"

सन्ध्या की धूमिल छाया मे श्रीनाथ की कार आकर उद्यान-वाटिका मे रुकी। कार पर बैठी-बैठी सुनन्दा ने पियानो के साथ नारी-कठ का गान सुना और सुना पुरुष कठ के विकृत स्वर की वाहवाह की आवाज।

वृक्षो से घिरा सुन्दर छोटा बँगला, बँगले के चहुँ ओर दालान, मध्य मे बृहत कमरा। कमरे की खुली हुई खिडकियो से विद्युत प्रकाश उद्यान के कुछ अशो को आलोकित कर रहा था।

नन्दा कार से उतरी और वृक्ष की आड मे खिडकी से झाक कर देखने लगी। हाल के अन्दर का दृश्य देखकर विस्मय, घृणा से अन्त करण सिहर उठा। मनीश तथा उसके मित्रगण मदिरा के नशे मे झूमते हुए— एक-एक स्त्रियो के साथ नृत्य कर रहे थे। हाँ, बाल-डाँस चल रहा था। उसने अपने जीवन मे इस प्रकार का डॉस शायद प्रथम बार ही देखा हो।

विस्मय से नन्दा का विमूढता भरा हुआ मन और उस मन की जिज्ञासा मानो कमरे मे पहुँचकर प्रश्नो की झडी लगाने लगी— यह

नृत्य है या बीभत्स उच्छृखलता ? क्या आज के समाज की सतीत्व की कसौटी यही है ? क्या इन युवती, किशोरी और अर्द्धवयसी महिलाओ के घर के व्यक्ति एव स्वय वे सब नारियाँ इसे ही सभ्यता कहती है ? इससे उनका मन सकुचित नही होता ? वे जो अर्द्ध-नग्न-प्राय शराबीगण उन्हे बाहो मे समेटे हुए गिरते-पडते, झूमते हुए गोलाकार से घूम रहे है। और कोई-कोई तो किसी किशोरी के साथ नृत्य करता हुआ धराशायी ही हो रहा है, क्या इससे उन नारियो के मन की स्वतः स्फूर्ति, स्फूर्ति पूर्ण ही रही आती है ?

नन्दा ने अपने नोटबुक से कागज का टुकडा फाडा और उसपर केवल लिखा "सुनन्दा।" फिर कार के निकट पहुँचकर शोफर को वह टुकडा दिया। कहा—"अन्दर जाकर छोटे साहब को दो। कहना मै बाहर खडी हूँ।"

नन्दा पुन उसी स्थान पर खडी होकर देखने लगी। मदिरा पूर्ण गिलास मनीश मुँह से लगा ही रहा था कि शोफर पहुँचा। कागज का टुकडा उसके हाथ में दिया। झूमते हुए मनीश ने उसे पढा।

और विस्मय से नन्दा ने देखा, उस टुकडे ने मानो विद्युत-सा काम किया। मनीश के हाथ का गिलास जमीन पर गिर पडा। मुख विवर्ण हुआ।

ड्राइवर से पूछा—"यह टुकडा तुम्हे किसने दिया ?"

"उन्ही ने हुजूर।"

"वे अभी कहाँ हैं ?"

"कार पर बैठी हैं।"

"अरे बेवकूफ, वे बँगले पर है या अपने घर ?"

"जी सरकार, वे बाहर कार पर बैठी हुई है।"

मनीश एकदम उठ कर खडा हो गया। देवेन्द्र ने उसे रोका। झटका देकर उसे दूर फेक कर वह द्वार की ओर बढा।

मिस कमलाक्षी ने उसका हाथ पकडा—"हम लोगो को यहाँ बैठाकर आप कहाँ जा रहे है ?"

मनीश ने यो हाथ खीचा कि कमलाक्षी का मस्तक दीवाल से टकरा गया। मनीश भागता-सा कार तक पहुँचा। नन्दा तब कार मे बैठ चुकी थी। गाडी से झुककर दृढता से नन्दा ने मनीश का हाथ पकडा—"चलो।"

"तुम-तुम भाभी ?"

नन्दा कुछ नही बोली।

"क्यो, क्यो तुम इस गन्दी जगह पर आई ?"

"सवेरे कहूँगी, बस चलो।"

विरक्ति मात्र न कर मनीश कार के भीतर बैठ गया। कार चल दी।

मनीश को पलग पर सुलाकर सुनन्दा श्रीनाथ के निकट पहुँची। कहा—"उन्हे लिवा लाई हूँ दादू।"

"मनीश को ? कहाँ है मेरा मनि ?"

"जल्दी मत करो, सवेरे मिल लेना, अभी वे अपने कमरे मे सो रहे हैं। मै चली, सवेरे पहुँच जाऊँगी।"

नन्दा चलने को हुई, नौकरानी ने आकर चौधरानी के आने की सूचना दी। चौधरानी पहुँची और अपनी स्थूल देह को सोफे पर डालकर वह हाँपती हुई बोली—"बैठो सुनन्दा। नही, वहाँ नही, मेरे पास बैठो, घर जाना है ? लेकिन मुझे तुमसे भी जरूरी बाते करनी है, जरा बैठो बेटी।"

आश्चर्य से नन्दा ने चौधरानी की बाते सुनी, बेटी का सम्बोधन उसे और भी हैरान कर रहा था। वह बैठी।

बिना भूमिका बाँधे चौधरानी की बाते करने की आदत नही थी। बोली—"ससार मे कोई सुखी नही है श्रीनाथ साहब।" और उनके

जिज्ञासा पूर्ण नेत्रो के प्रति देखते हुए कहा—"अमीर देखकर लडकी की शादी की। एला भी राजी हुई। अब देखती हूँ किस दिक्कत को घर बैठे खरीद लाई। वह रवीन्द्र जैसा तो गँवार है, वैसा ही असभ्य, एला से उसकी दो मिनट भी नही बनती। जमाई है, मै उनका लिहाज़ करती थी आज तो मुझसे भी दो-दो बाते हो गई। आखिर तो आदमी हूँ। कहाँ तक सहती ?"

"ऐसा ?"

"हाँ जी, माना कि सिनेमा जौयन करके एला ने अच्छा नही किया। लेकिन चौबीसो घण्टे उसी बात को लेकर पीछे पडा रहना। आप दोनो साहब, कहिए क्या यह ठीक है ?" श्रीनाथ चुप रहे।

"ओ नन्दा, सुन बेटी, तुम्हारी बाते एला बहुत मानती है। जरा उसे समझाना कि सिनेमा छोड दे। मेरा गला सूख रहा है नन्दा।"

"अभी चाय लेकर आई मौसी।" वह चली गई। द्वार पर घण्टी टनटना उठी। नौकर रवीन्द्र का कार्ड लेकर पहुँचा।

"रवीन्द्र भला ऐसे वक्त क्यो आए ?" श्रीनाथ विस्मित हो रहे थे।

कमरे मे प्रवेश कर खडे ही खडे रवीन्द्र ने कहा—"आपके घर गया था, नौकर ने कहा कि आप दादाजी के घर पर है, तो यहाँ चला आया। यह अच्छा ही हुआ, दादाजी के सामने ही सब बाते हो जाएँ।"

फिर सास के जिज्ञासु नेत्रो के प्रति देखता हुआ बोला—"देखिए, यह मेरी आखिरी बात है। समझी न आप ? घर की स्त्री का सिनेमा मे एक्टिग करना मै किसी तरह भी सहन नही कर सकता हूँ। लोफरो का अड्डा। या तो आप अपनी लडकी को समझाइए कि घर की बहू-बेटी की तरह रहे। सिनेमा मे एक्टिग, बालडान्स, ड्रिक, यह सब मेरे घर नही चल सकता। वरना हाँ। यदि वे नही मानती है तो मै अपना रास्ता सोच चुका हूँ।"

रवीन्द्र का स्वर भारी होने लगा, कहा—"सुनिए दादाजी, मै एला

को क्या नही दे रहा था ? सन्दूक की चाबियाँ, रुपये, पैसे, मोहर से लेकर स्नेह प्रेम-प्यार सब-सब। समझे आप ? वह प्रेम—"

• रवीन्द्र की बात पूरी नही हो पाई, सुनन्दा चाय का कप हाथ मे लेकर भीतर पहुँच गई। एक की दृष्टि दूसरे पर पडी। रवीन्द्र की जिह्वा उसके मुह मे ही अटकी-सी रह गई और न जाने क्यो उस नारी के सामने अपने प्रेम की व्याख्या करने मे रवीन्द्र का मन सकोच से भर उठा।

चौधरानी ने खाजे का टुकडा मुह मे डालकर गरम चाय की चुस्की ली—"मेरी जान बची नन्दा, गरम चाय, आह! और यह खाजे ? जरूर तुम्हारे हाथ के बने है, ऐसे खस्ता बने ह कि क्या कहना।"

व्यस्तता से श्रीनाथ ने कहा—"लक्ष्मी, रवीन्द्र को चाय नही दोगी ?"

और तब भी नन्दा को एक-सी स्थिर खडी देखकर वृद्ध पुन बोला, "इन्हे खाजे नही खिलाओगी ?"

धीरे से सुनन्दा ने कहा—"आप शायद मेरे बने हुए खाजे न खाएँ।"

रवीन्द्र ने शीघ्रता से कहा—"नही। ऐसी क्या बात है! लेकिन यह भी कोई चाय का समय है ?" किन्तु जब श्रीनाथ ने पुन कहा—"चाय न सही, खाजे तो इन्हे खिलाओ।" तब सुनन्दा को जाना ही पडा। प्लेट मे दो.खाजे लेकर लौटी। तिपाई पर प्लेट और पानी का गिलास रखकर बोली—"मै वही सवेरे की आई हूँ, अब जा रही हूँ दादू।"

खाजे खाए गए अथवा बिना खाए छोड दिये, इसे देखने के लिए साक्षी स्वरूप वह वहाँ खडी रहना नही चाह रही थी।

सुनन्दा सब को नमस्कार कर कमरे से निकली। कागज पर लिखा—"मुझसे मुलाकात किए बिना घर से बाहर मत जाना।" उस टुकडे को मनीश के सिरहाने रखा, उसके बाद श्रीनाथ की कार पर घर पहुँची।

२२

स्नान कर छत पर धूप मे सुनन्दा बालो को सुखा रही थी, घने, लम्बे चँवर जैसे केश उसके मुख पर, पीठ पर लहराते। मनीश पहुँचा, उसके शव की नाई विवर्ण मुख को देखकर नन्दा सिहर उठी, कहा—"धूप मे क्यो, चले घर मे बैठे।"

उसे कमरे मे लेजाकर आराम-कुर्सी पर बैठाया, स्वय एक कुर्सी पर बैठकर कहा—"पन्द्रह-बीस दिनो मे यह कैसा चेहरा बना डाला है ?"

मनीश चुप रहा।

"कही बुखार तो भीतर ही भीतर नही हो आता है ?"

"भाभी ! तुम वहाँ क्यो गई ? क्यो, क्या जरूरत थी इसकी ? वहाँ उतरी तो नही थी भाभी ?"

मनीश के भीत मुख को देखकर सुनन्दा मन ही मन हँसी। फिर कहने लगी—"कार पर तो बैठी रही। आज तुम्हे मैंने क्यो बुलाया है, जानते हो ?"

"क्यो ?"

"कुछ बाते तुमसे तय करनी है।"

"मुझसे ? मुझ जैसे अवारा के साथ सुनन्दा को ऐसी कौन-सी बात तय करने की जरूरत पड गई ? मैं तो एक अपदार्थ हूँ।"

"अवारा हो ? अपदार्थ हो ? परन्तु उसी अपदार्थ की यदि किसी को जरूरत पड जाए तो ?"

"मेरी और जरूरत ? ऐसा कौन-सा अभागा है, जिसे मेरी जरूरत पड गई ?"

मुसकराती हुई नन्दा बोली—"एक तो मैं स्वय हूँ।"

मनीश उस सामने बैठी रहस्यमयी नारी को मुग्ध—आतुरता से कुछ देर देखता रहा, फिर गम्भीर स्वर से कहा—

"मुझे सुनन्दा भाभी की जरूरत है। मैं तैयार हूँ भाभी, आज मुझ से बडा भाग्यशाली कौन हो सकता है।"

"पहले मेरी शर्ते तो सुनो" अँगुली गणना करने लगी—"एक—शराब नही पीओगे, उस सगत को छोड दोगे। रोज दादू के साथ बैठकर भोजन करोगे। वे बेचारे तुम्हारे बिना व्याकुल हो जाते है। उनकी जिन्दगी ही अब कितनी बची है? और रोज भाभी के पास आकर हाजिरी दे जाओगे। तुम अपने को इस तरह सर्वनाश और मौत की ओर क्यो ढकेल रहे हो? और देखती हूँ मनीश बाबू कि तुम जबरन ही अपने को सर्वनाश की ओर खीचे लिए जा रहे हो। किन्तु क्यो? क्यो ऐसा करते हो? कहो? क्या मै गलत कह रही हूँ?"

"तुम ठीक समझी हो। वास्तव मे मै अपने को सर्वनाश की ओर ढकेल रहा हूँ। क्यो? तुम सुनना चाहती हो भाभी—क्यो?"

"कह जो रही हूँ—सुनना और समझना चाहती हूँ। और आज सब कुछ सुनकर ही रहूँगी। कहो?"

"सब कुछ! नही, सब कुछ सुनना न चाहो सुनन्दा, अपने मन की तलहटी मे जिस चाह को, प्रेम को केवल अपने ही लिए रख छोडा है, उसकी दर्द भरी कथा सुनना न चाहो भाभी! वह प्रेम जिसमे उच्छृ-खलता न हो, जो कि केवल श्रद्धा से भरा हो, जो कि प्रतिदान की परवाह न करता हो, उसे सुनना भी तुम क्यो चाहो भाभी?" विभ्रान्त दृष्टि से मनीश छत के ऊपर मुँह किए हुए कहने लगा—'शराव छोड़ूँ? लेकिन वही तो एक चीज दुनिया मे मेरे लिए बच रही है, जिसे पीकर अपनी व्यथा को भूल जाता हूँ। मेरी दर्द भरी कहानी? उसे सुनकर क्या करोगी? अगर दूसरा कोई वह सुनना चाहे तो शायद कह भी सकूँ। लेकिन तुम उसे न सुनना चाहो भाभी।"

तीक्ष्ण दृष्टि से सुनन्दा ने उसे देखा और देखने लगी। फिर मनीश के मुख पर आँखे गडाकर पूछा—"कहो, मै सुनूँगी?"

"सुनोगी, लेकिन क्यो ?"

"मेरी खुशी।"

"कहूँ ? नही-नही माफ करो भाभी ! केवल इतना जानकर रखो कि मेरी तरह अभागे दुनिया मे कम है जो कि जानबूझ कर भी अन्ध कूप मे गिरते चले जाएँ। उनसे बढकर अभागा कौन हो सकता है ?"

एक की पीडा ने शायद दूसरे की व्यथा को उभार दिया। सुनन्दा के मन का प्राण उपविष्ट व्यक्ति के लिए रो-सा पडा। उसके मन की कोमलता आकार विशिष्ट-सी हो उठी, कहा—"क्या तुम्हारे इस दर्द को किसी भी तरह दूर नही किया जा सकता है ? क्या दुनिया मे ऐसा कोई नही है—जो इसे हटा सके ?"

'इस दर्द को ?—एक है।"

"वह कौन है मनीश बाबू कहो। अन्तत मुझ से तो कुछ छिपाया न करो। जिसे कि तुम भाभी कहते हो, उससे पर्दा क्यो ?" कहते-कहते नन्दा उठी। मनीश की आराम-कुर्सी के हाथ पर बैठकर उसके रूखे बालो को हाथ से सहलाने लगी।—"कहो, मै अधीर हो रही हूँ मनीश बाबू, क्या सुनन्दा तुम्हारे दुःख का एक अश भी नही बाँट सकती है ? क्या तुम्हारी भाभी को इतना अधिकार भी नही है ?"

मनीश ने आँखे बन्द कर ली। स्वप्नातुर-सा, बेसुध-सा धीमे-धीमे वह लगा कहने—"एक तुम हो, जो कि सब कुछ कर-सकती हो, तुम्हारा अपमान मै कभी कर ही नही सकता। अपनी भार्या, पत्नी, सहधर्मिणी के सारे अधिकार देने के लिए मै तो बॉह बढाए खडा हूँ भाभी। लेकिन सवाल एक है—क्या नन्दा रानी उसे स्वीकार करेगी ?" उन बन्द नेत्रो से दो बूँदे आँसू ढल पडे।

नन्दा ने सुना, बिना विस्मय के बिना हिचक के, बिना सिहरन के उसने धीरता से सब कुछ सुना। और पहनी साडी के आँचल से मनीश के आँसू की बूदों को उसने यत्न से पोछा। कहा—"भाभी कही अपने

स्नेह के पात्र का अनिष्ट, अहित कर सकती है ? और सुनन्दा ? सुनन्दा की बात तो वही जाने। वह कदाचित् तुम्हारे स्नेह के दान को स्वीकार कर धन्य हो जाती। परन्तु वह नन्दा जाने कब की मर चुकी है। अब जीवित है भाभी, तो उसे भाभी ही बनी रहने दो मनीश बाबू।"

दीर्घश्वास लेकर मनीश ने कहा—"जाने दो। क्या कहा भाभी तुमने ? सुनन्दा उसे आदर से स्वीकार कर लेती ?"

हँसकर नन्दा बोली—"स्वीकार कर ही लेती, ऐसा तो मैंने नही कहा। कहती थी शायद कर लेती। कौन जाने ? और फिर सुनन्दा के मन की बात भाभी कैसे कह सकती है ? वह तो मेरा एक अनुमान मात्र था।"

तृप्त मुस्कान से मनीश बोला—"यथेष्ट, यथेष्ट, इतना भी क्या मेरे लिए कम है ?"

"ग्यारह बज रहे है। उठो, स्नान करो, मै भोजन की व्यवस्था करूँ।"

सन्ध्या होने मे तब देरी थी। मनीश सोकर उठा। सुनन्दा चाय और जलपान लेकर पहुँची।

"पाच बजे हैं भाभी, बाप रे, कितना सोया ? उठाया भी तो नही तुमने।"

"सोना तो अच्छी बात है।"—चाय और जल-पान का प्लेट रख-कर नन्दा चाय का कप लेकर बैठी।

"आज दोपहर मे मैंने इतना खाया कि सिवाय चाय के और कुछ न लूँगा। तुम्हारे हाथ का बना स्वादिष्ट भोजन खाता ही चला गया।"

"तो मै अच्छा बनाती हूँ"

"बहुत ही अच्छा।"

"ऐसा ? फिर इनाम मे क्या दोगे ?"

"जो भी चाहो ले लो।"

"वही सवेरे की बात ? अजी, ऐसी जल्दी भूल गए ?"

"भूलना कैसा ? शराब पीना छोड दूँ ? यदि भाभी का हुक्म है तो वैसा ही होगा ।"

"अब सीधे घर चले जाओ । कही मत जाना । समझे ? दादू सोच रहे होगे ।"

मनीश सन्ध्या वेला मे चला गया । सुनन्दा खुली खिडकी से बाहर देखती हुई चुपचाप बैठी थी । तब पहुँची एला की कार । नन्दा ने उसे अपने निकट बैठा लिया ।

"जीजी, तुमने बुलाया था ? ममी कह रही थी कि कोई जरूरी काम है ।"

"बैठो तो सही, क्या बिना बुलाए नही आना पडता ? बस मुँह ही से जीजी कहना है ।"

"ऐसा नही मेरी जीजी ।"

"तो कैसा ?"

"जाओ, जान बूझकर भी मुझे दुःख देती हो जीजी । नही, तुम उठो मत, मुझे चाय नही पीनी ।"

"बैठो तो सही । अभी आई ।" नन्दा उठी, स्टोव पर चाय बनाकर और एक प्लेट मे बूदी लेकर पहुँची ।

चाय पीती हुई एला बोली—"जीजी, अब मेरी जिन्दगी मे जरा भी खुशी नही रही ।"

"ऐसा ? किन्तु क्यो ?"

"एक गन्दे विचार वाले आदमी से शादी कर मैने कितनी बडी भूल की है, वह मै ही अब समझ रही हूँ । मैने और ममी ने दौलत देखी, सुख नही देखा, नही चाहा न ।"

"भूल शायद तुम ने की हो, परन्तु अब जो कुछ कर रही हो, उसे क्या कहूँ ? भूल-पर-भूल ? या भयानक भूल ।"

"भयानक भूल कर रही हूँ मै ? सो कैसे ?"

"देखो एला, आजकल का यह विवाह। हाँ वही कह रही हुँ, जब कि वर और वधू पिता के घर के वातावरण मे, अपने सस्कार मे एव वैसे ही एक समाज के रहन-सहन, रीति, व्यवहार मे अभ्यस्त हो जाते हैं। आज की लडकी और लडके की यथेष्ट अवस्था होने के बाद शादी होती है। तब उसका स्वतन्त्र अपना मत, दृष्टिकोण, रुचि एक निराले ढग की बनकर तैयार हो जाती है। कहो ठीक कह रही हूँ न ?"

"हूँ हूँ।" कहकर एला ने मस्तक हिलाया।

"परन्तु शादी करने के बाद गृहस्थ धर्म को निभाना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। नारी को माता बनना, यह तो उसका सबसे बडा गारव है। ऐसी स्थिति मे पति और पत्नी को जरूरत पडती है एक दूसरे के लिए थोडा बहुत त्याग करने की। यानी—एक दूसरे के लिए अपने-अपने दृष्टिकोण, रुचि मे कुछ परिवर्तन करना कर्त्तव्य-सा हो जाता है। और यदि हम दाम्पत्य जीवन को सुखी करना चाहे तो हमे दूसरे मत, दूसरी सभ्यता, सस्कृति मे, दूसरे सस्कार मे अपने को अभ्यस्त करना ही पड जाता है।"

"ऐसा ? बिल्कुल असम्भव है।"

"क्यो एला ?"

"सोचो तो सही, इतने दिनो का अभ्यास, सस्कार कैसे छोड सकते है ? कहना सहज है जीजी, लेकिन करना कठिन है।"

"असम्भव नही है बहन। पाकिस्तान की निर्वासित स्त्रियाँ उदाहरणों स्वरूप हमारी आँखो के सामने है, जोकि एक अभ्यास के बदले दूसरे अभ्यास मे अभ्यस्त होकर अब भी जी रही है। चिरदिन के अभ्यस्त वातावरण को, सस्कार, सस्कृति और मतवाद को खोकर दूसरो मे अभ्यस्त हो चुकी है, जी रही हैं, जिएँगी। तो असम्भव कैसे कहा जा सकता है ? आदमी सब कुछ कर सकता है, पा सकता है, केवल नही पा सकता है अपने गत

जीवन को और बिछुड़े हुए यौवन को। उस गत जीवन और यौवन के लिए रह जाती है उसके पास केवल कल्पना की मीठी स्मृतियाँ। बहन, जो दिन चरम मे पहुँचने के पहले ही चुक जाता है, वह छायालोक मे मूर्ति लेकर फिरा करता है, फिरता है कल्पना-लोक के दिगन्त मे। और उसी के सहारे आदमी जीता रहा आता है। समझी एला ? बस यही चीजे है—जो कि आदमी के हाथ के बाहर है। वरना वह यदि आन्तरिकता, दृढता के साथ करना चाहे, मेरे विचार से बहुत कुछ कर सकता है।"

"होगा भी। मुझसे तो नही होने का जीजी। सच कहती हूँ, अब उनका निकटत्व भी मुझे दुःखदायी लगता है। जिसके मन मे मेरे लिए जरा भी प्यार नही, उसका घर मै कैसे करूँ जीजी ?"

"क्या कह रही हो एला ?"

"सच कहती हूँ। मुझसे बातें करते-करते वे अनमने हो जाते हैं, लम्बे-लम्बे श्वास खीचा करते हैं। दूर से मैंने इनके हाथ मे एक फोटो भी देखा है।"

"फोटो ?"—कौतूहल से सुनन्दा ने पूछा—"किसका फोटो ?"

"शायद उनकी पहली स्त्री का हो, या तो कोई लव की स्त्री हो। एक दिन मैंने पूछा था कि उनकी पहली पत्नी क्या पाकिस्तान मे मरी हैं ? वे कैसी थी आदि। वे मुझसे ऐसे चिढे कि क्या कहूँ। कहने लगे—"उनकी चर्चा मै तुमसे नही करना चाहता।"

अनमनी नन्दा चुप रही आई।

अपनी धुन मे कह चली एला—"नही-नही, उन्हे मै किसी तरह भी नही सह सकती, बाप रे बाप, हर बात मे प्रतिबन्ध। प्रति पद मे बाधा, यहाँ मत जाओ, वहाँ मत बैठो। घर मे कैदियो की तरह बन्द होकर रहो। मैं तो हैरान हो गई।"

"फिर सहना तो तुम्ही को है एला।"

"नही सह सकती जीजी रानी।"

"तो क्या करोगी ?"

"मै अपनी जान दे दूँगी, मर जाऊँगी, ऐसे जीवन मे मुझे नही जीना।"

"हट पगली।" नन्दा ने बडे प्रेम से एला का मस्तक थपथपाया। कहा—"ऐसी बातें नही सोचते एला। अच्छी लडकी मेरी एला। और बहन सिनेमा छोड दो।"

तुरन्त एला ने कहा—"ममी ने तुमसे ऐसा कहने के लिए जरूर कहा होगा।"

"नही तो।"

"चाहे तुम अस्वीकार करो, मै समझ गई। कुछ दिन पहले ममी तुम्हारी छाया तक को छूने से घृणा करती थी, अब सहसा उन्ही सुनन्दा को देवी कहकर मानना, मुझे भेजना, मै तो उसी वक्त समझ गई थी कि कोई विशेष बात है। और सुनो जीजी, मै मरूँगी ही जीजी। ममी से भी कह देना।"

नन्दा खिल-खिलाकर हँस पडी—"कह सुनकर, गवाह साक्षी रख-कर भला कोई कभी मर सका है ? लडकपन छोड दो एला। बस।"

एला भयानक चिढी—"मुँह पर साफ-साफ कहने की आदत छोड दो जीजी, यह भयानक असभ्यता है।"

"ऐसा ? तो छोड ही दूँगी। एला रानी की आज्ञा, सच कहती हूँ छोड दूँगी।"

"सचमुच जीजी ?"

"हाँ बहन।"

"तुमसे बक-झक करते-करते गला सूख गया है। चलो जरा ताजी हवा मे घूम आएँ।"

"चलो—" एला अत्यन्त प्रसन्न थी, कहा—"पहले किसी रेस्टोरेण्ट मे आईसक्रीम, शरबत आदि खाएँ। जल्दी करो।"

वे दोनो चल दी।

२३

प्रात'काल से सुनन्दा श्रीनाथ के घर काम मे जुटी हुई थी । कल्पना को देखने के लिए वर-पक्षीय आने वाले थे । प्रातः की घडी काम-काज मे कटी । श्रीनाथ ने अपने मित्रो को भी बुला रखा था । सबके जल-पान की व्यवस्था आदि करते-करते दो प्रहर बीतने लगा ।

नन्दा बैठी पान लगा-लगाकर उन बीडो पर केवडे का जल छिडक रही थी । वह उठी, चादी का ट्रे और पानदान अलमारी खोलकर निकाल लाई । पान के बीडे पानदान मे रखकर उस पर भीगा हुआ कपडे का टुकडा ढॉका, और तब कल्पना को खोजती हुई उसके कमरे मे पहुँची ।

"ए राम ! तुम अब भी बैठी हुई हो ? उठो कल्पना, मुँह-हाथ धोकर बालो मे कघी करो । साढे चार बज चुके है, पॉच बजे सब लोग पहुँच जाएँगे ।" और कल्पना को इतने पर भी बैठी देखकर नन्दा ने उसका हाथ पकडकर उठाना चाहा ।

"इसकी क्या जरूरत है ?"

"किसकी कल्पना ?"

"इस शादी-विवाह की ?"

"जाने क्या कह रही हो कल्पना । शादी के बिना नारी का जीवन अधूरा रह जाता है । और साथी के बिना उसका जीवन कैसे कट सकता है ?"

"क्यो नही ? क्या वह अपने आप मे 'बस' नही है ?"

"यह बाते पीछे होगी, उठो तो सही ।"

अनिच्छा से कल्पना उठी, नन्दा के आदेशानुसार उसने सब कुछ किया ।

कल्पना को साथ लेकर सुनन्दा ड्राइग-रूम मे पहुँची । वह कमरा आगन्तुक अभ्यागतो से परिपूर्ण था । वर अपने मित्रो के साथ आया

था। चौधरानी अपने पति, एला और रवीन्द्र के साथ उपस्थित थी। नलिनी आदि कई स्त्री-पुरुष आए थे। मनीश सबका आदर-अभ्यर्थना करता।

कल्पना को सोफे पर बैठाकर सुनन्दा ने जल-पान का ट्रे भृत्य के हाथ से लिया और सब के सामने नमकीन तथा मिठाइयो से भरी एक-एक तश्तरी और कटे हुए फलो की एक-एक तश्तरी रखने लगी। नौकरो से पानी लाने के लिए कहा।

समूचा राजभोग मुँह मे रखकर वर ने कहा—"देखिए श्रीनाथ बाबू, अगर लडकी आपकी खूबसूरत नही थी तो यह बात पहले से कह देनी चाहिए थी। हम इतनी दिक्कत उठाकर यहाँ तक क्यो आते? मैं सुन्दर लडकी चाहता हूँ, अगर आपकी कोई खूबसूरत लडकी हो तो दिखलाइए। क्योकि मेरे विज्ञापन मे तो यह बात साफ लिखी हुई थी। और हाँ, इस जैसी लडकी के लिए तो आपको जेवर आदि के उपरान्त नगद बीस-पच्चीस हजार प्रीजर्व कर करना चाहिए। समझे श्रीनाथ बाबू?"

श्रीनाथ उस असभ्य धृष्टता के सामने वाक्हीन हो रहे। मनीश के नेत्र क्रोध से उबलने लगे। और तब सुनन्दा ने उत्तर दिया—पहले वह कल्पना से बोली—"तुम भीतर जाना।" तब वर को देखते हुए कहा—"हमारे घर लडकियो का व्यापार नही होता है महाशय, आपको कष्ट हुआ, क्षमा करे। और अब हम आपका मूल्यवान् समय नष्ट करना नही चाहते।"

वर तथा उसके मित्रगण उठकर चल दिए।

रवीन्द्र ने कहा—"कल्पना की शादी करनी है तो मुझसे क्यो न कहा? मेरे मित्र है। यदि आप कहे तो उन्हे अभी लिवा लाऊँ, लडकी दिखला दी जाए। परन्तु वे दूजवर है, उनकी पहली पत्नी छः माह हुए मरी है।"

जरा सोचकर श्रीनाथ ने कहा—"यह अच्छी बात है। लिवा लाओ।" मनीश का क्रोध तब भी शान्त न होने पाया था—"तुम भी तो दादा जी—दुनिया भर के झंझटो को घर मे समेट लाते हो, कल्पना को जाने कहाँ से उठा लाए। वरना उन असभ्यो की हमारे घर आने की जरूरत ही क्यो पडती। आज घर बैठे एक अनजान हमारा अपमान कर जाए।"

चौधरानी ने कहा—"सच, बडा असभ्य था वह। जाओ रवीन्द्र उन्हे लेकर आओ।"

रवीन्द्र उठा, और कहा—"मेरे साथ यहाँ से कोई चलता तो अच्छा था।" सब के नेत्र मनीश पर जा गिरे।

निकट बैठी नन्दा की पीठ पर हाथ रखकर मनीश ने कहा—"तुम चली जाओ न भाभी, मेरी अच्छी भाभी।"

चाहे नन्दा की पीठ पर मनीश के हाथ रखने मे कोई नवीनता न रही हो, और वह सदा ऐसा किया करता हो, चाहे यह बात दूसरो के नेत्रो मे जरा भी विशेषता नही ला सकी हो, परन्तु एक वह रवीन्द्र,—न जाने क्यो उस छोटी-सी बात, मनीश का वह क्षुद्र बर्ताव उसके हृदय की ईर्ष्या को बाहर खींच लाया, ईर्ष्या से उसका मुख नीला पड गया।

श्रीनाथ ने कहा—"मेरे घर की बहू-बेटियाँ इस तरह नही जाया करती है। तुम चले जाओ मनीश।"

"बहू, बेटियाँ ?" नलिनी मुँह फेरकर हँसी। तिरछी आँखो से रवीन्द्र ने मनीश और नन्दा को देखा। चौधरानी अपनी स्थूल देह को हिलाडुला कर उठी, दियासलाई टेबिल पर से उठाई, पुनः बैठकर सिगरेट सुलगाने लगी।

अनिच्छा से मनीश रवीन्द्र के साथ हो लिया। न जाने क्यो उसे रवीन्द्र का सान्निध्य अच्छा नही लगता था।

कुछ देर मे मित्र के साथ वे दोनो लौटे। सुनन्दा कल्पना को लाने

के लिए भीतर गई।

"कल्पना, उठो बहन।"

कल्पना ने केवल उसकी तरफ देख भर लिया। उस रिक्त, सर्वशान्त दृष्टि को देखकर नन्दा सिहर उठी—"तुम्हे क्या हो गया है ? जरा ड्राइग रूम मे चलो बहन।"

"क्यो ?"

उस मूक, निरीह स्वभाव की लडकी को प्रश्नोत्तर करते देखकर नन्दा का विस्मय बढता ही जा रहा था।

"तुम्हे देखने के लिए एक सज्जन आए है, यो तो बातचीत मे बहुत भले मानस लगते है।"

"क्या मै कोई प्रदर्शन हूँ—जो सबको अपने को दिखलाती फिरूँ, अपने को जचवाऊँ ? मै काली हूँ—कुत्सित हूँ और निर्धन हूँ, फिर भी आदमी हूँ, क्या मुझे मान-अपमान का बोध नही है ? कहो जीजी—कहो न ? क्या मै कोई बर्तन या कपडा हूँ, जो कि ग्राहक आए और मुझे देख-भाल कर पसन्द करे ? मै अपना और अपने नारीत्व का अपमान कहाँ तक कराऊँ ? मुझे माफ करो, अकेली रहने दो। साथी की जरूरत नही, मै शादी नही करूँगी—नही-नही ! उन पशुओ से मैं शादी नही करूँगी,"—कल्पना के हृदय से रोदन का झरना झर पडा, फट पडा। वह सिसक-सिसक कर रोने लगी। व्याकुल होकर वह रोती ही रह गई।

सुनन्दा उस रोदन की साक्षी स्वरूप मूर्तिवत् वहाँ बैठी हुई नारी के नारीत्व के अपमान की दाह को अपने मन के कोने मे सहेज कर शायद रखने लगी हो तो विस्मय नही।

कुछ देर मे कल्पना की सिसकियाँ बन्द हुईं। एक सन्देह से नन्दा का हृदय आलोडित हो रहा था। कहा—"कल्पना ! मै तो तेरी बडी बहन हूँ न ? मुझसे सच-सच कहेगी ? कहूँ ? क्या तू उन्हे चाहती है

मनीश बाबू को ?''

देरी देखकर श्रीनाथ ने उन दोनो को बुलाने के लिए मनीश को भेजा। दरवाजे पर पहुँचा मनीश जब कि सुनन्दा की बात समाप्त हो रही थी। अपना नाम सुनकर कौतूहल से मनीश द्वार के पर्दे के बाहर ही खडा रह गया।

"नही-नही-नही।" तीव्र स्वर से कल्पना कहने लगी—"वे मुझसे घृणा करते है और उस घृणा ने मेरी घृणा खीच ली है, जीजी! एक ऐसे आदमी को मै प्रेम करूँगी ? जो कि मुझ से घृणा करते हो। अवहेलना करे ? क्यो ? क्या मेरे मन की स्वामिनी मै नही हूँ ? यदि ऐसे को मन ने प्यार भी किया हो तो परवाह नही। यदि मृत्यु के समय पिता जी ने उनके नाम पर मुझे दे भी डाला तो हानि नही। लेकिन इतना समझ रखो जीजी, कि किसी भी दिन ऐसे आदमी को तुम्हारी कल्पना पति कहकर स्वीकार नही कर सकेगी। मै आदमी हूँ, मेरा भी मान-सम्मान है।" एक श्वास मे इतनी ढेर-सी बाते कर कल्पना जोर-जोर से श्वास लेने लगी।

और सुनन्दा उस विनीत, नम्र लडकी की उग्रता देखकर स्तब्ध हो रही। देर तक बात नही कर सकी। बाहर दाँतो तले ओठ दबाकर मनीश खडा रहा।

"मै भी एक नारी हूँ कल्पना!" नन्दा धीरे कहने लगी—"मेरा यह मन, मन की कोमलता पुरुष के अत्याचार से आज क्षत-विक्षत हो चुकी है। यदि सम्भव होता तो तुझे हृदय के टुकडे-टुकडे कर दिखा देती, वहाँ पर किस झटिका को दबाकर रखा है। हाँ, वहाँ रक्त लेखनी से लिखित नारी के वेदना के इतिहास को तू पढती और समझती कि यह दर्द कैसा है ? किन्तु तो भी आज मुझे कहना पड रहा है—नर नारी के लिए विवाह विशेष प्रयोजनीय है। तू पूछ रही है क्यो ? इसके अनेक कारण हैं। इसके अनेक कारणो मे प्रधान

एक यह है—हमारी जनता, समाज आज भी ऐसा उदार नही हुआ। यह जनता ऐसी शिक्षित, सभ्य नही हुई है कि ससार मे युवती नारी अकेली रह सके। दूसरी बात प्रकृति का नियम, जब कि आदमी का यौवन जाग उठता है, तब हमारे शरीर की ग्रन्थियाँ उत्तेजित होती हैं और वही समय है जब कि नर को नारी की और नारी को नर की जरूरत पडती है। अपने को शेष-निःशेष कर ढाल देने के लिए प्रयोजन होता है एक आधार का। यो तो विवाह द्वारा स्त्री-पुरुष के समाज की बन्धनी मे बन्धन भी महत कारण है,—जिससे कि उसकी सन्तति एक व्यवस्थित धारा मे चल सकती है। इन सब बातो को छोड दो। किन्तु आज भी हमारा देश ऐसा उन्नत नही है कि युवती या किशोरी निर्भय होकर अकेली जिन्दगी बिता सके। विशेषत अपढ नारी की जीविका निर्वाह का प्रश्न तो पहले उठता है।"

"क्षमा करो जीजी, मैंने सब कुछ सोच लिया है और मेरा अन्तिम निर्णय यह है कि शादी नही करूँगी। कभी नही करूँगी, ऐसा नही कह सकती हूँ, यदि कोई कभी सम्मान के साथ मुझे पत्नी का पद देगा तो उसे शायद श्रद्धा से स्वीकार कर सकूँ।" जरा ठहर कर पुन. कहने लगी कल्पना—"मुझे यहा से ले चलो जीजी, यहाँ के वातावरण मे अपमान, परिहास भरा हुआ है। तुम नही जानती, यह वातावरण प्रतिदिन किस तरह मेरी आयु चूस-चूसकर जीवित रहने के दिनो को कम करता चला जा रहा है। अपने पास मुझे ले चलो। पेड़-पत्तियो की सेवा किया करूँगी।"

"तरकारी के बगीचे को देखूँगी। गेदो का हार बनाकर बेचूँगी। बड के पत्तो से दोने, पत्तरी बनाऊँगी, गरीब की लडकी हूँ। माँ के मरने के बाद आप ही के साथ गाँव मे थी, वहाँ मूज के सीको से टोकनी, पखे, दरवाजे के परदे आदि बनाकर बेचा करूँ। मैं दिनभर बनाया करती थी, लाल-पीले धागे से उनपर फूल-पत्ती बनाऊँ और

हाट-बार के दिन पुराने कपडे की गुडिया, पखे आदि सब बिक जाते। चिकनी मिट्टी की चिडियाँ, गुड्डी और जाने क्या-क्या बनाया किये। यह सब मैं तुम्हारे घर रहकर बनाया करूँगी, और दिन मे एक बार खा लूँगी, तुम्हारे लिए भोजन बनाऊँगी, गाय की सेवा करूँगी। सब कर लूँगी जीजी, क्या एक स्त्री इन सब से पेट नही भर सकती है? मुझे यहाँ से ले चलो।"

सुनन्दा—जो कि आश्चर्य किन्तु श्रद्धा से उस लडकी की बाते सुन रही थी, वह ऐसी अनमनी हुई कि देर तक उत्तर न दे सकी।"

"मुझे आज ले चलोगी न ?"

"हूँ"—नन्दा बस 'हूँ' ही कह सकी।

नन्दा कमरे के द्वार पर पहुँची। मनीश वैसा ही खडा था। वह वहाँ से हट न सका। क्यो ? इस रहस्य का भेद तो वही कह सकता है। जिस कल्पना को घृणा, अवहेलना से धूल की भाँति वह दूर फेकता जा रहा था उसी कल्पना के मुख से अपने प्रति अश्रद्धा की बात सुनकर वह न जाने क्यो उसी दरवाजे पर चुम्बक की भाँति चिपका रह गया। परन्तु क्यो ? इस पहेली का भेद नही खुल पाया। चाहे उसका यहाँ रहना थोडी देर के लिए ही क्यो न हो, परन्तु मनीश अपनी उसी घृणास्पद के द्वार पर, उसके मुख से अवहेलना की कथा सुनने के बाद भी खडा रहा था, इतना तो सत्य है ही।

नन्दा धीर गति से बाहर आई। ड्राइग-रूम मे पहुँची धीरे कहा—"कल्पना अकस्मात् बीमार हो गई है, अगले हफ्ते तक यदि वह अच्छी हो जाए तो आपको खबर दूँगी।" सहज स्वर से रवीन्द्र को लक्ष्य कर वह बोली।

"ऐसा ! क्या डाक्टर बुलवा लिया जाए ?" रवीन्द्र ने कहा।

"अभी तो जरूरत नही जान पडती।"

और इस सहजता से रवीन्द्र के साथ बर्ताव कर सकने से नन्दा का

भारी श्वास हल्केपन मे भर उठा।

सब लोग जा चुके थे। कमरे मे केवल श्रीनाथ और नन्दा रह गए थे।

"कल्पना को क्या हो गया लक्ष्मी ?"

"कुछ नही।"

"याने !" श्रीनाथ विस्मय से अवाक् था।

"कल्पना शादी नही करेगी।"

"शादी नही करेगी ? क्या कोई मजाक है ? हिन्दू घर की लडकियाँ अवारा हुई घूमेगी ? उसके पिता उसे मुझे सौंपकर मरे, दुनियाँ मुझे क्या कहेगी ? और फिर उस कुवारी लडकी को मैं घर मे कैसे रख सकता हूँ ?"

शान्त प्रकृति के श्रीनाथ उत्तेजना के साथ चिल्लाकर ही कह रहे थे। मनीश भागा हुआ पहुँचा।

नन्दा कह रही थी—"जब कि स्वय लडकी ही शादी नही करना चाहती, तब हम क्या कर सकते हैं ? किसी की स्वाधीन इच्छा पर हाथ उठाने का हमे अधिकार भी तो नही है। कल्पना छोटी नही है। अपनी भलाई-बुराई समझ सकती है। वह मेरे पास रहना चाहती है।"

श्रीनाथ देर तक सोचते रहे। सच तो है, स्वय अपने पौत्र मनीश की शादी क्या वे आज तक उसके मत के विरुद्ध कर सके हैं ?

"फिर तुमने रवीन्द्र से क्यो कहा कि कल्पना बीमार है ?"

"शायद पीछे वह शादी करने मे राजी हो जाए। अभी तो नहीं मानी, कुछ दिनो के बाद मान भी तो सकती है न दादू।"

"उसे अपने पास ले जाकर रखो, समझाती रहना।"

सुनन्दा कल्पना को ढूँढती फिरने लगी, परन्तु क्षण एक बाद देखा कि वह स्वय ही अपने छोटे-से सूटकेस के साथ कार पर बैठी हुई है।

"अरे, तुमने कितनी देर लगा दी जीजी, कार पर बैठे-बैठे मुझे नीद

तक आ गई।"

"तुम्ही को ढूँढती फिर रही थी। तो तुम सो भी ली ? क्यो, कैसा सपना देखा ?" नन्दा मुस्करा रही थी।

"मैने ! हूँ, तुम्हे क्यो बतलाऊँ।"

"कह डालो।"

"मैंने ? मैने देखा अपने भविष्य के सुख का एक चित्र।"

"सो क्या ?"

"मै बैठी गजरे बना रही हूँ। गुडिया और जाने क्या-क्या—और फिर शान्ति के दिन जीजी के साथ बीत रहे है।"

सुनन्दा स्नेह से उसकी पीठ सहलाने लगी। कार आगे बढी।

२४

बुझता हुए दिवा प्रकाश। सुनन्दा आँगन मे बैठी मिट्टी के दियो मे रूई के पलीते रख रही थी। और कल्पना उनमे तिल्ली का तेल ढालती जाती।

"क्यो जीजी ? तुम कहती थी, आज ही के दिन हिन्दुस्तान स्वाधीन हुआ था।"

"हाँ, तू एक बात को दस वक्त क्यो पूछती है ?"

लजाकर कल्पना ने कहा—"मेरी समझ मे अब तक बात ठीक-ठीक आई नही। भला भारत की स्वाधीनता से इन दीपो का क्या मतलब ?"

"तेरा सिर। अरी बहन, ऐसे एक शुभ दिन का हम अभिनन्दन न करे ? उसकी वर्षगाँठ न मनाएँ ? दीपो के हार से उसका स्वागत न करे ? उसकी आरती न उतारे ? मुद्दतो की गुलामी के बाद हिन्दुस्तान

स्वाधीन हुआ है। हजारो देशवासियों ने अपने को बलि-वेदी पर चढा दिया, तब कही यह स्वाधीनता मिल सकी। इस चिरस्मरणीय दिन को हम दीपों का हार पहनाकर स्वागत किया करते है। कल्पना, तो न करे ?"

"नही ?"

"नही ? तू कह रही है नही ?"—अद्भुत विस्मय से सुनन्दा ने कहा।

"नही, जिस स्वाधीनता ने भारतवर्ष के टुकडे किए, ऐसी स्वाधीनता की जरूरत क्या थी ? जिस स्वाधीनता का दण्ड पाकिस्तान के रहने वालो ने भुगता, भुगत रहे है, क्या जरूरत थी ऐसी स्वाधीनता की और उसके स्वागत की ? मै तो स्वय कुछ जानती नही, किन्तु पाकिस्तान के उस कुत्सित अत्याचार की कहानी तुम्हारे मुँह से सुन चुकी हूँ। बापरे ! आज भी उस बात की याद से मेरे रोएँ खडे हो जाते है। नही जीजी, इन दीपो की कोई जरूरत नहीं, इस खुशी का कोई मोल नही। हटाओ, फेको, इन दीपो को।"

सुनन्दा ने दुखभरी हँसी हँसी—"ठीक है कल्पना, किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण मे एक अव्यवस्था, खून-खराबी हुआ ही करती है बहन। देश की स्वाधीनता महँगे मोल मिला करती है बहन। हिन्दुस्तान के वे टुकडे फिर भी जुडकर एक नही हो सकते है, ऐसा किसने कहा ? भविष्य मे क्या होने वाला है, यह कौन कह सकता है ? तो फिर हम भारत की स्वाधीन सन्तान उसकी वन्दना क्यो न करे ? और फिर उस अत्याचार के लिए हम उस स्वाधीनता को दोषी भी तो नही ठहरा सकते है न।"

"क्यो ?"

"कहा न, कि किसी भी राष्ट्र के नवनिर्माण के समय विश्रृखलता उपस्थित होना स्वाभाविक है। उस नवनिर्माण के दिन हिन्दुस्तान के टुकडे होना अस्वाभाविक नही है। परन्तु हठात् पाकिस्तान बन जाने से

वहाँ के आदिवासियो पर जो विपत्ति आई, उनपर सहसा जो अत्याचार हुए, यद्यपि वे रक्त-लेखनी द्वारा ससार के इतिहास मे लिखे रहे किन्तु उस पशुतुल्य अत्याचार ने सारे ससार को चकित कर दिया है, यह बात सही है। उस बीभत्स अत्याचार की भावना, कल्पना इससे पहले मनुष्य शायद ही कर पाए हो। इन सब बातो के सच होते हुए भी हमे सोचना पडता है कि वह था राष्ट्रनिर्माण का दिन। यदि हम न्याय चाहते हैं तो किसी एक राष्ट्र विशेष नही वरन हमारी वह माँग, अभियोग और अभिसम्वाद है अपने ही समाज से।"

कल्पना की आँखे विस्मय से मानो बाहर निकली आ रही हो, पूछा—"क्यो ?"

"क्यो ? इसका छोटा-सा उत्तर भी मैं दे रही हूँ। तुम स्वयं मुझे देख रही हो न ? किस तरह घर और बाहर सबने अस्पृश्य की भाँति मुझे दूर हटा रखा है। यदि मैं पूछूँ कि मेरा अपराध क्या है ? तो वे क्या उत्तर देंगे ? वे कहेगे—तुम असती हो। मेरा उत्तर रहेगा कि मैं असती कब हुई और कैसे ? नही, वरना उससे पूछूँगी असती का अर्थ क्या है ?"

द्वार पर मोटर का हार्न बज उठा, नन्दा ने अन्तिम पलीता दीप पर रखा, हाथ धोए तब दरवाजे पर पहुँची। चौधरी साहब की कार थी, ड्राइवर ने कहा—"मेम साहब ने जरूरी काम से आपको अभी बुलाया है।"

"ठहरो कहकर नन्दा भीतर आई, थाली पर दीपो को रखा, फिर कल्पना और वह दीपो को जला-जलाकर द्वार पर शृंखलता के साथ रखने लगी। काली के चित्र के सामने धूप-दीप जलाया। फूल-बेलपत्रादि चढाकर मिष्टान्नपूर्ण थालियाँ देवी के चित्र के सामने रखी। आसन पर बैठकर नन्दा सध्या-वन्दना करती रही। बाहर पुन: हार्न बजा।

पूजा शेष कर सुनन्दा ने पडोस के बच्चो को बुलाकर एक-एक पेडा और सन्देश बाँटा। तब कही जाकर गाडी पर बैठी।

चौधरानी अविन्यस्त केश-वेश से अपने उद्यान के लौह बेच पर बैठी थी।

नन्दा का हाथ पकड कर अपने निकट आदर से बैठाया।—"बेटी, मै लुट गई, एला ने मुझे मुँह दिखलाने लायक भी न रखा।"

चौधरानी के मुख से बेटी शब्द सुनकर उस एक दिन की भाँति आज भी नन्दा चौंकी। फिर अपने को सयत कर पूछा—"क्यो, एला ने क्या किया ?"

"दो दिनो से वह गायब है, जमाई का कहना है वह विक्टर के साथ भाग गई है।"

बीच मे नन्दा ने टोका—"यह विक्टर कौन महाशय हैं ?"

"अजी, वही सिनेमा का एक्टर। वह एक प्रसिद्ध अभिनेता है, क्यो तुमने नाम नही सुना ? रवीन्द्र का कहना है—अगर एला लौट भी आए तो अब वे अपने घर पर उसे जगह नही दे सकते हैं। याने एला को त्याग दिया।"

भ्रुकुटी तानकर नन्दा बोली—"विक्टर के साथ वह गई है। एक मित्र के साथ जाने मे पाप कैसे हो सकता है ? कह सकती हो मौसी ? विक्टर से उसकी मित्रता होगी। क्या ऐसा नही हो सकता है ? स्त्री और पुरुष की मित्रता क्या कोई बुरी चीज है ?"

चौधरानी एकदम नन्दा से लिपट गई, सब कुछ की छुआछूत जाती रही, बोली—"बेटी ! तुम जैसी बुद्धिमती लडकी मैने तो अब तक नहीं देखी। इसी से न अपने ऐसे सकट के समय मेरी आत्मा तुम्हे ही पुकारने लगी। ऐसा कोई मेरा अपना नही है—जो कि इस समय परामर्श दे।"

"चौधरी साहब क्या कहते हैं ?"

"अजी उनकी बात निराली है। मुझे तो ताने दे-दे कर छेदे डाल

रहे है। मैंने ही लडकी को लिखा-पढाकर बिगाडा है, इत्यादि। उनका कहना है, जानती हो नन्दा ? ऐसा बाप तुमने देखा है—जो कि घर से जो लडकी एक बार निकल गई उसे घर मे नहीं रखा जा सकता है ?"

नन्दा स्तब्ध रही आई।

"नन्दा बेटी, अब ?"

"वह खराब काम ही करने को गई है, इसका भी प्रमाण है मौसी ?"

रवीन्द्र तो कहता है कि वह उन दोनो के प्रेम का प्रमाण भी दे सकता है। कुछ दिनों से एला विक्टर के साथ रहा करती थी। ऐसा रवीन्द्र का कहना है।"

"यह सब कल्पित बाते है। तुमने कम्पनी मे जाकर एला का कुछ पता भी लगाया था मौसी ! कौन कौन अभिनेता, अभिनेत्री उपस्थित है, पूछा था ? एला ने मुझसे कहा था, किसी चित्र का शूटिंग चल रहा है। कम्पनी मे तुरन्त पता लग जाएगा कि बात क्या है ? गई थी तुम ?"

"अब क्या कहूँ। कल गई, लेकिन बाहर से लौटना पडा।"

"क्यो ?"

"बहुत-सी कारे वहाँ खडी थी। काफी लोग वहाँ थे। न जाने क्या मुझे संकोच लगने लगा। फौरन लौट पडी।"

जरा सोचकर नन्दा ने कहा—"मेरे विचार से इसी वक्त तुम्हे वहाँ जाना चाहिए—और यदि पता लग जाता है तो रात की गाडी से तुम्हे उस शहर मे जाना चाहिए—जहाँ इनके जाने की सम्भावना हो। सोचती हूँ—एला बाम्बे मे मिल जाएगी। किसी और सिनेमा कम्पनी मे गई होगी, ऐसा हो सकता है। अभी कुछ नही बिगड़ा मौसी, उसे जल्दी ले आना चाहिए।"

"मेरी बेटी !"——नन्दा का हाथ पकडकर अत्यन्त अनुनय से चौध-रानी कहने लगी —"तुम्हे मेरे साथ कम्पनी मे चलना पडेगा । नाही मत करो नन्दा ।"

नन्दा उस बात को टाल न सकी । दोनो कार पर कम्पनी पहुँची और जिज्ञासा—वाद कर नन्दा ने निश्चय कर लिया, हाँ एला बाम्बे गई हुई है ।

वरन मैनेजर ने कहा कि—"शूटिंग के समय विक्टर और एला के चले जाने से भयानक हानि पहुँच रही है । और कन्ट्राक्ट भग करना कोई छोटी बात नही है ।"

सुनन्दा ने बात को टाल दिया——"वे विशेष काम से गए है, जल्दी लौटेगे ।" आदि ।

चौधरानी जरा सुस्थिर-सी होगई, वापस, निकलते-निकलते नन्दा ने कहा——"आज रात की गाडी से बाम्बे जाओ मौसी । और बहुत जल्दी उसे लेकर लौटो ।"

कम्पनी से बाहर निकलते ही नन्दा की दृष्टि रवीन्द्र पर पडी, वह वृक्ष के नीचे खडा किसी अभिनेता से बाते कर रहा था । धीरे से चौधरानी ने कहा–"रवीन्द्र भी खडा है, एला के बारे मे कुछ पूछ-ताछ कर रहा होगा । उसने दृढता से कहा है कि उन दोनो मे प्रेम है—इसका प्रमाण वह देगा ।"

"हूँ" ।——कहकर नन्दा आगे बढी । वे दोनो रवीन्द्र की दृष्टि बचा कर निकल जाना चाह रही थी । नन्दा सामने को देखती हुई आगे बढी और रास्ते पर खडे तागे को भी बुला लिया । वैसे ही समय जल्दी-जल्दी चलकर रवीन्द्र उनके निकट पहुँचा ।

"ताँगे पर क्यो ?" सास से रवीन्द्र ने पूछा ।

"चौधरी साहब को बाहर जाना था, इससे कार वापस कर दी है।"

"ताँगे को वापस कर दीजिए, मेरी कार पर बैठिए।"

चौधरानी और नन्दा ने एक दूसरे का मुँह देखा।

चौधरानी बोली—"क्या जरूरत है। दस मिनट मे तो ताँगा घर पहुँचा देगा।"

"नही जी, ऐसा नहीं, चलिए।"

चलते-चलते रवीन्द्र ने पूछा—"आप क्यो आई थी?" और तुरत अपने प्रश्न का मानो उसने स्वय ही उत्तर दे दिया—

"अच्छा, एला की जगह आप इन्हें भर्ती कराने के लिए आई हो।"

चौधरानी चुप रही, कदाचित् जमाई के प्रति बढते हुए क्रोध को दबा रही हों।

"आप को कहाँ उतरना है?"—यह जिज्ञासा थी सुनन्दा के लिए। इस बात को नन्दा अवश्य समझी, किंतु फिर भी जाने क्यो चुप रह गई। उत्तर दिया चौधरानी ने—"नन्दा का घर तुमने नही देखा? जरा दूर है, पहले मुझे उतार दो, मुझे जरा जल्दी है।"

रवीन्द्र द्विविधा मे पड गया, इस बात को चौधरानी शायद न समझी हो, किंतु नन्दा समझी, अधकार मे चौधरानी नन्दा का मुख नही देख पाई।

अकम्पित स्वर से नन्दा ने कहा—"मेरे लिए आप दिक्कत न उठाइए गुप्ता जी, वे सामने बहुत से रिक्शा खडे हैं, आप जरा गाडी रोक दीजिए, रिक्शे पर मैं अनायास चली जाऊँगी।"

प्रबल आपत्ति करती हुई चौधरानी अपने फाटक पर उतरी,—"नही—नही, एक तो रात, उस पर अकेली रिक्शा पर कैसे जाओगी बेटी। मोटर मे जरा-सी देर मे घर पहुँच जाओगी। और रवीन्द्र तुम्हें रिक्शे पर जाने ही क्यो देगे।"

क्षीण स्वर से रवीन्द्र ने कहा—"जरूर, आप मुझे रास्ता बतलाती चले।"

अपने दरवाजे पर पहुँचकर नदा ने जंजीर खटखटाई, दौडकर कल्पना ने द्वार खोला। किसी ओर देखे बिना ही वह नंदा से लिपट गई—"आज तुमने बडी देर लगा दी जीजी, अकेले घर मे मुझे ऐसा डर लग रहा था। कभी ऐसा—" कहते-कहते उसकी दृष्टि कार पर उपविष्ट रवीन्द्र पर पडी। दाँतो तले जीभ दबाकर बोली—"आप हैं? आइए न दो मिनट के लिए रवी बाबू।"

कल्पना को नन्दा के घर देखकर, विशेषत उसकी बातचीत सुनकर रवीन्द्र ऐसा भी आश्चर्य मिश्रित कौतूहल मे पड गया था कि बिना कुछ सोच-विचार के उतर पडा। और उन दोनो के पीछे अदर पहुँचा।

चहुँ ओर के दीप जल-जलकर निर्वाण की ओर जा रहे थे। यद्यपि कल्पना ने जीजी के लौटने की वेला तक उनमे तेल ढाल-ढालकर जलता रखने की चेष्टा की थी, फिर भी दीपो की माला तब तक मुरझा चुकी थी।

आँगन के तुलसी-मंच को घेरकर दीप जल रहे थे, गेदा के फूल तुलसी की डालो मे अटके सो से रहे थे। दालान मे टगी हुई काली की बृहत् मूर्ति के सामने धूप-दीप, पुष्प आदि वैसे ही रखे हुए थे। धूप की अग्नि निर्वापित थी, उस पात्र मे पडी हुई थी—मुट्ठी भर राख मात्र। चित्र के गले मे गेदे और चम्पा का मोटा गजरा लटक रहा था, मिष्टान्न पूर्ण थाल वैसे ही थे। रवीन्द्र ने चहुँ ओर मनोयोग से देखा, उसे लगा जैसे किसी योगिनी की साधना कुटीर मे वह पहुँच गया हो।

मोढा जरा सामने खीचकर कल्पना ने कहा—बैठिए न।"

रवीन्द्र बैठा, सहमकर बोला—"आप यहाँ कैसे आई?"

"यह तो मेरी जीजी है न। मै यहाँ रहने लगी हूँ और रहूँगी भी।"

रवीन्द्र पुन सब तरफ आँखे गडाकर देखने लगा।

नन्दा कमरे के अन्दर उजेला कर कुछ करने लग गई।

रवीन्द्र ने कहा—"अभी आप कह रही थी—अकेले घर मे डर

लगता है, लेकिन जब आप की जीजी सिनेमा मे एक्टिग करने जाया करेगी, तब आप क्या करेगी, कहिए तो ?"

कमरे से बाहर निकलते हुए नन्दा ने बात सुनी और चुपचाप वह प्लेटो मे फल, मिठाइयाँ रखने लगी।

"रवीन्द्र बाबू कह रहे है तुम सिनेमा मे अभिनय करोगी ?"

"सच ? अरे सचमुच जीजी ? ओ जीजी, जवाब क्यो नही देती ?" अति व्यथातुर, आतकित वह स्वर।

"हाँ जी, क्या मै झूठ कह रहा हूँ ? पूछो न उनसे, आज शायद वे भर्ती भी हो गई है।"

"असम्भव ! वे सिनेमा देखना पसन्द नही करती, यो—एक्टिग करना तो दूर रहा।"

"पूछ क्यो नही लेती ? रात हो रही है, अच्छा तो ."

रवीन्द्र उठा। सुनन्दा, छोटे से टेबिल पर मिष्टान्नपूर्ण प्लेट रखने लगी।

अधीरता से कल्पना ने पूछा—"जीजी, तुम सिनेमा मे भर्ती हुई हो ? एक्टिग करोगी ?"

सुनन्दा ने स्वाभाविक स्वर से उत्तर दिया—"सिनेमा ? किन्तु वहाँ जाने के लिए अब तक तो मैने नही सोचा था, हाँ, यदि जबरन वहाँ भेजी जाऊँ तो दूसरी बात है।"

रवीन्द्र को लगा, जैसे गिरती हुई बिजली कडक कर कही समा रही। अपने अदम्य विस्मय को वह दबा भी नही पाया, कह उठा—"फिर सिनेमा कम्पनी मे आप ! शायद और बात रही हो, वहाँ जाने का कोई दूसरा कारण हो।"

"जी।"—सुनन्दा के उस गभीरता पूर्ण छोटे से उत्तर के निकट रवीन्द्र की जिज्ञासा मर मिटी।

"थोडा प्रसाद लीजिए।"

"प्रसाद ? अच्छा ।" उस नीरवता मे रवीन्द्र ने मिठाइयाँ खाईं, जलपान किया और मौनता से दोनो हाथ उठाकर छोटा-सा नमस्कार किया और वह चल पडा ।

सुनन्दा जो द्वार बन्द करने गई थी, दरवाजे का पल्ला पकडकर वही अकडी खडी रही । उसके नेत्र दूर, बहुदूर आबद्ध हो गये । कार बहुत पहले दृष्टि से बहिर्भूत हो चुकी थी, कार का आरोही कबका अन्तर्धान हो रहा था, किन्तु नन्दा की आँखे ? वह शून्य, सर्वशान्त, रिक्त, तिक्त दृष्टि तब भी, उसी सूने पथ पर पडी मानो महाशून्यता को पलको मे भर-भरकर एकत्र करने मे लगी हुई थी ।

शायद सुनन्दा का अतीत, वर्तमान मे मोटर की उडती हुई धूल में पडा माथा पीट रहा हो, या तो कदाचित् उसका भविष्य उस सूने पथ की उडती हुई धूल की शून्यता को अपने सूनेपन मे मिला रहा हो ।

"अरी जीजी, घण्टो से तुम यहाँ खडी हो !" और पथ के पोस्ट लाइट के प्रकाश मे सुनन्दा के मुख के प्रति निहारकर कल्पना पाषाणवत् अचल हो रही । नन्दा को वह जानती-पहचानती थी, किन्तु जीजी के उस मुख से, उस दृष्टि से कल्पना का परिचय वह प्रथम बार ही हो रहा था न ।

२५

सुनन्दा गृहकार्य शेषकर श्रीनाथ के घर जाने के लिए तैयार होकर बैठी । बहुत दिनो से नही जा सकी थी, नौकर पर नौकर पहुच रहे थे, तो आज उसने जल्दी-जल्दी सब काम निबटा लिया, कल्पना को भी शीघ्र लौटने का वचन दे दिया था । दालान मे बैठी-बैठी बडे से फ्रेम

मे आबद्ध एक गलीचा बुन रही थी। कल्पना रगीन धागो को काट-काटकर छोटे-छोटे टुकडे बनाकर उसके हाथ मे दे रही थी।

"नमस्कार सुनन्दा देवी।"—उस हल्की-सी आवाज को सुनकर सुनन्दा ने मस्तक उठाया। नलिनी को बहुत दिनो के बाद अपने घर आते देखकर उसे अचम्भा हो रहा था। अपने विस्मय को दबाकर नन्दा ने उसे बैठाने के लिए इधर-उधर देखा। कल्पना पाँच मिनट पहले दूध उतारने के लिए चली गई थी, नन्दा उठी, कमरे से आसन लाकर बिछाया,—कहा "बैठिए नलिनी देवी। अच्छी तो हो न ?"

"हाँ ! क्या करूँ, वक्त ही नहीं मिलता कि आकर जरा बैठूँ। क्लब तो है ही, उसपर यहाँ-वहाँ डिनर, पार्टी लगी ही रहती हैं, ऊपर नित चन्दे की माँग। कही ड्रामा का टिकट बेचो, कही कुछ का। और बहन, बस इन लोगो ने एक मुझे ही पहचान रक्खा है। मैं तो काम करते-करते मरी जा रही हूँ।"

"आप बाहर का काम किया करती है न, इसी से लोग आपके पास दौडते भी है।"

"ठीक कह रही है आप। क्योकि कभी-कभी तो ऐसा होता है कि अपने क्लब की भी देखभाल नही कर सकती।"

"आप कौन से क्लब के बारे मे कह रही है ? अच्छा याद आ गया। फैन्सी-सा कुछ नाम तो है। कैसा चल रहा है क्लब ?"

"बहुत अच्छी तरह। इतने मेम्बर हो गए हैं कि हाल मे समाते नहीं, मिस्टर और मिसेज चौधरी, मि० गुप्ता, मनी बाबू, इन सबको मेम्बर बना चुकी हूँ। मनीन्द्र बाबू तो कभी आते ही नही, लेकिन चन्दा दे देते है। अरे बहन सुना है ?"

और नन्दा की प्रश्न भरी आँखो के प्रति देखती हुई—भौहे ललाट पर चढाकर, नासिका सिकोडकर नलिनी कहने लगी—"एला विक्टर के साथ भाग गई है। देखने मे ऐसे सुन्दर और धनवान् मि०

गुप्ता उसे पसन्द नही आए। लिखी-पढी लडकियो का टेस्ट ऐसा ही हुआ करता है। कहाँ वह लुच्चा, आवारा विक्टर और कहाँ मिस्टर गुप्ता ! यो देखने मे विक्टर अच्छा तो नही है। न जाने एला क्या देखकर उसपर मोहित हुई ! मि० गुप्ता ने तो साफ-साफ कह दिया है कि ऐसी बदचलन स्त्री को वे पत्नी कहकर नही मान सकते। बिल्कुल साफ कह दिया है।"--जरा दम लेकर पुन नलिनी ने कहा--"और दूसरी बात तो आप जानती ही होगी।"—नन्दा के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह कहने लगी—"दादा जी ने कल्पना को घर से निकाल दिया है। लेकिन क्यो निकाला इसे आप अच्छी तरह बता सकेगी। बात तो कुछ-कुछ मै भी समझ रही हूँ।"—कहकर नलिनी रहस्य-पूर्ण हँमी हँसने लगी।

सुनन्दा चुप हो गई--एकदम चुप। एक नारी का दूसरी उसी की भाँति नारी के नारीत्व को नग्न कर, कुत्सित कर बतलाने की चेष्टा, उसे ऐसा भी अशोभन लगा, अस्वाभाविक लगा कि वह बात तक न कर सकी। इस बात को लेकर नलिनी के साथ वाद-प्रतिवाद करते उसकी आत्मा सकुचित हुई। प्रवृत्ति ही नही हुई कि वह प्रतिवाद करे। नन्दा के शरीर की नसे विरक्ति, विराग से तन-सी रही। उसका अपना नारीत्व मानो अपमान की ज्वाला से जलने लगा। वह नलिनी की तरफ से मुँह फेर कर दूसरी ओर देखने लगी, केवल देखती ही रही आई।

"अच्छा, तो आपने कुछ नही सुना ? शहर भर मे इस बात की चर्चा है और आप नही जानती ?"

"कल्पना एक गिलास पानी दे जा बहन।"--तृष्णा से नन्दा का गला सूख रहा था।

पानी का गिलास लिए कल्पना पहुँची, विस्मय, पराजय से नलिनी उसे देखने लगी। लगा उसे--उसकी इतनी बडी हार विशेषत नन्दा के

निकट वह प्रथम बार ही हो रही है। नलिनी को प्रतीत हुआ, सुनन्दा ने मुँह से कुछ न कह कर भी उस कल्पना को पुकार कर सब कुछ कह दिया है।

अपमान की वेदना ने क्रोध को खींच लिया। तीव्र स्वर से कहा नलिनी ने, "ओह ! आप तो मुझसे भी ज्यादा जाने हुई बैठी हैं।"

"मैं ? नहीं तो।"

"क्यों नहीं, जबकि कल्पना आपके घर है, तब तो बहुत कुछ से जानकार होगी आप ?"

"नहीं बहन, कल्पना ही जबरन मेरे पास रहना चाहती है, यहाँ तक जानती हूँ। परन्तु दादू ने उसे निकाल दिया, यह नहीं जानती थी ?"

"हूँ"। मुख विकृत कर नलिनी ने कहा—"एला का विक्टर के साथ भागना आप और भी अच्छी तरह जानती होगी।"

"नहीं तो।"

"नहीं जानती ?"

"वह मौसी याने अपनी माँ के पास है। बस इतना जानती हूँ।"

"ऐसा ! यानी आप कहना चाहती हैं कि वह भागी ही नहीं ? सम्भव है अब लौट आई होगी।"

"मैं तो कुछ भी नहीं कहना चाहती, जानती बस इतना हूँ कि एला पति की पत्नी है, भार्या, सहधर्मिणी है और बस।"

"अजी, उसी पति ने तो त्याग दिया है न।"

"परन्तु ग्रहण करना और त्याग देना उतना सहज शायद न भी हो।"

"कौन जाने। आपकी पहेली-सी बातें मैं नहीं समझती।"

"कह रही थी, एक बार किसी का दिया हुआ अधिकार कोई छीन भी कैसे सकता है ? मुँह से कदाचित् कोई किसी का त्याग कर दे, परन्तु मन क्या उसे त्याग सकता है ? वही कह रही थी, त्याग करना उतना सहज नहीं है।"

कल्पना ने नन्दा को स्मरण दिलाया—"कब से दादा जी की कार खडी है। तुम जाओगी नही जीजी ?"

सुनन्दा उठकर खडी हो गई—"चलिए बहन, आप का घर तो रास्ते मे पडता है, उतर जाना।"

बडे उत्साह से नलिनी आई थी कि नन्दा के पास एला के विषय मे और भी जानकारी कर लेगी। निराश होकर वह मन ही मन भयानक चिढी। ऐसी मुखरोचक आलोचना इस सुनन्दा ने एक बात में बन्द कर दी। न जाने कैसी है यह नन्दा, फिर भी उसने पूछा—"कल्पना क्या अब आपके पास रहेगी ? मनीश बाबू ने क्या उससे शादी करने से इन्कार कर दिया ?" फिर भी वही प्रश्न, नन्दा कंठिनाई में पडी। जरा सोच कर कहा—"क्या जानूं बहन, किसी के मन की बात। यो उपस्थित कल्पना ने तो कुमारी व्रत ले रखा है।"

"कुमारी व्रत ? वह क्या ?"

"यानी वह कुमारी रह कर जनता की सेवा करेगी। हाँ, आपका क्लब कब से कब तक खुला रहता है।"

"६ बजे से आठ-नौ बजे तक, लेकिन कल्पना कब तक कुमारी रह सकेगी ? यह दिन बुरे हैं, आखिर एक दिन वह किसी के साथ चल न देवे।"

"देखा जाएगा यदि उसके मन मे ताकत है तो वही शक्ति, वह ताकत उसका साथ देगी। और बहन, किसी की चर्चा मुझे अच्छी भी नही लगती। न मै करना ही चाहती हूँ।"

नलिनी मुँह फेर कर बैठ गई और सुनन्दा खिडकी से बाहर देखने लगी।

"दादू—दादू" पुकारती हुई नन्दा अन्दर पहुँची। प्रवेश द्वार पर भेट हुई मनीश के साथ। उसे देखकर मनीश ने मुँह फेरा एव जल्दी-जल्दी चलने लगा। हँसकर नन्दा ने उसका हाथ पकड लिया—"ऐसी नाराजी और अपनी ही भाभी पर ?"

"भाभी-भाभी भाभी। रहने दो कहाँ की भाभी ? कैसी भाभी ? यदि सचमुच मेरी भाभी होती, यदि उस भाभी का मुझ पर स्नेह रहता, तो क्या ऐसा करती ? मुझसे न जाने कैसे-कैसे वचन लेकर, कि ऐसा करना—वैसा करना और मेरे घर हाजरी देना, यह सब मुझी से कहलाकर और अपने घर का दरवाजा सदा के लिए बन्द कर देना। क्या मेरी भाभी ऐसा कर सकती थी ?"

"वही तो, आज मै देखने को आई कि चलकर देखूँ तो सही कि क्या बात है ? मनीश बाबू किस हद तक अपना वचन निभा रहे हैं। अजी मेरे घर आना तो तुमने जान-बूझकर छोड ही दिया, फिर क्यो ?"

"उलटा मुझी पर आँखे बतलाना, सच तो कहो—कि तुमने मेरा अपने घर आना पसन्द नही किया, या मैने ?"

"ये तुम कह रहे हो, मैंने दरवाजा बन्द किया ?"

"जरूर। वरना मेरी आँखो की किरकिरी को तुम अपने घर रखती क्यो ?"

"आँखो की किरकिरी ?" और फिर बात समझकर सुनन्दा एकदम खिलखिलाकर हँस पडी और मनीश उस हँसी को देख-देखकर क्रुद्ध होने लगा।

हँसी रुकी, तब नन्दा ने कहा—"क्यो ? क्या वह तुम्हे निगल जाएगी ? आखिर एक बिचारी सीधी-सादी लडकी से ऐसा डरना ?"

"क्या मैं उस घमण्डिन से डरता हूँ ? तुमने भी खूब सोच लिया भाभी। मैं और उससे डरूँ ?"

"घमण्ड ? नही, मनीश बाबू। उस बेचारी मे कहाँ से घमण्ड आए ? हाँ, आत्म-सम्मान का बोध जरूर है। जो आत्म-सम्मान मनुष्य मात्र की श्रद्धा की वस्तु है। फिर सोचो तो सही, यदि मैं भी उसे न रखती, तो वह कहाँ जाती ?"

श्रीनाथ अपने कमरे से बाहर निकले—"लक्ष्मी की आवाज सुन

रहा था न ?"

"मैं आई दादू ।" नन्दा अन्दर गई । पहली ही उसकी दृष्टि आकृष्ट हुई गृह की अपरिच्छन्नता, अव्यवस्था के प्रति, वह काम मे जुट गई । मनीश कई बार आया और लौट गया । भाभी अपने काम मे ऐसी मस्त रही कि बात करना कठिन था ।

चाय के टेबिल पर वे तीनो बैठे थे ।

श्रीनाथ बोले—"एला को चौधरानी जी लौटा लाई है । वे कह रही थी, रवीन्द्र ने उसे त्याग दिया है एव एला ने स्वय भी पति के घर जाने से इन्कार किया है ।"

"एला स्वयं नही जाना चाहती ? '

"इसमे आश्चर्य की क्या बात है भाभी ? जिस वातावरण मे वह पली है वहाँ सच्चाई, वास्तविक स्नेह का नाम तक है नही । फैशन ही फैशन है । फैशन को जिन्दा रखने के लिए है चाह पैसो की, भूली न होगी भाभी, कि एला और उसकी माँ ने केवल पैसो के लिए मि० गुप्ता जैसे पुराने चाल वाले आदमी को चुना । बस, सिर्फ पैसो के लिए । उपरान्त एक बार रवीन्द्र की शादी हो चुकी थी । मैने तो सुना है उसकी पत्नी अब भी पाकिस्तान मे जिन्दा है । सब कुछ देख-भाल कर एला ने शादी की । उस वक्त उसे पैसो की जरूरत थी । अब वह सिनेमा से लाखो रुपये कमा रही है । अपने प्रशसको के बीच अकेली एक रानी बनी रही आवेगी, बस ।"

सुनन्दा चुप रही ।

सन्ध्या समय सुनन्दा मनीश की कुर्सी से टिककर खडी हो गई—"चलो मुझे पहुँचा आओ ।"

"कल्पना के रहते हुए उस घर मे मैं नही जाता ।"

"चलो ।"

और नन्दा की उस आज्ञा की अवहेलना करते मनीश का साहस न

हुआ। उठा और नन्दा के पीछे-पीछे चला।

"भाभी, तुम मुझ पर अत्याचार कर रही हो।" गाडी मे बैठकर मनीश ने कहा। नन्दा को हँसी आ गई, वह ऐसी हँसी कि हँसते-हँसते मनीश के कधे पर लोट पडी।

"ऐ भाभी, तुम्हे कितनी हँसी आ रही है। भाभी—ओ भाभी।" वह हँसती ही रही।

२६

"लेकिन मुझे विस्मय है जीजी, आज ममी भी बदल गई है, कहती हैं सिनेमा छोड दो।"

एला और सुनन्दा मे बाते हो रही थी।

"ठीक कहती है।"

सन्ध्या की छाया तब पेड-पत्तियो मे उतर रही थी। कल्पना सन्ध्या की छाया मे भी उद्यान मे काम कर रही थी। ऊपर की दालान मे आराम-कुर्सी पर एला अधलेटी पडी हुई थी और मोढे पर सुनन्दा बैठी उससे बाते करती जाती थी।

गरजकर एला ने कहा—"ठीक कहती है? लेकिन पहले जब मैं गई, तब उन्होने क्यो नही रोका? क्यो मुझे शाबाशी देकर आगे को बढने दिया? वे बाल-डान्स मे अपने साथ क्यो ले जाया करती थी? मेरी इतने दिनो की आदते अब कैसे छोडूँ? अब कहती है जमाई को यह पसन्द नही, वह पसन्द नही, तुम यह सब छोड दो? घूँघट निकालकर उनके घर जाओ, उनसे माफी माँगो। क्यो माँगूँ माफी? जिसने पापा से साफ-साफ कह दिया कि आपकी लडकी को मैने त्याग दिया, उससे मैं माफी माँगने जाऊँ?"

"हानि ही क्या है एला ?"

"हानि क्या है ? जीजी, तुम, तुम भी कहती हो हानि क्या है ? मै सन्यास ले लूँ ? सो भी किसके लिए ? एक हृदयहीन, प्रेमहीन आदमी के लिए ?"

"एला—"

"नही, मुझे कहने दो, आज मै तुमसे सब बाते कहूँगी। शादी उन्होने दुबारा क्यो की ? अब तक मेरे पास वह एक रहस्य रह ही गया, तुम सुनकर विस्मित होगी—"मुझ पर उनका रत्तीभर भी प्रेम, चाह नही है। केवल शारीरिक आवश्यकता मिटाने के लिए यह शादी का स्वाँग रचकर एक स्त्री की जिन्दगी बर्बाद जिसने की, वह मेरा प्रेम कैसे लूट सकता था ? मै उनमे से नही हूँ, जो स्त्रियाँ अपने को क्रीतदासी समझा करती है। पति शराब पीकर रात भर वेश्या के घर रहे, लौटकर पत्नी का निर्यातन करे और वे सब अत्याचारो को सहकर उसी पति के पैरो से लिपटी रहे। ऐसी स्त्री से मैं घृणा करती हूँ। मेरी भी स्वाधीन सत्ता है। मेरा अपना एक अधिकार है। ऐसे पति को मै प्रेम-प्यार कैसे कर सकती हूँ ? जबरन दिखलाऊँ ? जो कि मेरे मन मे नही, वही सब जबरन दिखलाऊँ ? नही जीजी, अभिनय, नाटक स्टेज पर ही हो सकता है, शोभा भी देता है। घर, घर ही है। मै सब कुछ कर सकती हूँ, सह सकती हूँ, लेकिन अपने आप के साथ अभिनय नही कर सकती, गड्ढे मे नही ढकेल सकती हूँ।"

"हो सकता है यह सब तुम्हारे मन की भावना हो, वास्तव मे वे तुम्हे चाहते हो। सोचो तो सही, पति पत्नी पर प्रेम किए बिना कही रह सका है ? मनुष्य का स्वभाव है, अपने प्रेम को किसी एक आधार पर ढालना—चाहे वह आधार नर हो या नारी, शिशु, वृद्ध, पशु-पक्षी, जड पदार्थ, जो भी हो मनुष्य का स्वभाव स्नेही हुआ करता है। देखा जाता है—शिल्पी का प्रेम उसी के शिल्प मे पनप रहा है। कवि अपने को

कविता मे लुटा देता है। वैज्ञानिक विज्ञान मे खो जाता है, दार्शनिक दर्शन मे, राजनीतिज्ञ की दुनियाँ वही हो जाती है, गायक स्वरो मे रस भरने मे अपने को लुटा बैठता है। और फूल ? वह तो अपना जो श्रेष्ठतर पराग है, उसी को भ्रमर को लुटाता है। और वही सुखी है एला, जो कि अपने रस को छान-छानकर लुटा सके। उस रस को कौमार्य के कलस मे भरकर सुखाना,—यह तो स्वभाव-विरुद्ध है न। वही कह रही थी, कि तुम्हारी बात कैसे मानूं ? मेरी समझ से तुम गलती पर हो।"

"समझी, तुम्हारे कहने के अनुसार मान भी लिया जाए तो वह आधार, मै नहीं हूँ।"

"तो ?"

"वह है वही फोटो की रूपसी।" और एला सुनन्दा को तुलनात्मक दृष्टि से देखती हुई सहसा ही कह उठी—"अरी जीजी, एक बार अचानक पीछे से उस फोटो को मैने देख लिया था, ठीक तुम्हारी तरह फोटो की नारी भी है। मै अच्छी तरह से नही देख पाई। तो भी जितना जो कुछ देखा, वह तुम्हारी तरह लगी। यह तो बडी विचित्र बात और अद्भुत मेल है जीजी !"

नन्दा के रक्त-शून्य, विवर्ण मुख के प्रति देखकर एला अत्यन्त व्यस्त हुई—"जीजी, क्या हुआ ? अचानक तुम ऐसी क्यो हो गई ?"

"मुझे चक्कर आ रहे हैं बहन।"

"अरे ! हैं ! मेरी गोद मे लेट जाओ।"—और वह फैशनेबुल लडकी एला, अपनी मूल्यवान् साडी की परवाह न कर जमीन मे बैठ गई।

नन्दा खिन्न—पकडकर पुन उसे कुर्सी पर बैठाया, कहा—"जरा-सा चक्कर आ गया था। अब ठीक हूँ। देखो तो सही, अपनी साड़ी तक तूने गन्दी कर ली।"

"कोई बात नही जीजी, कल दूसरी खरीद लूँगी। मैं सिनेमा मे एक्टिंग करूँ और पैसो की परवाह करूँ ? वहाँ पैसो की कमी नही है। और जीजी तुम्हारी जान से पैसे प्यारे नही हैं। यो तो मुझे हर एक कम्पनी से बुलावा आ रहा है। यह कहता है मेरी कम्पनी मे आ जाओ, वह कहता है मेरी कम्पनी मे। मिसेस भटनागर और मीराबाई तो कबकी खतम हो चुकी। अब रही सुलोचना और मोती बाई, सो वे अब दो दिन की मेहमान हैं। मेरी इतनी ख्याति, ऐसा नाम हो रहा है और ममी कहती है छोड दो। सब छोड-छाडकर मैं योगिन बनकर बैठूँगी, सो भी एक लापरवाह आदमी के लिए ? जो आदमी एक दूसरी स्त्री के लिए पागल हो। सच जीजी, फोटो वाली सुन्दरी तुम्हारी तरह है।"

नन्दा चुपचाप सुन रही थी।

"न तो मे सिनेमा छोडने की और न डान्स। पापा और ममी अगर ज्यादा दिक करेंगे तो उस घर को छोड दूँगी। वैसे तो विक्टर ने मेरे लिए एक हवादार मकान तलाश कर ही रखा है। पहले मैं क्या करूँगी जानती हो ?"

"क्या करोगी ?

"उनपर नालिश करूँगी, अपना खर्च चलाने के लिए आधा रोज-गार उनका ले लूँगी। शादी की है, मजाक थोडे ही है।"

सुनन्दा बोली धीरे—"किन्तु सिनेमा की तुम्हारी यह ख्याति, प्रशसकों के उपहारो की भरमार, उनकी प्रशसा का स्तुतिवाद, यह सब है कितने दिनो के लिये ?"

सुनन्दा की बातो की तीक्ष्णता एला को विद्ध करने लगी। वह चिढी, झुँझलाई, और तो भी पूछा—उसे पूछना ही पडा,—"कितने दिन याने ? मै तुम्हारी बात समझी नही।"

"कह रही थी, सिनेमा स्टार और उनकी ख्याति-प्रशसा इत्यादि इन सब की जिन्दगी कितने दिन के लिए होती है ? जल पर के बुदबुदे

देखे है न ? नदी के स्वच्छ लहारते हुए जल से उठने वाले बताशे की तरह वे सुन्दर बुदबुदे। उनकी आयु कितनी हुआ करती है ? पल–पल मे वे उसी नदी-जल के अतल मे निश्चिह्न हो जाते है। उनके रिक्त स्थान पर दूसरे, तीसरे और चतुर्थ बुदबुदे आते और जाते रहते हैं। तुम्हारी ख्याति, वह कब तक ? यौवन और रूप, इसका क्या विश्वास ? कभी कोई चिरयौवना बनी रह सकी है ? तुम्हारे इसी शरीर मे तुम्हारा यौवन दिन प्रति-दिन तिल-तिल कर प्रति पल मे घुलता चला जा रहा है और जाएगा, क्या इसकी खबर तुम्हे है ? अभी तुम देख नही पाती, जान नही सकती किन्तु एक दिन जब दर्पण मे सुन्दरी युवति के स्थान पर गतयौवना, स्फूर्ति-हीना नारी का अवयव अकित हो उठेगा, तब ? तब आज की ख्याति प्राप्त सिनेमा ऐक्ट्रेस क्या उसे सहन कर सकेगी ? और उसके बाद तुम्हारे ही अनजान मे तुम्हारे ही पुजारी, प्रशसकगण, जो आज तुम्हारे चारो ओर भौंरो की भाँति मडरा रहे है, वे ही मुँह फेरकर हट जाएँगे। और उसके भी बाद ? वे तुम्हारी ही दृष्टि के सामने वे ही प्रशसक दूसरी सुन्दरी, युवति पर भौरो की भाँति मँडराने लगेगे। सिनेमा कम्पनियो मे उस गतयौवना नारी का कोई आश्रय, कोई माँग नही रहेगी। तब उस अवहेलना को सहन कर सकोगी ? कल की पूज्य रानी आज की भिखारिन बनी कब तक जी सकती है ?"

एला की विस्मय-विस्फारित, आतकित आँखो के प्रति देखती हुई सुनन्दा पुन कहने लगी—"ससार मे कुछ भी चिरस्थायी नही है। स्थायी है केवल मन की शान्ति। तो ऐसा काम किया ही क्यो जाए जिससे कि चिरदिन के लिए उस शान्ति को हम खो बैठें ? और बदले मे उठा ले हाहाकार।"

"जीजी—"

"हाँ, कोई जानकर मरता है, कोई अनजान मे। किन्तु तुम तो

आत्महत्या ही करने को बैठ गई हो एला।"

"आत्महत्या ?"—एला इतना ही कह सकी।

"हाँ, तुम आत्महत्या कर रही हो।"

निरुत्तर एला उठकर खडी हो गई। उसे जाते देखकर सुनन्दा मुसकराई—"क्यो चिढ गई ?"

"नही जीजी, दो दिन से मुझे ज्वर चढ रहा है। आज ज्यादा लग रहा है।"

सुनन्दा ने हस्त द्वारा उसके शरीर का ताप देखा, गरम था।

"तुझे खासा बुखार चढा है, घर जाकर लेट रहो।"

दूसरे दिन सुनन्दा ने सुना कि एला पिता-माता से अलग होकर दूसरे मकान मे स्वतन्त्रता से रहने के लिए चली गई है।

८७

सुनन्दा झपटती हुई उस कमरे मे पहुची, जहाँ आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ मनीश शराब पी रहा था।

बाहर श्रीनाथ का उदास, व्यथातुर मुख, भृत्यो का सशकित भाव नन्दा देख आई थी। गाडी से उसे उतारते हुए दादू ने रोदन रुद्ध स्वर से कहा था—"तुमने तो लक्ष्मी मेरे पास आना ही अब छोड दिया है, उधर तीन दिनो से मनीश अन्न-जल त्यागकर शराब पी रहा है। मैंने खुद समझाया कि शराब तेरे प्राण ले जाएगी, मत पियो इसे, तो उसने जवाब दिया—" यही चाहता हूँ, अब मै अपने आप के लिए भारी हो रहा हूँ दादा जी।" फिर भी समझाया तो आज मुझे उसकी भी झुँझलाहट सहनी पडी। कहता है—"अगर ज्यादा कुछ कहोगे दादा, तो मै रास्ते पर बैठ जाऊँगा। तुम यहाँ से जाओ। मुझे अकेला रहने दो, कोई मेरा

साथी नहीं, कोई मेरा अपना नही है बस, यह बोतल और मैं ।" देखो लक्ष्मी, कोशिश करो, अगर तुम उसे बचा सको । तीन दिन हो गए । उसके पेट मे अन्न का कण तक नही गया ।"

अन्दर जाकर नन्दा ने उस शराबी को देखा । आराम-कुर्सी के निकट गोल छोटे टेबिल पर रखी हुई थी व्हिस्की की बोतल, सोडा की बोतल और कई काँच के गिलास । और जमीन पर लुढक रही थी कई खाली बोतले । दरवाजे पर दो मिनट खडी रहकर नन्दा ने भीतर का दृश्य देखा। नि शब्द गति से वह मनीश के निकट जाकर खडी हो गई।

मनीश ने अधखुली आँखो से उसे देखा । टूटे-फूटे शब्द मे जडित स्वर से बोला—"यहाँ भी पहुँच गई तुम ? मायाविनी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाडा था ? जो कि मेरी नसो मे प्रेम की आग दहकाकर आप दूर हट गई ?" और वह हाहा-हाहा करके हँसने लगा—"सोचती हो मै कुछ समझता नही, शराबी हूँ, पागल हूँ, कल्पना लडकी जिसकी छाया से मै घृणा करूँ उसे ले जाकर अपने घर पर रखा है । सोचती हो मै कुछ समझता नही ? ऐसा बेवकूफ नही हूँ । मेरा वहाँ जाना रोकने के लिए यह सब किया गया ।" मदिरापूर्ण गिलास जग मे उतारकर पुन. वह कहने लगा—"तुम्हे मै चाहता हूँ, वह ठीक है । तुम क्या समझोगी कि वह कैसी चाह है ? नही, तुम नही समझ सकोगी कि वह क्या है ? मेरी जान क्यो न चली जाए किन्तु अपनी भाभी का अपमान नही कर सकूँगा । जिसे कि मन ने अपना कहकर मान लिया है, उसका अपमान करना कैसा ? तब कल्पना को प्रहरी बनाकर अपने घर रखने की क्या जरूरत थी ? कहो जवाब दो ?"

जवाब ? किन्तु क्या उत्तर देती नन्दा ? केवल वह शून्य दृष्टि से मनीश को देखती ही रह गई । उसकी शिराएँ शून्य, स्पन्दन-हीन हो रही थी । क्या उत्तर देती नन्दा ? अन्तरात्मा मे न जाने कैसी व्यथा व्याप रही थी, जिसने कि उसके कठस्वर तक को सुखा कर निस्तेज

कर दिया ।

मनीश अपनी धुन मे कह चला, "मैंने तो तुम्हे सब कुछ दे रखा था, लेकिन तुमने क्या दिया ? केवल दूरत्व के एक अटल पर्वत के उस पार अपने को छिपाकर रखा । अपने जीवन के रहस्य को भी मेरे पास रहस्य ही बनाकर रख छोडा है । तुमने क्या दिया है ? केवल दूरत्व ।" कहते-कहते मनीश उन्माद की-सी हँसी हँस उठा ।

और हठात् वह बोला—"अरे क्या तुम डर गई भाभी ? घबरा रही हो ? मै तुम से कुछ भी नही माँगता और न कभी माँगूँगा । तुम एक शराबी को देखने आई हो ? तो देखो, किस तरह से मैं मरकर भी जी रहा है ।"

नन्दा चुप थी, बिल्कुल चुप ।

मनीश जोर-जोर से कहने लगा–"क्यो, क्यो आई हो तुम यहाँ ? भाभी जाओ, मुझे शाति से रहने दो । मै किसी की परवाह नही करता और न दुनियाँ मे मैं किसी को चाहता हूँ । न साथी है कोई । बस एक साथी है यह शराब । सुन रही हो नन्दा रानी ? दुनिया मे शराब ही को चाहता हूँ । कौन कहता है मै आत्महत्या कर रहा हूँ ? कहने वाला झूठा है ।" अपनी चाह की वस्तु सुरा आकठ पीऊँगा ।"

पुन मनीश ने सुरा गिलास मे ढाली और उसे मुँह के पास ले जाना चाहता था । उसके हाथ काँप रहे थे । मस्तक नीचे झुक रहा था ।

सुनन्दा का बोधहीन मन अपनी स्थिति मे लौट पडा । वह मनीश के निकट पहुँची और उसके हाथ से गिलास ले लिया ।

"मुझे पीने दो, तुम यहा से चली जाओ भाभी ।"

'तुमने बहुत पी लिया है, अब मैं पिऊँगी ।" वचन शेष कर नन्दा ने दूसरे हाथ से बोतल भी उठा ली एव मुँह से लगाने लगी ।

विद्युत्-स्पर्श की भाँति मनीश सजग हो उठा—वही मद्यप मनीश'

उसके बन्दप्राय नेत्र उन्मुक्त नही हुए, वरन विस्फारित हो गए, हृदय का श्वास द्रुततर हुआ। नशा जैसे किसी अलौकिक प्रभाव से अन्तर्हित हो गया।। अपने अशक्त शरीर को किसी प्रकार खीचकर सीधा होकर खडे होते-होते सुनन्दा पर गिर पडा। नन्दा ने एक हाथ से उसे सँभाला।

वह आर्त—आर्तंकित मनीश का स्वर—"नही-नही। यह क्या कर रही हो भाभी ? मैं सब कुछ सह सकता हूँ लेकिन तुम्हारा शराब पीना नही सह सकूँगा।"

"क्यो ?"मनीश को बैठाकर और निकट मे बैठकर नन्दा ने पूछा—"क्यो ?" मदिरा पूर्ण गिलास तब भी नन्दा के हाथ मे था। जिसे कि वह अमूल्य निधि की भाँति कसकर पकडे हुए पूछ रही थी—"क्यो ? यदि तुम पी सकते हो तो मैं क्यो न पीऊँ ?"

"मुझसे और तुमसे तुलना ? भले के साथ बुरे की और सत् के साथ असत् की तुलना ? तुम नन्दरानी जो हो, और मेरी भाभी हो, बस नन्दा भाभी बनी फूल के रथ पर बैठी रहो। आओ भाभी, जिसे कि मै जानता-पहचानता हूँ, और कभी फूल चन्दन का हार भी पहना दिया करता हूँ। कभी जिसे रात की चुप्पी मे नन्दा, नन्दरानी कहकर चुपके-चुपके पुकार लिया करता हूँ, उसे आज मेरे साथ गन्देपन मे मत उतारो भाभी। बहुत कुछ तुमने मेरा सहा है, मेरे सब अत्याचारो को तुम्हारा स्नेह गोद मे उठा लेता है। आज मेरे विनय को रखो भाभी।"

"एक पतिता, लुटी हुई नारी देवी कैसे ? क्या तुम मेरा इतिहास जानते हो ? नही ? तो मदिरा का उच्छ्वास, खुशी की मस्ती मत रोको। ढालो-ढालो, मैं पिऊँगी, जितनी बोतले तुम्हारे पास हो; सब को गले मे उँडेलूँगी।"

"भाभी !"

उस अस्वाभाविक स्वर मे कौनसा जादू था, कौन जाने, मदिरा-

पूर्ण गिलास मुख के निकट ले जाकर भी सुनन्दा ने उसे उतार लिया। पूछा "क्या ?"

"यदि पिऊँ ?" नन्दा ने पुनः पूछा ।

"तुम्हे मार डालूँगा, टुकडे-टुकडे कर फेक दूँगा ।"

"क्यो ?" नन्दा ने गम्भीरता से पूछा—क्यो ?"

"आदमी सब कुछ देख सकता है, सह सकता है, लेकिन अपने आराध्य का अपमान नही सहन कर सकता । देव-देवी, मन्दिर, मस्जिद मे स्थापित हो सकते है । वही उनका उचित और पावन स्थान है। कीचड और गन्देपन मे नही । तुम शराब पीकर उस मन्दिर के शिव का अपमान कर रही हो ।

नन्दा गम्भीर चुप्पी मे स्तब्ध-विस्मित हुई मनीश को देखती रही ।

मानो उस के देखने का अन्त ही न रहा हो ।

"तो न पीऊँ —" देर के बाद नन्दा ने पूछा ।

"नही, गिलास मुझे दो ।"

"और तुम्हारी मौत की साक्षी बनी मै यहाँ बैठी रहूँ ? क्या बिगडा था मने तुम्हारा मनीश बाबू जिससे कि इतनी बडी सजा आज तुम मुझे दे रहे हो ? कहो, जवाब दो । तुम्हारे मरने की गवाह बनूँ मै ? दुनियाँ की सताई हुई एक अभागिन नारी, जिसे कि ससार ने मुट्ठी भर धूल समझकर पैरो तले रौंदा, और रौंदता ही चला जा रहा है। फिर इन सब के बाद भी जिनने उसे अपना समझा और वह जिन्हे मृत्युहीन उस स्नेह मे स्नान कराकर तृप्त हुई, ऐसा एक स्नेहास्पद भी आज उसे क्या देने बैठा है ? जीवनमृत रहने का अभिशाप, और कठोरतर शास्ति । वैसी सजा लेने से पहले मै ही क्यो न आकठ सुरापान कर आराम से सो रहूँ ?"

"भाभी, भाभी"—कहता हुआ मनीश एक प्रकार नन्दा से लिपट गया, नन्दा के हाथ से गिलास छीनकर दूर फेका और अपने गिरते

हुए शरीर को कुरसी पकडकर थामे हुए बोतलो को उठा-उठाकर जोर से पटकने लगा—"लो पियो, पियो पियो।"

नन्दा खडी देखने लगी, मदिरा-पूर्ण बोतलो का टूटना। मदिरा की दुर्गन्ध से उल्टी आने लगी। किन्तु तो भी वह न हटी, न हिली। केवल खडी रही, खुशी की हल्की-सी मुस्कान ओठों पर लिपटी रही। बोतलो के टूटने की आवाज से दास-दासी एव श्रीनाथ द्वार पर इकट्ठे खडे हो गए।

अन्तिम बोतल फेंककर हाँपता हुआ मनीश बोला—"लो, अब पियो।"

सुनन्दा ने मनीश का पतनोन्मुख शरीर थामा एव श्रीनाथ के सहारे, काँच के टुकडो से दोनो बचते हुए मनीश को उठाकर बाहर ले गए।

ठण्डे पानी की बाल्टियाँ जब मनीश के मस्तक पर उँडेली जा रही थी, तब वह बेसुध था।

रात्रि मे घर लौटते समय नन्दा ने श्रीनाथ से कहा—"डाक्टर कह गए है, अब डरने की बात नही है। तुम निश्चिन्त रहो दादू, मैं वचन देती हूँ वे अब कभी भी शराब नही पियेगे। मैं बहुत सवेरे पहुँचूँगी।"

"जल्दी आना लक्ष्मी, न जाने क्यो मेरा जी अब तक काँप रहा है। लक्ष्मी, मुझे लगता है, सब खराबी की जड कल्पना है। तुमने शायद ख्याल न किया हो, जब से तुमने कल्पना को अपने घर मे रखा है, तब से मनीश ने एक तरह तुम्हारे घर जाना बन्द कर दिया। और घर मे बैठा शराब पीता रहता है। सत्सग का भी तो एक प्रभाव पडता है, तुम्हारा सत्सग छूट गया।"

नन्दा ने कहा—"फिर किया ही क्या जाए? कल्पना को हम फेक तो सकते नही।"

"वह शादी करने मे राजी हुई ?"

"अब तक तो नही हुई, देखू । तुम फिकर मत करो दादू, ईश्वर चाहेगा तो अब सब ठीक हो जाएगा।"

२८

मेघाच्छन्न आकाश तले धरती नीद भरी आँखे खोल चुकी थी। वर्षा की हल्की-हल्की बूंदे धरती पर खेल-सी रही थी। उस खेल की साथिन थी हवा। वृक्ष-पल्लवो की मरमर ध्वनि मे कोकिला की कूक किसी एक विचित्र रागिनी की सृष्टि करने मे जुटी हुई थी।

परन्तु यह सब देखने और सुनकर उपभोग करने का समय उस नन्दा लडकी को नही था। वृक्षो की सेवा तो वह चार बजे रात्रि मे उठकर कर चुकी थी, तब घर-द्वार साफ कर कल्पना के उठने से पहले चाय, नाश्ता बनाकर और वस्त्र परिवर्तन कर तैयार हो चुकी थी। मनीश की दशा जैसा कि वह गत रात्रि मे देख आई थी, उससे वह स्वय ही अशात थी। उस पर डाक्टर का कहना—"अतिरिक्त मद्यपान से दिमाग मे खराबी पहुँच चुकी है।" उसे रात भर सोने नही दिया।

गाडी पहुँच गई। पान का टुकडा मुँह मे डालती हुई सुनन्दा विस्मित हुई, कार किसकी आई ? ऐसा हार्न तो श्रीनाथ की गाडी का नही है। पत्र लेकर ड्राइवर पहुँचा—हाँ, चौधरानी ने उसे अविलम्ब बुलाया है।

नन्दा ने कल्पना को जगाया, कहा—मै चौधरी साहब के घर जा रही हूँ। दादू की कार आए तो चौधरी साहब के घर भेज देना।"

"ऐसे सवेरे चौधरानी जी को कौन-सी जरूरत पड गई।"

"कौन जाने । 'विशेष प्रयोजन' बस पत्र मे इतना ही लिखा है ।"

"तुम भी अच्छी हो जीजी, जब जिसने बुलाया, बस चल दी। क्या तुम्हारा वक्त-बेवक्त नही है ? बुलाने वाले भी अच्छे है ।"

"लावारिस जो हूँ ।"

"हर वक्त मजाक, चलो, रहने भी दो ।"

मुसकराती हुई नन्दा चल दी ।

गाडी से नन्दा उतरी, गेट पर सर्वप्रथम उसकी चौधरी से भेट हुई।

"इतने सवेरे ? क्या बात है ?" प्रातः भ्रमण से लौटे हुए चौधरी ने पूछा, बहुत दिनो के बाद चौधरी का वह सहज कठ-स्वर सुनकर मन ही मन सुनन्दा प्रसन्न हुई ।

"मौसी ने बुलाया है ।"

"अच्छा ! " कहकर सिगरेट मुँह मे दबाकर चौधरी पुनः टहलने लगा, बोला—"वे बगीचे मे अभी मिल जाएँगी । चाय पी रही होगी ।"

उद्यान के फव्वारे के निकट गोल मेज पर चाय, केक, बिस्कुट, डबलरोटी के टोस्ट, मक्खन आदि प्लेटों मे रखे थे । कई कुर्सियाँ पडी थी । चौधरानी बैठी चाय पी रही थी । वह अकेली नही थी । नित की भाँति नलिनी पहुँच चुकी थी । नलिनी चौधरानी की चाय की साथिन थी—प्रात और मध्याह्न मे ।

"आओ बेटी, उतनी दूर क्यो नन्दा ? मेरे पास बैठो," और सुनन्दा के विस्मय को उत्तरोत्तर बढाकर अपने हाथो उसके लिए कप मे चाय ढालकर एक प्लेट मे हाफ बायल्ड अण्डा आदि रखकर नन्दा को दिया । नौकर से कहा—"बाय, कल जो सोहनहलुआ का पार्सल देहली से आया था न, उसे खोलकर आलमारी मे मैने रख दिया है । उसे ले आओ ।"

"चाय पीकर आई हूँ मौसी जी । आज दादू के घर जाना था, सो सवेरे ही सवेरे तैयार हो गई ।"

"ऐसे सवेरे ? क्यो सब अच्छे तो हैं न ?"

"नही ! मनीश बाबू बीमार है ।"

"ऐसा ! अरे बेवकूफ कह जो रही हूँ कि सोहन-हलुआ का डब्बा उठा ला ।"

"आलमारी की चाबी ?"

"लो, आया से कहना कि खोलकर फिर बन्द कर दे ।"

कहकर नन्दा की ओर देखती हुई रहस्यमय हँसी हँसकर चौधरानी ने कहा—"इस चोर को मैं चाबी देने चली ? नन्दा, केक तो खाओ, कल आर्डर देकर बनवाया है । आजकल प्लम केक आर्डर पर ही बनते हैं । बिलकुल ताजा है, यह लो सोहन-हलुवा तुम्हारे ही लिए मँगवाया है । उस दिन श्रीनाथ साहब के घर तुमने सोहन-हलुवा की तारीफ की थी । ओ नलिनी, तुम्हे क्या हो गया ? अगर हाफ बायल्ड अण्डे नही खाती तो पोज ले लो ।" और हँसकर बोली—"जानती हो नन्दा, नलिनी कहती है, पार्टी ने मेरा धर्म बिगाडा कि मुझ विधवा को मास, मछली खिलाया ।" मैंने कह दिया—"कैसा धर्म, कहाँ का धर्म ? विधवा हो तो पेट के साथ दुश्मनी क्यो करना ।" चौधरानी ने बडा-सा हलुवा का टुकडा मुँह मे डाला, फिर हि हि करके हँसती हुई कह चली—"और एला क्या कहती है मालूम है ? बडी नटखट है । कहती है—ममी, क्या यह छूत मार्ग समय-समय पर, वक्त देखकर बदला करता है ? मतलब के वक्त बनता, बदलता रहता है ।"—कहते-कहते दीर्घश्वास लेकर चौधरानी गभीर हुई—"बेचारी लडकी सख्त बीमारी के पजे मे फँस गई है ।"

"क्यो-क्यो ?" नलिनी तथा नन्दा ने समस्वर से पूछा । नलिनी ने कहा—"अभी कुछ महीने पहले सुना था एला को चेचक निकली है, यानी बडी चेचक । अब फिर से उसे क्या हो गया ?"

"क्या कहूँ ? मेरा भाग्य ! इसीलिए तो सुनन्दा को ऐसे सवेरे बुला

भेजा है। अगर एला को कोई सभाल लेगा तो बस यही नन्दा लडकी। हूँ, हूँ, मैं आदमी पहचानती हूँ।"

"आखिर उसे हुआ क्या है ?"

जानती ही हो रवीन्द्र ने उसे त्याग दिया है। इधर बाप ने कहा कि सिनेमा छोड दो, उसने साफ कह दिया—नही छोडूँगी। तब मि० चौधरी ने भी लडकी को त्याग दिया, यो कि मुझे तक एला के घर जाने की सख्त मनाई है। लडकी बेचारी का क्या कसूर ? उसने अपने लिए अलग घर लिया। वही रहती है। तो देखो न एला आज मरने को बैठी है, तो भी मेरे जाने का हुक्म नही, मानती हूँ कि उसने लडकपन किया, तो भी एक बार देख तो आती ? हुक्म नही मिला ? माँ हूँ, जी नही मानता।"

सुनन्दा विमूढ, विस्मय से चुप रही, मन मे उसके जाने कैसी-कैसी भावनाएँ उभर आई—माता स्वय कह रही है कि सन्तान मृत्यु-शय्या पर है, तो भी वह जा नही सकती। क्यो ? हुक्म नही !— हुक्म कैसा जो कि माता को सन्तान की मौत-सेज तक जाने से रोक सके ! कैसी है वह माँ, जो कि बच्ची की मौत आई हुई जानकर भी घर मे बैठी सोहन-हलुआ खा सके ! दूर खडी रही आवे और है भी कैसी यह सभ्यता ! जो कि माता लडकी के सकट के दिन मे भी परम-आराम से बैठी भोज्य-पदार्थों का स्वाद ले रही है !

"एला को क्या हुआ है।" एक समय नन्दा ने पूछा।

"अब क्या कहे ! मेरा भाग्य, उसे क्षय-सा हो गया है। नन्दा बेटी, मेरे तो जाने का उपाय ही नही, सुनती हूँ उसकी दशा खराब है, तुम जरा चली जाओ, कैसा क्या हो रहा है, नर्स है या नही। सब व्यवस्था कर सकोगी, तुमसे ज्यादा क्या कहूँ। तुम जैसी बुद्धिमती लड़की सब कुछ कर लेगी।"

सुनन्दा उठकर खडी हुई।

चौधरानी ने कहा--"ओ नलिनी, तू भी जाकर देख आ।"

माफ करो आन्टी, एक दिन गई थी, तब महामाई अच्छा हो चुकी थी, लेकिन एला ने मुझे नौकर से कहकर गेट पर ही से हटा दिया।

"एला तो ऐसी लडकी नही है।"

"नौकर से उसने कहलाया कि—मैं अब किसी से भी मुलाकात नही करती। नौकर ने बतलाया कि चेचक निकलने के बाद से वे किसी के सामने नही जाती। लेकिन मेरे साथ तो एला को ऐसा बर्ताव नही करना था। दूसरे लोगो से और मुझसे बराबरी ?"

नन्दा गभीर उदासी से खडी सब कुछ सुन रही थी, बोली वह उसी उदासी मे ओत-प्रोत सी—"आप नही जानती नलिनी देवी कि उस शिशु स्वभाव की लडकी पर आप कितना अविचार कर रही है।"

"मैं ? वह तो मुझे अपमान कर दरवाजे पर से हटा देवे, और दोषी ठहराई जाऊँ मै ? अविचार करू मैं ? उलटा जमाना है नन्दा देवी।

"ठीक है, परन्तु आपने सोचकर भी देखा था कि एला जैसी लडकी के लिए ऐसा बर्ताव कौन-सी स्थिति ने करवाया ! कारण क्या है ?"

"स्थिति ! कारण ! मैं समझी नही।"

"आप के मुँह से सुनकर मैं सोचने लगी थी कि ऐसा बर्ताव करने का कारण क्या है ?"

"भला इसमे भी कुछ कारण क्या हो सकता है ?"

उत्तर दिया नन्दा ने, नलिनी को नही, किन्तु चौधरानी की तरफ मुँह करके—"हो सकता है चेचक ने उस सुन्दर आकृति को बर्बाद कर दिया हो। बडे वाले चेचक थे न ? उस जैसी अभिमानिनी लडकी अपनी विकृत आकृति को छिपाकर रखना चाहती हो, किसी के सामने जाते शायद उसका आत्माभिमान, गर्व लाछित होता हो, सोचो तो ऐसा भी

हो सकता है कि उस कुत्सित रोग के बाद उसके प्रशसक वृन्द उससे हट गये होगे जिससे कि उसका मन चूर्ण-विचूर्ण हो रहा होगा । अजी थोडे ही दिन पहले जिसे कि धरती से मीलो ऊपर उठाकर रत्न-जडित सिहासन पर बैठा दिया गया हो, और उस सिहासन के चहुँ ओर शत-शत कठो से उसके रूप, गुण आदि की प्रशसा, ख्याति की ध्वनि मे पुष्पो की वर्षा होती रही आवे, और फिर हठात् एक दिन वह रत्न-जड़ित सिहासन सहित उसे मिट्टी के धूल मे डालकर सब कुछ अंतर्धान हो जाए, तब ? क्या आप लोग समझती नही है उस समय के उसके मन की परिस्थिति को ? बहन तर्क की दृष्टि से नही, परन्तु आदमी के स्वाभाविक मन की भावना से तो जरा समझ सकने की चेष्टा करो ।"

चौधरानी ने सहसा ही नन्दा को गले से लगा लिया । देर के बाद सुनन्दा ने कहा—"अब उसके क्षय रोग होने का कारण तो तुम समझ गई हो न मौसी ? नही ! असम्भावित आघात, निविड अतर्वेदना, और उपेक्षा । उठो मौसी, ऐसे समय माँ कही दूर रह सकती है ? डर तुम्हें किसका है ? चाहे वहाँ न रहो, किन्तु अपनी आँखो सब कुछ देख समझ तो आओ, यदि माँ हो, तो तुम्हारे मातृत्व का अपना एक अधिकार है, एक सत्ता है । चलो ।"

मत्र-मुग्ध की भाँति चौधरानी सुनन्दा के पीछे-पीछे चल पडी ।

२६

झरे गुलाब की मुट्ठी भर मुरझाई हुई पखडियो-सी एला पडी हुई थी पलग पर । रेशमी जालीदार परदा उठाकर नन्दा कमरे मे पहुँची । एला को देखकर वह सिहरी, चेचक मनुष्य को ऐसा कुत्सित कर देती है, इस बात की जानकारी इससे पूर्व नन्दा को नही थी । उसके सामने

पडा हुआ था हड्डियो का एक ढाँचा, उस ढाँचे पर गहरे-गहरे गड्ढों मे धँसी हुई आँखे भयानक लग रही थी, सर के बाल झर गए थे। चौधरानी रो पडी।

एला ने आँखे खोली, उन दोनो को देखा और दोनो हाथो से मुँह ढंकने लगी।

सहज—धीमे स्वर से नन्दा ने कहा—"एला, तू मुझे पहचानी नहीं ? तेरी जीजी और तेरी ममी तेरे घर आईं, इधर तुम ही मुँह ढाँको ?"

"मेरे इस कुत्सित मुख को मत देखो। जिस दिन मैंने आइने में अपने को देखा, डर गई जीजी, अब कभी भी आइना न देखूँगी। मुझे डर लगता है—बहुत डर, उस मुख को देखने के भय से देखो न बीमार तक पड गई। तुम लोग मुझे मत देखो।"

नन्दा सिरहाने बैठकर एला का मस्तक सहलाने लगी। आँखो मे विस्मय भरकर नन्दा ने कहा—"न जाने क्या कहती हो, तुम्हारी बातें मैं समझी नही। हम दोनो तो तुम्हे पहले ही-सा देख रही है। हाँ, कम-जोर जरूर हो गई हो।"

"सच जीजी ? सच ? मैं पहले की तरह हूँ ? मेरी जीजी झूठ नही कहती, झूठ नही कहती।"

"मेरी बातो पर विश्वास नही हो रहा है ? लो अपनी माँ से पूछ लो।"

चौधरानी कुर्सी पर, जरा दूर बैठी थी, कहा—"मैं तो बिल्कुल नही समझी नन्दा, एला जाने क्या कह रही है ? बीमारियो मे कही चेहरा बदला है ? हाँ, कमजोर जरूर हो जाते है।" उसके मुख की नसे सिकुडी, शायद एला हँस रही हो।

"जीजी, जरा छोटा आइना तो दो, उस ड्रेसिंग टेबिल पर होगा, बगल वाले कमरे मे चली जाओ।" कहते-कहते एला रक्त वमन करने

लगी। चौधरानी चीख उठी। सुनन्दा ने कडी आवाज से कहा—"यह क्या कर रही हो मौसी ? चुप रहो।" दौड कर सुनन्दा चिलमची ले आई। फिर उसे लिटाया, वस्त्र परिवर्तन कराया, चिलमची साफ की।

ज़रा दम लेकर, लजा कर एला ने कहा—"आज मैंने जीजी के कपडे तक खराब कर दिए। चाबी मेरे सिरहाने से ले लो, आलमारी मे ढेर-सी साडियाँ हैं, पहन लो।"

"तुम बात मत करो एला, मैं सब कुछ कर लूँगी।"—पखा झलती हुई नन्दा ने पूछा—"किस डाक्टर का इलाज हो रहा है ?"

"किसी का नही।"

"क्यो ?"

"इस कुरूप चेहरे को देखकर सब लोग घृणा से मुँह फेर लेगे ना, मर जाऊँ तो मरने दो। लेकिन मै किसी की घृणा नही सहन कर सकूँगी।"

"हूँ" कहकर नन्दा उठी। दास-दासी यथेष्ट थे। एक को डाक्टर बुलाने भेज दिया, दूध गरम करवाया और आकर पुनः अपने स्थान पर बैठ गई।

"दूध पीलो एला।"

"इच्छा नही है जीजी।"

"पीलो, बडी अच्छी है मौसी, अपनी एला।"

उसने दूध पी लिया।

"तुम कहाँ जा रही हो जीजी ? मत जाओ, मेरे पास बैठी रहो। नही, सब चले जाएँ तो जाने दो, तुम, बस तुम न जाना जीजी।"

"अभी आई एला, तेरे लिए फल मँगवा लूँ।"

"नही-नही, मैं नही खाऊँगी, कुछ अच्छा नही लगता।"

"अभी आई।"—कहकर सुनन्दा उठी, बाहर आई, नौकरो से फल मँगवाया। नर्स की व्यवस्था की।

कई डाक्टर पहुँच गये। भली भाँति रोग की परीक्षा शुरू हुई। एला ने बहुत आपत्ति की। परन्तु सुनन्दा ने एक न सुनी।

बाहर निकल कर डाक्टरो ने कहा—"रोग यद्यपि कठिन है, अवहेलना से प्राय. चरम मे पहुँच रहा है। परन्तु तपेदिक नही है। रक्तपित्त है।" दो नर्स तथा पथ्य की व्यवस्था कर सुनन्दा उठी।

अधीर स्वर से एला ने कहा—"तुम—तुम भी मुझे छोडकर चली जीजी ?"

'नही री पगली, मै तो रोज आया करूँगी, और जरूरत पडी तो यही आकर रहूँगी, आज अभी न जाती, लेकिन मनीश बाबू को देखना है।"

"क्यो ?"

'वे भी बीमार है न।"

सुनन्दा और चौधरानी कार के भीतर बैठी—एक दूसरी से सटकर। परन्तु उन दोनो के कठ मे स्वर जैसे मूर्च्छातुर था। मौनता मे पथ अतिवाहित होने लगा। लग रहा था चौधरानी को बात करने को, कहने-सुनने के लिए जैसे सब कुछ चुक गया है। अब उसके निकट कुछ भी अवशिष्ट बच नही पाया है। सब कुछ का अन्त हो चुका है, चुक गया है—शेष, नि शेष होकर। और सुनन्दा के मन का पता ? वहाँ का पता लगाना तो सब दिन की भाँति असम्भव ही रहा है।

हठात् चौधरानी अवरुद्ध स्वर से कह उठी—"थायशीष जैसा भयानक रोग है, अब मेरी बच्ची नहीं जीने की। दो-चार नही बस एक यह एला ही थी, लाडली, दुलारी, मेरी एला, वह भी चली।"

उसके झरते हुए आँसुओ को पोछकर नन्दा ने कहा—"थायशीष, थायशीष तुम क्यो कर रही हो मौसी ?"

"उसी पाजी रोग ने तो मेरी एला को मौत के मुँह तक पहुँचा दिया है।"

"नही। क्या डाक्टरो का डायगोनेसस तुमने नही सुना ?"

"क्या कहा उन्होने ? मै तो एला के पास से उठी नही। क्या कह गये वे नन्दा ?"

"थायशीष नही, रक्तपित्त है, खाँसी उसे कहाँ है मौसी ? अब भी समय है। सेवा, चिकित्सा से वह अच्छी हो सकती है।"

"सच नन्दा ? उसे थायशीष नही है ? लेकिन मुझसे तो लोगो ने वही बतलाया था, और आज उस हड्डियो के ढाँचे को देखा, मुँह से खून निकलते भी देखा। तो क्षय नही है ?"

"नही। कहा न मौसी, कि अब सेवा और यत्न की जरूरत है। घर जाकर चौधरी साहब को सब बाते कहो। हुक्म कैसे नही है ? मैंने तो सुना है कि चौधरी साहब को आपत्ति होते हुए भी तुमने अपनी जिद्द पर एला को लिखाया-पढाया था। तो जब उन छोटे-मोटे कामो को कर सकी थी, तब लडकी के ऐसे सकट पूर्ण वक्त पर, हाँ जबकि उसके जीने और मरने का प्रश्न है, तब तुम किसी के हुक्म की प्रतीक्षा करोगी ? नही, मौसी, तुम माँ हो और तुम हो, बीस-पच्चीस वर्ष पहले की वही चौधरानी जी, तुम सब कुछ कर सकती हो, किसी का हुक्म लडकी के मरन-सेज पर तुम्हे नही रोक सकता है। चौधरी साहब को साथ लेकर आज ही एला के पास जाओ, यदि डाक्टर एला को उठाने की इजाजत दे तो उसे उठाकर घर ले आओ।"

चौधरानी घर पर उतर गई।

श्रीनाथ के घर पहुँचते-पहुँचते नन्दा को दो बज गए। मनीश आराम-कुर्सी पर पडा अखबार पढ रहा था। नन्दा को देखकर उसने अभिमान से मुँह फेर लिया, किंतु दादू ने भी जब वैसा ही किया, तब सुनन्दा हँसी रोक न सकी। करुणा भरी वह हँसी, अपनेपन के अधिकार के गर्व मे गर्वित वह हँसी। हँस सकने से उसका जी कुछ हल्का हुआ।

उसे हँसते देखकर मनीश भयानक चिढा ।

अब सुनन्दा अपनी देरी होने का कारण बतलाने लगी ।

"अब और भी एला के पास जाने की तुम्हे क्या जरूरत है भाभी ? उसके माँ-बाप, पति और पैसा, सब तो जरूरत से ज्यादा है ।"

श्रीनाथ बोले—"उपरान्त वह बीमारी खराब है, अगर तुम्हे भी हो जाए लक्ष्मी तब ?"

नन्दा मुसकराई, "नही दादू ।" और मनीश से बोली—"यदि उसे अपने जन सब लोग त्याग कर दे, तो अकेली उसे रोग-यातना से छटपटाती हुई मरने दिया जाए ? आदमी होकर दूसरे एक आदमी के सकट मे सब कुछ जानती हुई भी दूर हटी रहूँ ?"

"गलती है भाभी । ठीक उसे अपने आप किसी ने भी नही त्यागा, वरन् स्वय एला ने सबको त्याग रक्खा है । अब उसके साथी न तुम हो, न हम लोग । साथी है बस वही सिनेमा-ससार । फिर तुम क्यो बेकार सिर-दर्द मोल ले रही हो ?"

"कैसी बाते करते हो मनीश बाबू ? यदि आदमी, आदमी के काम न आए, तो वह आदमी कहलाने के योग्य नही ।"

झुँझलाकर मनीश कहने लगा—"न जाने तुम काहे की बनी हो भाभी, लोहे की या पत्थर की, कौन जाने । इसी एला की माँ ने एक दिन तुम्हें बिना कसूर त्याग रखा था । देखकर मुँह फेर लिया करे, न जाने कैसी-कैसी मजाक करे, और आज उन्ही चौधरानी की सिनेमा-ऐक्ट्रेस तथा घर से भागी हुई लडकी की तुम सेवा करो ?"

"सच बात है मनी, बिना दोष के मेरी लक्ष्मी से वे घृणा करती, वे और नलिनी टीका-टिप्पणियाँ काटती, फिर उन्ही की लडकी की तू सेवा क्यो करे ? पाकिस्तान मे न जाने कितनी ही बेचारी सती-लक्ष्मी का सर्बनाश हो गया । मेरी चले तो मुसलमानो को तोप से उडा दूँ ।"

खिन्न हँसी नन्दा—"दादू, उन बेचारो का क्या दोष ? हम अपने घर

को तो पहले देखे, मुसलमानो का पाकिस्तान का अत्याचार कह-कहकर हम चिल्लाते है, किन्तु हमारे घर मे, पर्दे की आड मे एक अमानुषिक अत्याचार गढकर तैयार हो रहा है, और हो भी रहा है, उसकी भी कुछ खबर है ?"

"कैसा ?"

"यानी पूँजीपतियो का अत्याचार। आज हमारे समाज की बाग-डोर उन्ही पूँजीपतियो के हाथ मे है। आदमी भूखो मर रहा है। सुन्दरी युवति छीनी जा रही है। काले बाजार ने विश्व के हर्ष को ग्रसित कर रखा है। क्या तुम सोचते हो दादू, अत्याचार की अग्नि एक तरफ सिमटकर रह जाएगी ? नही, एक दिन वह आग्नेय गिरि का विस्फोट होकर ही रहेगा। किन्तु खेद ! तब शायद हमारा घर सूना हो जाए। कौन जाने ?"

श्रीनाथ और मनीश सिर हिलाते हुए हूँ-हूँ करने लगे।

नन्दा अपनी धुन मे कह चली—"समझे दादू ? पहले तो हम अपना घर सँभाल ले, पाकिस्तानी अत्याचार ? वह तो होने को ही था। किसी भी राष्ट्र के निर्माण के समय उथल-पुथल, उलट-फेर कुछ हुआ ही करता है। कह रही थी यह पूँजीपतियो का खेल, यह तृष्णा।" जरा रुककर वह पुन बोली—'सोचती हूँ दादू,—उनकी यह कैसी तृष्णा है। रुपयो के पहाडो के नीचे वे दब चुके है, तो भी चाहिएँ रुपये। काले बाजार का व्यापार खोल रखा है। निर्धन अशक्त भूखो मर रहे है—अन्न और वस्त्र के बिना उन्ही की मेहनत-मजदूरी से उपजाए हुए अन्न धनी व्यापारी काले बाजार की बदौलत से खरीद रहे है। हमारे ही देश का वह अन्न दूसरे देशो मे जा रहा है। और हम श्रमिक हाहाकार को हृदय मे दबाकर, भूखो मर रहे है। यदि भूख से बच भी गये तो अस्वस्थकर घर मे रहने, अपुष्टिकर और हानिकर भोजन करने तथा अति परिश्रम से या तो हम तपेदिक के रोगी बन रहे है, या मलेरिया आदि के।"

"ओ भाभी, जरा चाय तो पी लो।"

सुनन्दा मुसकराई—"क्यो तुम्हे पीनी है ?"

"तीन बज गए है, कुछ ख्याल भी है ?"

नन्दा चाय बनाने चली तो मनीश ने कहा—"सूखी चाय तो मैं नही पीता।"

"नही जी, सूखी चाय क्यो पिलाऊँगी ?"

"जाने कब से अण्डे के समोसे खाने को नही मिले।"

"ऐसा क्यों नही कहते कि अण्डे के समोसे खाने है। अभी बनाकर लाई।"

श्रीनाथ ने पूछा—"अब एला के पास कोई तो होगा न ? नलिनी तो जरूर ही होगी।"

"नही।"

'नही ?" श्रीनाथ अत्यन्त विस्मित हुए—"वह तो दिन-रात चौधरी साहब के घर रहने वाली है न ?"

"है तो, परन्तु तुम भूलते हो दादू।"

"क्या ?"

"वह एला के घर कैसे आ सकती है ?"

"क्यो भला ?" मनीश ने पूछा।

"क्यो ? वह सभ्य समाज की सभ्य सती है न।" मुँह मोड कर हँसती हुई सुनन्दा चल दी।

३०

बेदाने का रस चम्मच से एला को पिलाती हुई सुनन्दा ने कहा—"कहो—कहो, रुक क्यो गई ?"

सन्ध्या धरती पर उतरती चली जाती, दिन की नर्स अपनी ड्यूटी

शेषकर चली गई। रात वाली नर्स तब तक नही पहुँची थी मनीश के निषेध पर नन्दा दो दिनो तक नही आ सकी एला के घर। सर्वदा मनीश उसे व्यस्त कर रखता। कहता—"भाभी, आज रसगुल्ले खाना है। बाजार के नही, तुम बनाओ, कभी कहता पानी दो। बापरे, सिर फटा जा रहा है मारे दर्द के, जरा बाम मल देना।" उसे उठते देखकर कह देता—"साबुदाने का पुडिंग तो हल्का होता है भाभी, बना दो।"

आज वह अपने बगीचे को देखने के बहाने भागी तो सीधे एला के घर पहुँची। वहाँ उसने सुना कि चौधरी साहब और चौधरानी नित प्रात-सन्ध्या उसे देख जाया करते है।

एला धीरे-धीरे कहने लगी—"जीजी, क्या तुम सचमुच ही ज्योतिष जानती हो?"

"क्यो भला?"

"तुम्हारी बातो को सोचती हूँ तो मैं दग रह जाती हूँ। तुम्हारी सब बाते सही निकली।"

"क्या बात है एला।"

"बात? सिनेमा-ससार तो बस अलाउद्दीन का चिराग ही है। रूप और यौवन का साथी। पलभर मे क्या हुआ, मैं कुछ नही जानती। चेचक निकलने से बेहोश थी। नौकरो ने अस्पताल शायद भेजा हो। शायद महीना भर के बाद घर आई हूँगी। तब ठीक से उठ भी कहाँ सकती थी।"

"चुप क्यो हो गई? कहो—कहो।"

"यही वह पलग है। नौकरो ने तकिए के सहारे बैठा दिया था।" एला के मौन मुख को देखती हुई नन्दा ने कहा—"एला रानी, यदि कहने मे कष्ट होता हो तो मत कहो।"

कुछ देर आँखे बन्द कर पड़ी रही एला। फिर हठात् कह उठी—"नही, आज मैं सब कुछ तुम्हे कह सुनाऊँगी। मैनेजर साहब और उनके

साथ कई लोग मुझे देखने पहुँचे, हाँ, इसी घर मे तो वे सब आए थे। पहले जाने कितने बार आए होगे। बैठकर चाय पीते रहे, घण्टे के बाद घण्टा बीतता चला गया। लेकिन उस बार उनका आना बडा ही विचित्र रहा।

"मुझे उन सब ने देखा। तब आश्चर्य, मैंने उनके पल भर मे परिवर्तित मुख भाव को देखा। नही, मै समझा नही सकूँगी जीजी, कि वह कैसा परिवर्तन था।

"विक्टर ने? अजी उसने तो चेचक निकलने के बाद ही से मेरे घर आना छोड दिया था।

"हाँ, मैनेजर आदि आए। शायद कुछ कुशल-मगल पूछी हो, मुझे याद नही। बहुत जल्दी चले गए। उनके व्यवहार से मै विस्मित हुई जीजी। आखिर बात क्या है? सोचती रही। लेकिन मेरी समझ मे कुछ न आया। मैने आइना मँगवाया। आइना मेरे हाथ मे था। मैने उसे अपने मुँह के सामने उठाया, हाय जीजी, वैसी कुत्सित आकृति शायद ही कभी देखी हो, आइना टूटने की आवाज से नौकर-चाकर दौड आए। और तब—आह जीजी, सीने का यह दर्द।"

एला के मुँह से रक्त की धार बह निकली। सुनन्दा ने यत्न से धो-पोछ कर उसे लिटा दिया। कहा, "ज्यादा मत बोलो एला, देखती नही हो, तुम्हारे बोलने से कैसी हानि पहुँच रही है? क्यो, डाक्टर इन्जैक्शन लगा गए थे?"

"लेकिन क्या होगा अब इन्जैक्शन से? बोल लेने दो जीजी। फिर शायद बात भी न कर सकूँ। तुम मत उठो, बैठकर मेरी बात सुनो। बहुत पैसा जोड लिया है मैने! मरते वक्त जान लिया है जीजी, पैसो से सुख नही खरीदा जा सकता।"

"सुनो तो एला, जरा चुप रहो।"

"बोल लेने दो जीजी, अब चुप ही तो रहना है। सब बाते, मेरी

दर्द भरी कहानी सुना लेने दो। तुम-सी जीजी कहाँ मिलेगी, जिसे दिल खोलकर सब कुछ सुना सकूँगी ? हाँ, आज मैने वकील को बुलवाया है। विल बनवाना है। मुझे सम्पत्ति दान करना है तुम्हारे तत्वावधान मे, उन रुपयो से तुम पतिता स्त्रियो के लिए ऐसा कुछ बनवा देना, जिससे वे बेचारी, जिन्होने न समझकर जिन्दगी मे भूल की हो और पीछे जब अपनी गलती समझकर रो पडी हो, और जब उनके लिए सब दरवाजे बन्द कर दिए गए हो, एव उसी एक छोटी गलती को बडी गलती बनाकर जिन्दगी को भूल ही भूल मे बहने देने का बस एक ही रास्ता उनके लिए खोल दिया गया हो। उन स्त्रियो के लिए, ऐसी नारियो के लिए ऐसा कुछ बनवा देना जीजी, जिससे वे आराम से जिन्दगी बिता सके। और वह एक भूल अनेक भूलो की सृष्टि मे उन्हे ढकेल न सके। वे—अपनी भूलो को समझकर उसे सुधार सकने का समय पाएँ।" एला हाँपने लगी।

गम्भीर मनोयोग से सुनन्दा जोकि अब तक उसे देख रही थी, उसकी बाते सुन रही थी, वह सहसा ही पूछ उठी—"तेरा जी और क्या करने को चाहता है एला ? क्या और किसी को देखने की, किसी से बाते करने की इच्छा होती है। कहो। हाँ, सच कहो एला रानी।"

"मेरा !"—वह लजा कर चुप हो गई।

सुनन्दा ने देखी वह लज्जा की लाली। कुछ समझी हो शायद, कहा—"अपनी ही जीजी से और लजाना ?"

मुँह नीचे किए एला बोली गुनगुनाकर—"क्यो इसी को प्रेम कहते है। कौन जाने ?"

"एला चुप मत हो।"

परन्तु एला चुप ही रही आई।

"और मुझी से शर्म। कह डालो बहन ! अन्तत मुझे तेरी सब बातो से जानकार हो लेने दे।"

"कहूँ ?"

"कहो-कहो।"

"कुछ दिनो से उन्हे देखने के लिए जी चाहता है। लेकिन यह प्रेम भी कैसा ? जिस व्यक्ति को मेरे लिए तिल बराबर भी चाह नही, न रही ही है किसी दिन, और ऐसे एक पर मेरा प्रेम ! अपने आपको डॉटती हूँ, धमकाती हूँ, छि: । उनकी बाते न सोचो।"

"और तब !"

"वही तो कहना है तुम से। घर छोड कर आने के बाद से न जाने क्यो मेरा जी उदास हो उठता है। न जाने क्यो उनके लिए रात की चुप्पी मे जी जाने कैसा करने लगता है। क्या इसे ही प्रेम कहते है जीजी ?"

रोमाञ्चित सुनन्दा चुपचाप सुनने लगी, सुनती रही और सुनती ही रही आई। जैसे इस सुनने का अन्त ही न हो।

एक समय सुनन्दा उठकर खडी हो गई। कहा—

"जा रही हूँ, कल आऊँगी।"

"इतनी जल्दी जाओगी ?"

"तुम्हारे वकील तो आते ही होगे। मै रहकर क्या करूँ ? कल जरूर आऊँगी।"

सुनन्दा एक प्रकार भागती-सी कमरे से बाहर निकली, घर गई। जल्दी-जल्दी काम किया।

कल्पना मचलने लगी—"मुझे रोज-रोज अकेली छोडकर चल दिया करती हो जीजी। आज न जाने दूँगी।"

हँसकर नन्दा बोली—"क्यो, डर लगता है ? शहर मे कही शेर-शेरनी आया करते है ?"

"वाह जीजी। क्या मै जानवर या आदमी से डरती हूँ।"

"तो ?"

"अकेले अच्छा नही लगता न जीजी ।"

"किन्तु तुमने तो अकेला जीवन ही पसन्द किया है । चुन लिया है । साथी तो तुमने माँगा नही । फिर दूसरा कहाँ से आए ! मैं ? और चिर दिन मैं जीवित रही आऊँगी, ऐसी भी कोई बात नही । तब ? तब क्या करोगी कल्पना ?"

"तुम बहुत खराब हो जीजी, मरने-जीने की बात क्यो ?"

दोनो हँसी, दोनो ने साथ-साथ भोजन किया और नन्दा चल दी।

उस अपवेला मे जब नन्दा एला के घर पहुँची, तब चौधरी साहब सपत्नीक पहुँच चुके थे । सुनन्दा के साथ श्रीनाथ थे । एला की दशा खराब थी ।

नन्दा एला के निकट पहुँची । धीरे से उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी, एला ने धीरे से मस्तक उठाकर नन्दा की गोद मे रख दिया । चौधरानी रूमाल से आँखे पोछ रही थी । हाथ हिलाकर दरवाजे पर से नन्दा को बाहर बुलाया । तकिया पर एला का मस्तक रख कर वह उठी, कहा—"अभी आ रही हूँ एला ।" नन्दा बाहर गई ।

आँसू बहाती हुई चौधरानी ने नन्दा का हाथ पकडकर कहा—"बेटी, विपद के दिनो तो तुम्ही काम आती हो, और आ रही हो । एला की अन्तिम इच्छा यदि कोई पूरी कर सकता है, तो वह तुम । कौन जाने शायद आज की रात न कटे ।"

"किन्तु मुझे विश्वास है, एला अच्छी हो जाएगी । दरवाजे पर नर्स मिली थी, कहती थी आज खून बिल्कुल नही गया । क्या कह रही थी मौसी ?"

"तेरी बात सच निकले नन्दा । जरा पहले डाक्टर आये थे, वह कह रहे थे—वह इतनी कमजोर है, तिस पर हार्ट खराब हो रहा है । हो सकता है कि चाहे किसी वक्त फेल हो जाए । बडी सावधानी से रखने को कह गये है ।"

"ऐसा ? ईश्वर सब कुशल करेंगे। क्या कह रही थी मौसी ?"

"एला की अन्तिम इच्छा रवीन्द्र को देखने की है। उसने मुझसे कल कहा था। मै और चौधरी साहब तुरन्त उसके घर गये, विनय की, लेकिन वह नही आया, ऐसा पत्थर-दिल आदमी मैंने तो नही देखा नंन्दा।"

फिर सुनन्दा के दोनो हाथ पकडकर बोली—"नन्दा बेटी, तुम एक बार जाओ, मुझे विश्वास है, जिस काम पर तुम हाथ दोगी, वह सफल होकर ही रहेगा।"

नन्दा का मस्तक अपने आप नत हो गया। आज दुनिया उसे किस असाध्य साधन करने के लिये बाध्य कर रही है ?

"नन्दा मेरी बेटी, एक बार चेष्टा करो।"

नन्दा ने मुँह उठाया—"मौसी मुझे माफ करो ! यदि मेरी जान भी एला के लिए जरूरत हो तो देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु वहाँ जाने को न कहो।"

चौधरी साहब ने आवाज लगाई—"तुम कहाँ गई ? सुन रही हो ? सुनन्दा देवी को एला बुला रही है, उन्हे भेज दो।"

नन्दा पुन एला के निकट बैठ गई।

नन्दा के हाथ पर अपने अशक्त हाथ को रखकर एला मृदु मृदु कहने लगी,—"जीजी, उन्हे नही देख पाऊँगी ? बिना देखे ही मरूँगी ? मेरी जीजी ! केवल दूर से एक बार देखना है।"

नन्दा शून्य दृष्टि से केवल उस मृत्यु-मलीन मुख का अनुनय सुनती रही। वह उन दीन नयनो की भिक्षा को देख रही थी, नन्दा का जी जाने कैसा कर उठा, उसे लगा, मृत्यु की छाया एला के कातरगत नेत्रो मे उतर आई है, एला का श्वास मानो पल-पल मे रुक रहा हो। नन्दा ने दाँतो तले ओठ दबाया—क्या वह मौत के दरवाजे पर पहुँची हुई इस एला की इच्छा पूर्ण नही कर सकेगी ? क्या वह अपने निजत्व,

अपने आत्माभिमान और अपनी सत्ता के गर्व मे दूर खडी रहेगी ? अह के अहंकार मे मस्त रही आएगी ?

सुनन्दा के अन्त.करण की किसी शक्ति ने मानो उसे झकझोर कर चेतन कर दिया। नन्दा ने तब एक विचारक की भाँति अपने निजत्व को हटाकर दूर कर दिया। और चुपचाप उठकर बाहर चल दी।

नही, उसने किसी को प्रश्न-उत्तर करने का समय ही कहाँ दिया ? चौधरी साहब की कार पर जब वह बैठ रही थी, तब मनीश दरवाजे पर पहुँच चुका था।

पूछा—"कहाँ जा रही हो भाभी ?"

नन्दा ने कोई उत्तर नही दिया।

३१

एक विचार-धारा मे वहती हुई सुनन्दा चली तो आई सीधे रवीन्द्र के दरवाजे तक, परन्तु उसके बाद ?

नन्दा ने झटके दे देकर जैसे अपने को सतर्क किया। गाडी पर से उतरी, कागज का टुकडा बैग से निकाला, उस पर अपना नाम लिख कर नौकर को दे दिया। खडी रही आई वह फाटक के लोहे की छडो को पकडे हुए। और जब उसका मन कुछ सोच सकने योग्य हुआ, तब उसके विस्मित नेत्रो ने देखा स्वय रवीन्द्र को। उसके स्वागत के लिए वह आया था।

पूर्ण मौनता मे दोनो अग्रसर हुए। कदाचित् उस एक ही मौनता मे गूगे, बहरे चित्र अतीत के चित्रित हो रहे हो, एक ही समय, एक ही पल मे और समान आयु लिये हुए।

"बैठो नन्दा देवी।"—मानो गहरे कूप से निकली हो रवीन्द्र की

ग्रावाज । उस ग्रावाज से सुनन्दा चौंकी । परन्तु बाहर वह चकित भाव प्रकाशित न हो पाया, सुनन्दा बैठी । बिना भूमिका बाँधे बोली—"ग्राप को जरा देर के लिए मेरे साथ चलना पड़ेगा ।"

"मुझे ? मै तैयार हूँ, लेकिन कहाँ ले जाना चाहती हो ?" नन्दा के मुँह का 'ग्राप' सम्बोधन रवीन्द्र के गड रहा था ।

"एक नारी की मृत्यु-शय्या पर ।"

"समझा । चौधरी साहब पति-पत्नी ग्राए हुए थे । वे कल ग्राए थे । क्या वही तुम ले जाना चाहती हो ?"

सुनन्दा जैसे क्रमश. ग्रपने को खो-सी रही थी, कहा—

"जी ।"

रवीन्द्र के जीवन मे विस्मय पर विस्मय ग्राता ही चला गया था सो ठीक है । सही है । परन्तु विस्मय ऐसा ग्रद्‌भुत, या ग्रसम्भव भी हुग्रा करता है, इस बात से उसका परिचय हो रहा था वह प्रथम बार ।

सोच उठा रवीन्द्र, यह सामने बैठी हुई नारी क्या वास्तविक नारी ही है ? जो कि स्वेच्छा से सपत्नी के सिरहाने ग्रपने पति को बुलाने के लिए ग्राई हुई है ? क्या इसका मन केवल फौलाद से बना हुग्रा है ? ग्रथवा पत्थर से ? माना कि विधि-विडम्बना से ग्राज वे दोनो ग्रलग-ग्रलग कर दिये गए है । एकदम ग्रलग, यहाँ तक कि वे दोनो शायद उस परिचय की छाया तक से ग्रब चकित हो उठते हो, ऐसा परिचय जो कि ग्राज सामाजिक प्रत्येक साक्षी को मिटाकर केवल मात्र दो ही हृदय की साक्षी मात्र मे सीमित रह गया हो । किन्तु एक दिन जो प्रेम की ग्रावाज उठी थी उन दोनो के मन मे उसका विनाश कहाँ ? वह तो मृत्युहीन है न ? मनुष्य के स्नेह का विनाश कहाँ ?

तो ? क्या इस नारी के मन का स्नेह एकदम जलकर राख बन गया है ? माना कि वह नन्दा की रक्षा न कर सका । एला से शादी तक करा ली । लेकिन वह मौखिक बिवाह ही क्या सब कुछ हो सकता

है ? नही-नही । आदमी हर वक्त जो मुँह से कहता है, उसका मन, हाँ मन से वह मुख का साथ नही देता । दृष्टान्त वह स्वय है । वरना अब भी सामने बैठी हुई नारी के लिए हठात् रवीन्द्र हँस उठा—"तो उसी एला के लिए मुझे बुलाने आई हो ? परन्तु मै उसे त्याग चुका हूँ ।"

सुनन्दा सहमी, अपने पल भर के गुमे हुए मन को उसने खोज निकाला । फिर स्वाभाविक गम्भीरता से कहा—"आपने त्याग दिया ? किन्तु एक दिन उसी एला को पत्नी और सहधर्मिणी कहकर ग्रहण किया था आप ही ने । यह तो असत्य नही है ।"

"ठीक है, लेकिन उसकी करतूतो ने उसे त्याग करने मे मुझे बाध्य किया था । उसे मैने त्याग दिया ।"

"कह रही थी, ग्रहण आप ही ने किया था ।"

"हाँ, लेकिन उससे क्या ?"

रवीन्द्र की झुँझलाहट नन्दा ने देखकर भी न देखी, सुन कर भी न सुनी । कहा उसने वैसे ही संयत स्वर से—"ग्रहण का जो एक प्राण हुआ करता है न, उसे कोई कैसे अस्वीकार कर सकता है ? उसकी मौत नही । क्या आप कह सकते है कि आपकी धमनी के रक्त मे वह कभी अपनी सत्ता का सन्देश नही दिया करता है,—हाँ ग्रहण का वह प्राण ?"

और तब रवीन्द्र के मौन मुख के प्रति देखती हुई बोली—"इन बातो को जाने दीजिए । आज का सत्य है—एक नारी अपनी मरन-सेज पर आपको देखना चाहती है, सो भी दूर से । केवल एक बार वह देखेगी—बस, मनुष्यता के नाते क्या इसकी आप अवहेलना कर सकेगे ?"

रवीन्द्र ने मस्तक अवनत कर लिया ।

उत्तर की प्रतीक्षा मे छोटी घडियाँ सुनन्दा के निकट दीर्घतर हो उठी । और एक समय वह उठकर खडी हो गई । रवीन्द्र को देखती हुई बोली—"चलिए, बस उठिए ।"

वही जिद्दी बालिका-सा पुरातन उस स्वर का आभास । दोनो ही

के अनजान मे वह आवाज शायद उनके मन को स्पर्श करने लगी। चौंक-चौंक कर, रोमाञ्चित होकर सुना उस आवाज को रवीन्द्र ने। देखा उस तेजस्विनी नारी को। और तब आच्छन्न की भाँति वह उठकर खडा हो गया।

"चलो, कहाँ लिये चल रही हो?" और रवि गुनगुना कर कहने लगा, मानो अपने आप को सुना रहा हो—आज भी उसकी आज्ञा की अवहेलना नही कर सका। कोई चीज चुककर भी नही चुकती, जिसे सोच लिया था शेष हो चुका है। किन्तु कहाँ? उस शेष का भी नि शेष अब भी बाकी है। मौजूद है। जिन्दा है। उस जिंदा को आज भी गला दबाकर मार कर मृत नही कर सक रहा हूँ। वह वैसे ही जीवित है। और अधिकारी? उसका शायद जीवन अस्वीकार के भी ऊपर हो। दिया हुआ अपनत्व वापस लौटाने का कोई मार्ग भी तो नही है। नही-नही। वरन् उस अपनत्व का दूरत्व, उसने उसे और भी निकट कर रखा है।

सुनते-सुनते सुनन्दा रोमाञ्चित हो उठी। उसके कठोर मन मे आँसू उमड पडे। मुँह फेरकर आगत आँसू को उसने छिपाया।

"चलो, कहाँ लिये चलती हो?" तब शायद रवीन्द्र सहम चुका हो।

"आप कपडे तो बदल लीजिए।"

"क्या जरूरत है?"

एला के पलग से जरा हट कर चौधरी साहब, श्रीनाथ, मनीश और डाक्टर आदि बैठे हुए थे। मृदु स्वर से बाते करते जाते। चौधरानी उसका सिर दबाती। नर्स दवा गिलास मे ढाल रही थी।

धीरे पहुँची सुनन्दा रवीन्द्र को साथ लिये।

"इधर आइए।"—उसने रवीन्द्र को कहा। और सीधे उस एला के पलग के निकट खडा कर दिया।

एला ने पति को देखा। उसके नेत्र-पल्लव झुक रहे। उसने फिर

देखा और फिर देखा। मूर्ति की भाँति खडे-खडे रवीन्द्र अस्वस्थता अनुभव कर रहा था और मन ही मन उसी परिमाण मे नन्दा पर चिढ रहा था।

निकट से सुनन्दा को जाते देखकर फुसफुसाकर कहा—

"अब देवी जी की क्या आज्ञा है ?"

सुनन्दा मुसकरा पडी। एला के निकट पहुँची। उसके कान मे लगा कर पूछा—"तुझे उनसे कुछ कहना है ?"

"नही, अब उन्हे जाने दो। मेरी इच्छा तुमने पूरी कर दी जीजी, उन्हे अब मत रोको। देखती नही, जाने के लिए किस तरह से छटपटा रहे है ?"

सुनन्दा रवीन्द्र के निकट पहुँची,—धीरे से बोली—"अब आप जा सकते है। और यदि जी चाहे तो बैठे हुए लोगो से बात कर लीजिए।"

झुँझलाहट भरी आँखो से रवीन्द्र ने सुनन्दा के प्रति देखा। और सब को नमस्कार करता हुआ द्वार के बाहर निकल गया।

सुनन्दा उसे पहुंचाने के लिए फाटक तक आई। बोली—"अनेक धन्यवाद।"

रवीन्द्र ने लौटकर कुछ कहना चाहा। और तुरन्त मुड कर चल दिया।

लौटी सुनन्दा कमरे मे। जैसे अभी-अभी कुछ खो आई हो।

चौधरी दम्पति गद्‌गद स्वर से बोले—"आज तुमने असाध्य साधन किया। ईश्वर तुम्हे चिर सुखी करे।"

सुनन्दा हँसी—व्यथा से भरी वह मलिन हँसी।

मनीश का तीक्ष्ण स्वर अद्‌भुत सुन पडा—"देखता हूँ इस बीच मि० गुप्ता से भाभी की खासी मित्रता हो गई है।"

खासी शब्द जिस जोर के साथ उच्चारित हुआ, उसका अतलस्पर्शी अर्थ किसी ने चाहे न समझा हो परन्तु जिसने समझा उसके मुख

भाव का जरा भी परिवर्तन नही हुआ। यो उस कमरे मे उपविष्ट प्रत्येक की दृष्टि मनीश पर आकृष्ट हो रही।

उस बात को समझने मे मनीश को देर न लगी। वह मन मे झुँझलाया। क्रोधित हुआ। उठा, और किसी से कुछ बिना कहे द्वार पर जाकर खडा हुआ।

उपविष्ट व्यक्तिगण एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उन दृष्टियो से बचती हुई सुनन्दा पीछे फिर कर स्टोव जलाने को बैठ गई।

३२

श्रीनाथ के बनारस जाने की तैयारी सुनकर नन्दा भी अपने छोटे से सूटकेस को सँवारे पहुँच गई—"मैं भी चलूँ दादू।"

"मैं बनारस जा रहा हूँ, बहन की क्रिया करने। शायद एक महीना लग जाए। उसकी सम्पत्ति की व्यवस्था करनी है। उनका था भी कौन ? बस एक नत् दामाद, कौन जाने दो-तीन महीना भी लगे, उतने दिन तुम रह सकोगी ?"

"क्यो नही। मुझे ले चलो दादू। यहाँ से ले चलो।"

उस आर्त स्वर ने श्रीनाथ को चौंका दिया, इस नारी के कठ मे ऐसा स्वर ?—"नन्दा—"

"लगता है मुझे—मैं थक गई हूँ, मेरा जी ऊब गया है। कुछ दिन बाहर रह आऊँ।"

"लेकिन तुम्हारे चलने से कैसे बनेगा ? मैं तो तुम्हारे ही भरोसे—मेरी गृहस्थी और मनीश को रखे जा रहा था।"

"किसी के बिना कुछ नही अटकता। सब कुछ चल जाता है दादू।"

"और कल्पना ?"

"मेरी बूढी कहारिन राधा है। उसे घर रख आई हूँ। कल्पना के लिए जरा भी चिन्ता न करो।"

श्रीनाथ ने चहुँओर सतर्क दृष्टि से देखकर कहा—बात यो है। कही हम दोनो के चले जाने से मनीश अपनी पुरानी आदत मे न लौट जाए। यानी शराब पीना न शुरू करे।"

"क्या वे अब बिल्कुल नही पीते ?"

"नही, बस उसी दिन से उसने छोड दिया है—जिस दिन तुम्हारे सामने उसने बोतले फोडी थी। और एक खुशखबरी सुनाऊँ। अब वह लडकियो के साथ सिनेमा या वाटिका आदि कही भी नही जाता। घर से निकलता कहाँ है ?"

"दिन भर घर मे बैठकर वे क्या करते हैं ?"

"कुछ लिखता रहता है।"

"ऐसा ? क्या लिखते है वे दादू ?"

'कौन जाने। मोटी-मोटी कापियाँ है। दिन-रात लिखा करता है। शायद कविता हो, नॉविल या तो कहानी हो। तुम नही जानती ? छोटे मे यह बडी ही सुन्दर कविताएँ लिखा करता था। कुछ मैंने देखी थी। अवाक् रह जाना पडा था लक्ष्मी इसकी प्रतिभा देखकर।'

"तब ?"

"बडा होकर इसने सब कुछ छोड दिया। और मै भी मानो उन बातो को भूल-सा गया था नन्दा।"

आज-जैसे सुनन्दा का नव-नव विस्मय के साथ परिचय हो रहा हो।

"तुम्हारे घर मनीश नही गया क्या ?" श्रीनाथ ने पूछा।

"बहुत दिनो से नही गए। एला की बीमारी मे मै कुछ ऐसी व्यस्त रही कि किसी की खोज-खबर तक नही ले पाई।"

"मै कुछ दिनो से उसे देखने नही जा सका। अच्छी तो हो रही थी। अब उसका क्या हाल है ?"

"अच्छी है, कमजोर बहुत है। धीरे-धीरे चल-फिर सकती है। बीमारी ने दादू उसके मन से लेकर आकृति तक सब कुछ का परिवर्तन कर दिया है।"

"ऐसा। देखो तो ईश्वर की लीला, किसी ने भी नही सोचा था कि वह बचेगी।"

"नई जिन्दगी हुई उसकी। इस जीवन मे वह फैशनेबुल रूप-गर्विता एला का—धन-शिक्षा के अभिमान मे दूसरे को तुच्छ समझने वाली लडकी का—एकदम ही परिवर्तन हो गया है। मै तो कभी-कभी उसे देख कर आश्चर्य करने लगती हूँ।"

"अगर पहले से उसे यह समझ आ जाती, तो आज रवीन्द्र उसका त्याग न करता।"

"क्या किया जाए। आदमी का मन भी तो एक पहेली है। जाने कब वह किस ओर मुड जाय। तुम जल्दी-जल्दी तैयार हो लो दादू। मै तब तक तुम्हारे कपडे, बिस्तर रख लूँ। रास्ते के लिए कुछ बना लूँगी।"

"क्या जरूरत है? डाइनिंग कार मे ताजा भोजन मिलता है। तुम साथ हो ही।"

"वे कहाँ हैं? मनीश बाबू?"

"आखिर वाले कमरे मे। किसी को वहाँ जाने नही देता।" चुपचाप नन्दा चल दी।

द्वार अन्दर से रुद्ध नही था। नन्दा ने धीरे से खोला। भीतर पहुँची। आराम-कुर्सी पर आँखे बन्द किए, अर्द्धदग्ध सिगरेट हाथ मे दबाए हुए मनीश पडा था। सिगरेट की राख कुर्सी के हाथ पर गिर रही थी, पहने वस्त्र मे एक गोल छेद्र था। शायद सिगरेट से जल गया हो।

पहुँची नन्दा भीतर। आँखे गडाकर चहुँओर देखा, पुकारा धीरे—"मनीश बाबू!"

मनीश आँखे मलता हुआ उठ बैठा—"यहाँ कैसे भूल पडी भाभी ?" कहते-कहते उसकी दृष्टि मोटी कापी पर पडी, उठा। शीघ्रता से कापी उठाकर अलमारी मे बन्द कर दी। ऐसी तत्परता से यह सब उसने किया, मानो लोकनेत्र के बाहर कोई अमूल्य वस्तु वह छिपाकर रखना चाह रहा हो।

कौतूहल से सुनन्दा उसके पीछे झपटी।

"क्या छिपाया तुमने।"—कहकर उसकी दृष्टि आकृष्ट हुई अलमारी के पल्ले पर जडे हुए दर्पण मे, जिस लम्बे-चौडे दर्पण मे अनिंद्य सुन्दरी नारी आकृति अकित हो रही थी। देखा और देखती ही रही आई नन्दा।

पहले शायद वह कभी दर्पण के सामने खडी होकर प्रसाधन किया करती रही हो, शायद अपने रूप मे वह कभी तन्मय भी हो जाया करती रही हो। और पति जब उसके रूप की प्रशसा करते-करते—"इतनी सुन्दर तुम क्यो हो नन्दरानी ? मुझे डर लगा रहता है। क्यो ? पूछ रही हो क्यो ? कभी अगर मुझसे हट जाओ, अगर मुझे भूल जाओ, किसी दूसरे को प्यार करने लगो तो ?"

कृत्रिम कोप से वह पति पर झुँझलाती और किसी बहाने वहाँ से उठकर ड्रेसिंग रूम मे पहुँचती, दर्पण के सामने खडी होकर अपने को एक बार देख लेती। सुन्दर-सुन्दर वह ऐसी रूपवती।

वे दिन ? दर्पण मे अपने को दस बार देखना ? वह सब तो कब का चुक गया है। तो उन बातो का स्मरण करना क्यो बच रहा है अब ? बस—उन देखे हुए स्वप्नो की अगहीन स्मृति।

सो इन दिनो शायद ही नन्दा कभी दर्पण के सामने खडी होती हो, माथे पर सिदूर भरती एक छोटा-सा आइना हाथ मे लेकर, सो भी अनाग्रह भाव से।

देखने लगी सुनन्दा अपने आप को नही; वरन् नारी को, नारी के

रूप को, देखते-देखते उसे मोह हो आया। मोहित उसका अन्तर मानो विश्व, ससार को भूल कर, बिसर कर एक नारी-चित्र की क्षुद्र परिधि मे भरम रहा।

• एक समय स्वय ही नन्दा अपने निजत्व मे पहुँची, मन झुँझला उठा।——क्या यह पागलपन है ? सो भी जीवन की अन्तिम वेला मे। और वह मनीश के निकट पहुँची, कहा——"बैठे ही बैठे सो गए ? कहो तुमने क्या छिपाया ?"

"चाहे जो हो।"

'ऐसा ? तो तुम मुझसे छिपाया भी करते हो ?"

"क्यो नही ? जब तक कि तुम अपना रहस्य, हर बातो को छिपा सकती हो, तब मै क्यों न छिपाऊँ ?"

"अच्छी बात है, लेकिन मै उस मोटी-ताजी कापी को देख कर ही रहूँगी।"

"ऐसा ! अच्छा देखे कौन जीतता है ? वह तुम्हे नही मिलेगी।"

"देखा जाएगा। हाँ, सुनो, दादू के साथ काशी जा रही हूँ।"

"तुम ? हठात् ऐसा वैराग्य ?"

"विचित्रताहीन जीवन, एक-सा वातावरण, ऊब गई हूँ मनीश बाबू।"

वह क्लान्त, श्रान्त स्वर, वह भी सुनन्दा लडकी के कठ मे ? विस्मय से मनीश ने आँखें उठाई, उसे लगा——नन्दा कमजोर हो गई है। स्वस्थ सबल देह मे जैसे घुन लगा हो और लगता जा रहा हो।

"बैठो नन्दा, क्या तुम बीमार थी ?"

मनीश की निकटवर्ती कुर्सी पर नन्दा बैठी, "नही तो।"

"बहुत कमजोर लग रही हो।"

नन्दा चुप रही।

"सचमुच जा रही हो भाभी ?"

"हाँ, थोडे दिन घूम ग्राऊँ न, जाऊँ ? तुम क्या कहते हो ?"

"जाग्रो, स्वास्थ्य तुम्हारा खराब हो रहा है। लेकिन जिन्हे तुमने पाल रखा है, उनका क्या होगा ?"

"पाल रखा है ? मैने तो कोई भी जानवर नही पाला।"

"पाला कैसे नही ? नम्बर एक कल्पना, नम्बर दो मनीश, नम्बर तीन एला, चार—झाड पेड।"

उसके कहने के ढग से नन्दा हँस पडी। बोली—"राजा के बिना राज्य चलता है, तो मेरी कौन कहे ? सब कुछ चलेगा।"

"तुम डरती नही हो भाभी ?"

"क्यो भला ?"—कौतुक से नन्दा ने पूछा।

"मुझे इस तरह लावारिस की भाँति छोड देना। बिना गार्जियन के अगर फिर मनीश अपनी उच्छृखलता मे लौट जाए। यह कौन कह सकता है कि तुम्हारे चले जाने के बाद वह फिर से शराब पीना शुरू नही करेगा ?"

नन्दा मुसकराई—"मै कह सकती हूँ।"

"क्या ?"

"मनीश अब शराब छू भी नही सकता।"

"क्यो ?"

"तब नन्दा भी शराब पीने लगेगी—उसी मनीश की भाभी।"

मुग्ध मनीश नन्दा को देखने लगा। देखते-देखते बोला—"रहस्यमयी सुनन्दा, क्या अन्त तक मेरे पास पहेली ही बनी रही आएगी ?"

"जल्दी क्या है ! एक दिन सब कुछ कह दूँगी।"

"वह एक दिन कब होगा ?"

"कभी होगा ही।"

मनीश चुप रहा। देर के बाद उसने पूछा—"तुम्हारे पति हैं, याने अभी जीवित हैं भाभी ? इतना तो कह सकती हो।"

"है ? वरना माँग किसके नाम पर भरती हूँ ?"

कौतुक-परिहास से मनीश बोला—"क्यो ? मेरे नाम से।"

नन्दा हँसते-हँसते लौटने लगी—"धत्, स्त्री का विवाह कहीं बार बार होता है ? एक बार होता है, बस सिन्दूर एक ही के नाम पर लगाया जा सकता है, दस के नाम पर नही।"

"क्यो भला ?"

"अजी तब उसका महत्व और पावनपन कैसे रह सकता है ?"

जरा चुप रहकर मनीश ने कहा—"अच्छा भाभी, सच तो कहो।"

"क्या ?"

"तुम्हारे मन मे अब भी पति के लिए प्रेम है ?"

हँसकर बोली—"ऐसी बाते नही पूछा करते।"

"न पूछूँ ?"

"नही।"

"अच्छा यह बतलाओ, क्या वे अब तक पाकिस्तान मे ही है, या हिन्दुस्तान मे ?"

"यह भला मै क्या जानूँ ?" सुनन्दा उठी, कहा—"जाने की तैयारी करनी है।"

"सचमुच जा रही हो ?"

"इच्छा तो है। क्या न जाऊँ ?"

"जाओ भाभी। तुम्हारे लिए वायु परिवर्तन की जरूरत है। लेकिन मजाक नही, अपने पालतू लोगो की व्यवस्था करती जाना। पीछे कही झंझट न हो।"

"उनके लिए मै सब कुछ बन्दोबस्त कर चुकी हूँ।"

"कर लिया है ? अच्छा किया।"

"मेरे जितने भी पाले हुए आदमी और गाय, भैस, पेड-पौधे हैं, उनकी देखभाल करेगा—मनीश।"

"मै ! ओ भाभी, मै ? क्या कह रही हो, मै ?"

प्रशान्त स्वर मे वह बोली—"तुम्हारे बिना तुम्हारी भाभी का दायित्व कौन सभालेगा ? कौन निभाएगा ? चलो, चाय पी लें।"

मन्त्रमुग्धवत् मनीश नन्दा के पीछे चल पडा।

३३

पन्द्रह दिनो की जगह जब तीन माह व्यतीत कर सुनन्दा घर लौटी, तब उसे अपने ही घर को पहचानने मे विलम्ब हुआ। उस गृह का मानो काया-कल्प हो गया हो। सफेदी-मरम्मत आदि तो किया ही गया। उपरान्त नीचे बडे-बडे कई कमरे, दालान बनाए गए थे। एव बगल वाली पडी हुई जमीन को मकान के साथ मिलाकर, सुव्यवस्थित कमरे आदि बने थे। उसकी गाय के रहने का स्थान तक सुन्दरता से बन गया, वहाँ मोटी-ताजी कई भैस, बकरियो को देखा। बगीचे की उन्नति हर्ष उपजाती थी।

नन्दा के गले से लिपटकर कल्पना रो पडी—"क्यो, क्यो तुम दादा जी के साथ नही लौटी ? क्यो तुमने इतनी देर लगा दी ? और मुझे इतने दिनो तक अपने से अलग रखा ?"

उसकी पीठ पर आदर से थपकियाँ देती हुई नन्दा कहने लगी—"वहाँ मेरा जी लग गया। वहाँ मेरे पाकिस्तान की एक सहपाठिनी मिल गई। उसने जबरन रोक लिया।" कल्पना से निपटी तो एला की बारी आई।

अब तक वह निकली नही थी, नन्दा को चकित कर देने के लिए छिपी हुई थी। पीछे मे उसने नन्दा की आँखे हाथो से बन्द कर ली—"कहो मै कौन हूँ ?"

"एला है तू।"

और इसके बाद एला मुँह फेरकर बैठ गई—"मैं तुमसे नही बोलती जीजी। कभी नही बोलूँगी, मुझे बीमार छोडकर आप बनारस में जाकर बसी। यह मेरी जीजी हैं, नही बोलती! जाओ।'

नन्दा ने उसे भी मनाकर शान्त किया। एला को देखकर नन्दा घर-द्वार के पूर्ण सस्कार का रहस्य समझ गई।

"जीजी, अब मैं यहाँ रहने लगी, उस घर को छोड दिया। कल्पना बहन से सख्त मनाई कर रही थी कि तुम्हे न लिखे। मुझे देखकर तुम आश्चर्य मे पडी थी ?"

किन्तु जिसे इतनी बाते कही गई, तब वह गम्भीर चिन्ता मे पडी हुई थी। और चिन्ता का विषय वही एला थी।

"जीजी, मेरे यहाँ रहने से तुम नाराज हो गई ?"

"यहाँ आकर शायद तुमने जन्म भर के लिए पति-गृह का द्वार बन्द कर दिया, अपने लिए एला!"

"खुला ही कब था। लेकिन क्यो ?"

"शायद कभी खुल जाता।"

प्रबल वेग से सिर हिलाती हुई एला बोली—"नही नही-नही, थोडे ही दिनो मे मैंने उन्हे जो कुछ जाना पहचाना, उसका निचोड तो यही है जीजी, कि सदा के लिए उन्होने मुझे त्याग दिया। और अगर न भी त्यागा होता और यहाँ रहने से वे मुझे त्याग देते तो मेरे लिए वह त्यागना ही वाछनीय होता। देवी के पावन मदिर को अगर कोई सकीर्ण गदी दृष्टि से देखे,—देखा करे, देवी के सेवको को इसकी परवाह नही करनी चाहिए। और रहा ही करती है। समझी जीजी ? तो भी पूछती हूँ—क्यो ?"

"यह तो एक पतिता का घर है न एला।"

एला खिलखिला कर हँस पडी—"देखा ? मेरा निष्कर्ष ठीक

निकला न ? इसका उत्तर मैने तुम्हे दे दिया है। तुम कहो चाहे न कहो, यो मेरे आने से तुम खुश हो, इस बात को मैं शपथ-पूर्वक कह सकती हूँ।"

अब हँसने की बारी थी सुनन्दा की, कहा—"यदि जानती थी तो पूछा क्यो ?"

"यह सुनने के लिए कि देखू, तुम क्या कहती हो। कितना अन्याय है जीजी, बिना दोष के पति ने त्याग दिया, फिर पिता ने अपने घर जगह देने से इन्कार किया। तो मैं जाती कहाँ ? जाऊँ कहाँ ? क्या गुब्बारे की भाँति शून्य मे लटकती रहती ?"

कल्पना बोली—"ठीक तो कह रही है एला।"

धीरे बोली सुनन्दा— 'बिना दोष के नही एला, अपना कसूर समझना सीखो। तुमने अन्याय किया, ग़लती की, वह तो मानना ही पडेगा। मैं मानती हूँ, घर से छिपकर एक-दूसरे आदमी के साथ चले जाना केवल लडकपन था, केवल उत्तेजना और सिनेमा का प्रलोभन ही रहा है। सबके निषेध की अवहेलना कर सिनेमा मे एक्टिग करना, यह सब अन्याय और हठकारिता है।"

"लेकिन जीजी, पूरी बाते तो देखो, मै अपना कसूर सर्वान्त करण से मानती हू, लेकिन दूसरो का क्या कुछ भी दोष नही है ? सोच कर देखो।"

"याने ?

"मुझे बचपन से जो शिक्षा मिली, सो तुम जानती हो, मैंने मनमाना नही किया, ममी सब मे उत्साह देती रही।"

"परन्तु पिता का निषेध रहा करता था।"—बीच मे नन्दा ने टोका।

"ठीक है, लेकिन मेरा आदर्श तो ममी ही रही न। उधर जिनसे शादी हुई, उन्होने मुझे क्या दिया ? केवल स्वार्थ, अवहेलना। अगर

वे मुझे प्रेम देते, स्नेह से अपना लेते तो शायद आज मेरी जिन्दगी बेकार न होती, मैं कुछ और ही होती। मेरी समझ मे बात अब तक नही आई जीजी, कि अगर उनके मन मे कोई एक घर किए हुए बैठी थीं, तो मुझ से शादी करने की, मेरी जिन्दगी बर्बाद करने की क्या जरूरत थी ? हो सकता है वह स्त्री उनके पहले की पत्नी हो या कोई और हो लेकिन मुझे क्यो घसीटा ? अपना कसूर मे मानती हूँ। क्या और सब निर्दोष हे ?"

न जाने क्यो सुनन्दा ने मस्तक अवनत कर लिया और मौन वह उठकर चलने लगी।

"कहाँ जा रही हो जीजी ?"

"मनी बाबू से मिल आऊँ।"

"अभी ? नही, पहले स्नान-भोजन कर लो, तुम बहुत कमजोर हो रही हो, क्यो भला ?"

"कुछ दिन बुखार आ गया था।"

स्नान-भोजन कर सुनन्दा श्रीनाथ के घर पहुँची, उनसे मुलाकात कर मनीश के कमरे मे गई। मनीश कही बाहर गया हुआ था, वह मोटी कापी पलग पर खुली पडी थी। नन्दा को बहुत दिनो से उस कापी का लोभ था। उसने कापी हाथ मे उठा ली, अधूरे लिखे हुए उपन्यास के पन्ने पलट-पलट कर देखने लगी, और मनीश के पलग पर तकिए पर मस्तक रखकर लेट रही।

उपन्यास का तब तक शीर्षक नही दिया गया था। उसने पढना शुरू कर दिया और पढने-पढते उसमे ऐसी खो गई कि सारा ससार ही उसके निकट शून्य हो रहा।

सध्या के आँचल मे केसर के फूलो से सब गृहस्थो के घर दीप जलना शुरू हो गया था। दिनभर आहार के अन्वेषण मे व्यस्त रहकर और गृहस्थो को दिक करके थके हुए कागो का जत्था बसेरा ढूंढता हुआ

इधर-उधर भागता चला जा रहा था। ऊँचे वृक्षो पर गिद्धो की टोली बैठती जा रही थी।

तब उस अधूरे उपन्यास को शेषकर स्वप्न मे सनी सी नन्दा ने कापी बन्द करने के साथ ही साथ आँखे भी बन्द कर ली।

कापी उसके उद्वेलित हृदय पर पडी रही आई। उसके बन्द नेत्रो के भीतर उसी का जीवन जैसे सिनेमा-चित्र की भाँति एक के बाद एक दूसरा और तीसरा सीन निकलता चला जाने लगा।

उसका अनुभव गम्भीरतर हुआ – यह मनीश बाहर से जो मात्र शिशु-सा ही लगता है, उसमे ऐसी विद्वत्ता, गभीर ज्ञान ही नही, वरन तीक्ष्ण जानकारी भरी पडी है! नही, ऐसा विस्मय तो जीवन मे कभी आया ही नही। सुनन्दा का जीवन-इतिहास, जोकि ससार के सामने आज तक एक रहस्य ही रह गया है, उस रहस्य को इस लडके ने एक्सरे मे दीखते हुए चित्र की भाति कब पढ डाला? कब और कैसे देख डाला?

"भाभी"

सुनन्दा ने आखे खोली। मनीश उसके निकट पलग पर बैठा हुआ था। नन्दा ने आँखे खोली सो ठीक है। उसे पहचाना, वह भी कदाचित् सही हो। किन्तु उन खुली हुई आँखो मे स्वप्निल छाया अन्तर्धान नही हो पाई थी।

"भाभी—ओ भाभी।" नन्दा को हिलाकर वह पुकारने लगा।

"तुम तुम मनीश बाबू! इस कलाकार को कहाँ पर अब तक छिपा रखा था तुमने?"

"भाभी।"

"पूरा करो। इस कहानी का अन्तिम परिच्छेद शेष करो। मनीश बाबू ..शेष-शेष?"

"लेकिन जल्दी क्या है?"

"और मुझे तो जल्दी है।"

मनीश ने आँखे गडाकर नन्दा को देख, सिहर उठा "इतनी कम-जोर तुम्हे आगे कभी नही देखा था। यह क्या हो गई हो नन्दा रानी ?"

"कुछ नही, कुछ नही। अन्तिम परिच्छेद ··"

और वह मनीश को देखने लगी।

"क्या देख रही हो भाभी ?"

"मै देख रही हूँ सुनन्दा की जीवनी लिखने वाले ससार के श्रेष्ठ कलाकार को। विस्मय ! तुमने मेरी प्रत्येक बात को कैसे जान लिया ?" नन्दा उठकर बैठ गई।

मनीश ने पुन. पूछा —"क्या तुम बीमार थी।"

"ऊँहूँ।'

"ऐसी कमजोर ! जरूर तुम्हें कोई तकलीफ है। अपने ही मनीश से न बतलाओगी भाभी ?"

और मनीश की भाभी तब अपने आप मे लौट चुकी थी।

"वहाँ का पानी कुछ खराब था। देखना, अब ठीक हो जाऊँगी।"

श्रीनाथ ने दरवाजे पर आकर पुकारा—"लक्ष्मी ! आज हम साथ मे बैठकर खाना खाएँगे। कही चली न जाना।"

"अच्छा दादू।"

३४

दीर्घ दिनो के बाद मनीश सुनन्दा के घर पहुँचा। सो भी नन्दा के निमत्रण से। एला तथा कल्पना के वहाँ जाने के बाद से उसने नन्दा के घर जाना एक प्रकार छोड ही दिया था।

उस घर का परिवर्तन देखकर वह विस्मित हुआ। श्रीनाथ कल्पना

के साथ घूम-घूम कर बगीचा आदि देखने लगे।

हँसमुखी सुनन्दा पहुँची, कहा—"आज कल तो मनीश बाबू गूल का फूल बन रहे हैं। बिना निमन्त्रण आते ही नही।"

उत्तर देने जाकर मनीश स्तब्ध हो रहा। एला पान की तश्तरी लिए पहुँच गई। किंतु उस एला की वेश-भूषा से लेकर आमूल परिवर्तन तक को देखने का अवसर मनीश को नही हो पाया। सुनन्दा को देखकर मनीश के मुख पर खेद, आशका का चिह्न स्पष्टतर हुआ।

"अजी, यह भी कोई देखना है ? तुम मुझ मे क्या देख रहे हो ? क्या कभी भाभी को देखा नही ? नई बन गई हूँ ?" सुनन्दा हँस रही थी।

"ककाल का ढाँचा मात्र रह गया है। उसी ढाँचे को देख रहा हूँ। इस मरती हुई भाभी से मेरी पहचान नही थी।"

नन्दा ने उत्तर नही दिया, उत्तर दिया एला ने—"आप ठीक कह रहे है मनीश बाबू, जीजी बहुत कमजोर हो गई हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी बेहोश हो जाती है, खाना खाती ही नही, 'भूख नही है', कह देती हैं। और काम के बिना जिस जीजी का पल भर समय नही कटता था, वही जीजी शाम हुई कि बस बिस्तर पर लेट जाती हैं, देखा—आपने ? इनके मुँह पर सूजन है।"

"दादा जी तो यहाँ आते रहते है। आश्चर्य, वे कुछ नही कहते ! न मुझ से कुछ कहा।"

"वे बेचारे सदा कहा करते है, वैद्य जी को लिवा लाएँ। लेकिन जीजी ने हँसकर टाल दिया। अपनी नब्ज तक नही दिखलाई।"

"हूँ"—? मनीश ने, बस 'हूँ' ही कहा। एला पान की तश्तरी रखकर चली गई।

"आत्महत्या कर रही हो नन्दा ? लेकिन किस लिए ?"

मनीश के प्रश्न को नन्दा ने सुना और जरा-सा मुस्करा कर बोली—"तुम्हारे लिए।"

चाहे रहस्य से वह बात कही गई हो, या सच हो। मनीश चौक उठा।

"मैं आत्महत्या कर रही हूँ। यह सूझ क्यो कर हुई ?"

"देखो भाभी, चाहे तुम कितनी ही बुद्धिमती क्यो न हो, लेकिन मुझ से छिपा न सकोगी। मैंने तुम्हे शायद कुछ-कुछ पहचाना है। तुम्हे ऐसी कौन-सी जरूरत पड गई जो तुम इस तरह अपनी जान देने के लिए बैठी हो ?"

हँसकर सुनन्दा ने उतर दिया—"जरूरत भी कही—कह सुनकर, सोच-समझकर होती है ?"

"हूँ, क्या मै सुन सकता हूँ, इस आत्महत्या का सच्चा कारण क्या है ?"

"तुम हो, बस तुम्हारे लिए आत्महत्या की जरूरत पड गई है।" नन्दा हँसती हुई बोली।

"लेकिन क्यो ? एक नीरव उपासक के लिए इसकी क्या जरूरत थी भाभी ?"

"किन्तु नीरवता का जो प्राण है, हुआ करता है और होता है सर्वग्रासी एक मौन आकर्षण। जानते हो न उसे ?"

मनीश ने पूर्ण दृष्टि से उसे देखा। अपूर्व तृप्तता से उसके मुख की रेखाएँ सरल हो उठी, पुकारा—"भाभी।"

"कैसी मुश्किल है ? अजी, मैं किसी के लिए नही मर रही हूँ, न तुम्हारे लिए, न कल्पना के लिए, न ही एला के लिए। बीमारी है। बस भूख नही लगती, आलसता मे शरीर और मन डूबा रहता है। बस, जरा-सी तो बात है।"

'हूँ।'' कहकर मनीश उठा।

सुनन्दा द्वार रोक कर खडी हो गई। "मै तो मर मरकर इनके लिए भोजन बनाऊँ और यह चलने लग गये। वाह ! यह भी कोई मजाक है ?''

"हटो भाभी।"—कहकर मनीश ने नन्दा का हाथ पकड कर उसे

हटाना चाहा। उसके गरम शरीर का स्पर्श कर वह सिहर उठा—

"तुम्हे बुखार भी रहता है ?"

"नही तो ।"

"नही क्या ? खासा बुखार है। हटो, पहले डाक्टर को लिवा लाऊँ, तब स्नान-भोजन करूँगा ।"

"खाना खराब हो जाएगा ।"

"जाने दो । अभी आया ।"

सुनन्दा श्रीनाथ तथा मनीश को हँस-हँसकर तरकारियाँ परस रही थी—"छना की तरकारी तो और ले लो दादू। तुम्हे यह ज्यादा पसन्द है। और मछली का दम मनीश बाबू तुम्हारे लिए बनाया है। जानो तो सही पुलाव किस चीज का बना है ? कह न सके न ? चावल के साथ यह जो डाले हुए है, यह गोश्त मछली कुछ भी नही हैं, इन्हे गुच्छी कहते है। काश्मीर मे यह पैदा होते है। खाओ न ।"

"आज डाक्टर ने जो कुछ कहा है लक्ष्मी, उसके बाद खाना खाने की इच्छा बिल्कुल ही जाती रही है ।"

"दादू, तुम भी डाक्टर की बात मानते हो। डाक्टर लोग तो कुछ न कुछ कहा ही करते हैं, तभी तो मैंने अब तक डाक्टर नही बुलाया।"

"भाभी तुमने बुद्धिमानी का काम किया। कही डाक्टर आकर मौत न रोक दे ।"

मनीश की बातो से नन्दा हँसी और कटहल के दो बडे-बडे कट-लट उसकी थाली मे डालकर कहा—"पहचानो यह कौन-सी चीज है ?"

दिन कटते चले जाते, नन्दा का शरीर क्रमश अशक्त होता जाता। तब नन्दा धूप-छाँह मे पैर फैलाकर दीवाल से लगी हुई बैठी थी, रक्त-शून्य मुख पर क्लाति थी। फल की तश्तरी आगे रखकर कल्पना बैठी उससे बाते करती जा रही थी।

अब फल भी नही खाना है ? सबेरे से बस दो चम्मच हारलिक्स

पेट मे गया है।"

"कुछ खाने की इच्छा ही नही होती कल्पना, मै क्या करूँ ?"

"भला यह भी कोई बात है ? बेचारे मनीश बाबू, सुबह-शाम दौडे आते है, कही कुछ, कही कुछ तुम्हे खिलाते रहते है। उनके सामने जरा कुछ तो भी पेट मे चला जाता है। मैं कैसे मानूँ जीजी, कि दिन-रात तुम्हे भूख ही नही लगती ?"

"नही लगती, मुझे भूखो रहने का चाव थोडे ही है।"

"है ही, तुम जान बूझकर अपनी जान दे रही हो। भला यह जान किसके लिए देना ?"

हँसकर सुनन्दा ने वही एक उत्तर दिया—"तेरे लिए।"

"मेरे लिए ? अरे क्यो ?"

"जरूरत आ पडी है ?"

"जरूरत ?"

"हाँ, कल्पी, दुनिया मे बस यही एक जरूरत ही तो है, जो कि आदमी को आदमी कहला सकी है, बना सकी है। आदिम मानव की जरूरत ही ने उस के प्रत्येक प्रयोजन की वस्तु को अपने-आप खोज निकाला है। वही कह रही थी। जरूरत एक ऐसी चीज है, जो कि अपनी पूर्ति, अपना प्रयोजन स्वय आदमी से सिद्ध करवा लेती है। और आदमी एक साधनमात्र है।"

अचम्भे से कल्पना नन्दा को देखने लगी। फिर हँस पडी—"तुम मुझसे मजाक कर रही हो जीजी ?"

नन्दा भी हँसने लगी, किन्तु उस हँसी मे उसके प्राण की स्फूर्ति नही बोल रही थी।

"तुम यो न खाओगी, मै एला बहन को भेज देती हूँ।"

हल्ला मचाती हुई एला पहुँची, वैसे ही चिल्लाती हुई, बोली—"अरी जीजी, तुम अपनी जान देकर ही दम लोगी, लो खाओ।"

उसने सेब का टुकडा उठाया और नन्दा के मुँह मे भर दिया। फिर दूसरा और तीसरा, चौथा।"

"बस कर मेरी मीठी एला। देख मेरा पेट कैसा कडा पत्थर-सा हो रहा है लगता है कि गले तक भरा हुआ है। और तू मान एला, कुछ भी पेट मे जाता है तो बडी तकलीफ होती है।"

"सब बाते तुम्हारी बनाई हुई है। कल मैने अपनी आँखो से तुम्हे दवा फेकते हुए देखा था। तुम आत्महत्या कर रही हो जीजी, लेकिन क्यो ? किसके लिए ?"

नन्दा ने इस तीसरे प्रश्नकर्त्ता को भी वही एक उत्तर दिया—

"तेरे लिए।"

"मेरे लिए ?" एला अवाक् रह गई।

"समझी ? तेरे लिए।"

"क्यो जीजी, तुम्हारे मरने से मेरी कौन-सी भलाई होगी ? वरन् और खराबी होगी, बर्बाद हो जाऊँगी।"

"नही।"

"फिर भी झूठ ? कहो न जीजी, क्या भलाई होगी ?"

"मेरे कहने की क्या जरूरत ? एक दिन अपने आप समझ लोगी।"

"तुम दिन पर दिन पहेली बनती जा रही हो जीजी।"

"तुम उस पहेली को बूझो तो भला ?"

दोनो खिलखिलाकर हँस पड़ी।

डाक्टर के साथ मनीश ने आते हुए कहा—"आज तो बडी खुश जान पड रही हो भाभी ?"

"मैं न-खुश कब रहती हूँ ?"

डाक्टर ने सर्वप्रथम ज्वर का चार्ट देखा। मुख अप्रसन्न हो उठा। कहा—"बुखार दिन-रात एक-सा रहता है, मनीश बाबू, देखूँ।" सब चुप थे।

३५

सुनन्दा रोग भोग कर रही थी, यह सत्य है, परन्तु मन शायद उसका तब भी शक्तिहीन नही हो पाया था। गत रात्रि मे उसने अपने से तय कर लिया, चाहे दादू भूल जाएँ, चाहे वे न मनाएँ मनीश का जन्म दिन, परन्तु वह मनाएगी। एक दिन पहले ही उसने अपनी फुलवारी के फूलो को चुनवाकर भीगे कपडे मे रखवा दिया था। गजरा वह स्वय बनाएगी।

सन्ध्या के बाद जब लोग चले गए, तब उसने कल्पना और एला को बुलाया। कहा—"मै आज मिठाई बनाऊँगी, तुम दोनो मेरी सहायता करो।"

"तुम ?" वे दोनो अवाक् हो रही।

"क्यो, इसमे अचम्भे की क्या बात है ? यही सब सामान लेकर स्टोव जला लो और बस।"

"आखिर तुम्हे मिठाई बनाने की क्या ऐसी जरूरत आ पडी ?"

"बहन, कल मनीश बाबू का जन्म दिन है। कौन जाने इसके बाद शायद कुछ भी न कर सकूँ। आज तो कुछ कर लेने दो, क्यो न बनाऊँ ?"

उन दोनो ने एक दूसरे के प्रति देखा, तब कहा—"अच्छी बात है, लेकिन तुम सिर्फ बैठी रहना। क्या-क्या बनाना है ?"

"वे खस्ता खाजे, पान्तुआँ और मटर के समोसे बहुत पसन्द करते हैं। तुम मैदे मे मुअन डालकर माँड लो, और तू खोया और छना को अच्छी तरह से मिलाले। तब तक शक्कर घोलकर चाशनी चढा दो न।"

भोर की वेला मे सबसे पहले पहुँची सुनन्दा मनीश के रुद्ध द्वार पर। द्वार खोलकर मनीश अवाक् हो रहा—"भाभी।"

गजरा उसके गले मे डालकर वह बोली—"हाँ जी, भूत नही, प्रेत

नही है---मनीश की भाभी। आज तुम्हारा जन्म-दिन है न। शुभ पूर्ण सार्थक हो यह दिन।"

कागज का बक्सा खोलकर मनीश विस्मित हुआ।

"ऐसी बीमारी मे भी तुमने मेरे लिए रूमाल बनाया है? और यह ढेर-सी मिठाइयाँ। भाभी, सचमुच तुम क्या हो, कहो तो सही।"

"तुम तो बाजार के रूमाल पसन्द ही नही करते।"

"लेकिन यहाँ तक उठकर तुम आईं ही कैसे?"

मनीश ने एक प्रकार नन्दा को गोद मे उठाकर कमरे के अन्दर आराम कुर्सी पर बैठा दिया।

"भाभी, अब कुछ लाभ हो रहा है?"

"वरना यहाँ तक उठकर आती कैसे? जाओ नहाकर आओ, आज साथ बैठकर चाय पिऊँगी। दादू तो अभी उठे न होगे। इस वर्ष वे तुम्हारा जन्म-दिन करना भूल गए। उन्हे आज ऐसा छकाऊँ।"

दोनो हँसने लगे। मनीश बाथरूम मे गया। नन्दा ने लौटकर देखा। चाबी आलमारी ही मे लटकी हुई थी। धीरे उठी, आलमारी खोली और उस मोटी कापी को निकाल लाई।

जितना पहले पढ चुकी थी, उसके बाद उसने पढना शुरू किया। एक निर्यातित नारी की जीवन-गाथा पढते-पढते हर्ष-विषाद का अपूर्व समावेश उसके मन मे होने लगा। तब तक शीर्षक उपन्यास का नही दिया गया था। सुनन्दा ने उपन्यास का शीर्षक लिखा, बड़े-बडे सुन्दर अक्षरों मे "नष्ट नीड।"

मनीश स्नान कर लौटा और कुर्सी पर बैठी हुई नन्दा के पृष्ठ देश से झुककर बोला—"आखिर तुमने मेरा उपन्यास पढकर ही दम लिया भाभी।"

"और तुमने भी तो नन्दा की छिपी हुई जीवन-गाथा को लिखकर ही छोडा न मनीश बाबू? सचमुच मुझे विस्मय है, सब बाते

इस तरह तुमने जानी कैसे ?"

"मेरे मन की अनुभूति ने सब कुछ सोच निकाला है न भाभी।"

"ऐसी अनुभूति, ऐसा मन है तुम्हारा ?"

नन्दा के पलकहीन नेत्रो के प्रति देखता हुआ मनीश केवल कह सका––"भाभी ! ओ भाभी।"

"उन छोटी-बडी घटनाओ को, पहलुओ को तुमसे किसने कहा ? सच तो बतला दो मनीश बाबू।"

"सच कहूँ ? तुम्हारे मौन, मूक हाहाकार ने, तुम्हारी दृष्टि की व्यर्थता ने, दु ख-दर्द के उफानो ने, और स्वय सुनन्दा के व्यक्तित्व ने मुझे सब कुछ बतला दिया न भाभी।"

चुप रही आई नन्दा।

"भाभी ! क्या सोच रही हो ?"

"एक ऐसे कलाकार का जन्म शिशु स्वभाव के मनीश के अन्दर कैसे हो सका ? वही तो सोच रही हूँ न।" फिर आत्मगत भाव से कहने लगी, धीरे, अति धीरे–"ऐसे एक का जीवन व्यर्थ होकर रहेगा ? किन्तु क्यो ? क्या उस व्यर्थता से उसे उबारा नही जा सकता है ? जरूर जा सकता है।"

"भाभी ! ओ भाभी ?"

"क्या ?" नन्दा ने मनीश के मुख मे लिपटी हुई तृप्तिपूर्ण हँसी को देखा और तब उसका जी परम परितोष से भर उठा। कहा––"उपन्यास का अन्त है, उसका शेष परिच्छेद कब लिखोगे। लिखो जल्दी मनीश बाबू ? मेरे जाने से पहले शेष कर सकोगे न ?"

"जाओगी ? कहाँ जाने की बात कह रही हो भाभी ?"

"यो ही कह दिया, जाऊँगी कहाँ ? जल्दी उस शेष पृष्ठ को खतम करो।"

"तुम दिन-दिन गहरी पहेली क्यो बनती जा रही हो भाभी ?"

श्रीनाथ प्राय दौडते से आए—"देखो तो मुझे किसी ने नही उठाया। आज कितने दिनो के बाद लक्ष्मी अपने दादू के घर आई और मै पडा सोता रहा। इतनी दूर आ सकी हो नन्दा ?" आनन्द से वृद्ध के नेत्र सजल हो रहे थे—"मै तो जानता ही था, मेरी नन्दा फिर अच्छी हो जाएगी, फिर अपने दादू को नाना प्रकार के भोजन बनाकर खिलाएगी। और दादू के सिरहाने बैठकर उसके सफेद बालो को बीन बीनकर निकालेगी।" कहते-कहते श्रीनाथ हँसने लगे—"अब सिर के सब बाल सफेद हो रहे हैं, कैसे उन्हे निकालोगी लक्ष्मी ?"

नन्दा हँसने लगी।

अपनी खुशी मे मस्त श्रीनाथ कह चले—"वह तो बेवकूफ डाक्टरों ने मुझे डरा दिया था। मनी बेचारा तो खाना-पीना ही छोडे है। लेकिन मै जानता था, मेरी लक्ष्मी अच्छी हो ही जाएगी। देखूँ, बुखार तो आज नही है ?"

और सुनन्दा के शरीर का उत्ताप देखकर वृद्ध हताश होकर कुर्सी पर बैठ गए।

"तुम्हे तो अब भी बुखार चढा हुआ है, मैने सोचा, अब छूट गया होगा, तभी तो वह यहाँ तक आ सकी।"

"कम हो गया है दादू। धीरे-धीरे चला जाएगा। चलो, चाय ठडी हो रही है।"

तीनो चाय की टेबिल पर पहुँचे। नन्दा का अशक्त शरीर काँप रहा था। उसने सबकी दृष्टि बचाकर कुर्सी थाम ली। फिर साथ लाई हुई मिठाइयो को प्लेट मे सजाकर मनीश तथा श्रीनाथ को दिया।

"आज मनीश बाबू का जन्म-दिन है न दादू ? भूल गए ? मै अपने हाथ से मिठाई बनाकर लाई हूँ।"

३६

प्रात प्रभाती की पावन वेला। सुनन्दा के जीवन के शेष प्रहर मे मानो शत-शत दीप केसर की रंगीन ज्योति लिये जल उठे थे। गत किसी एक दिन के बासर सज्जा—रात्रि की गोपन वार्ता उसके कानो मे शखध्वनि के साथ कोई मानो सुना रहा था।

उस वेला मे डाक्टरगण, मनीश, श्रीनाथ, एला, कल्पना आदि सब उसे घेर कर उदास बैठे। रात्रि जागरण हेतु सब के नेत्र-पल्लव भारी थे।

निपट उदासी! बिछुडते हुए की आह कमरे की वायु को भारी करती। प्रसन्न थी, हँस रही थी केवल वह सुनन्दा।

नन्दा ने रुक-रुककर धीरे कहा—"आप लोग क्यो हैरान हो रहे हैं? मै अब अच्छी हूँ। सब लोग जाकर आराम करिये। कल्पना बहन।"

"जीजी-जीजी" करती हुई कल्पना उसके मुख पर झुकी—"कहो जीजी, क्या कहती हो?"

"मेरे पास आ, और पास, हाँ, यहाँ बैठो, मेरी अन्तिम इच्छा।"

"कहो जीजी।"

"यदि हो सके तो दीपेन के साथ शादी कर लेना। वह तुझे चाहता है।"

कल्पना ने मस्तक नत कर लिया।

दीर्घश्वास नन्दा के हृदय को चीरकर निकल पडा—कहा—"नही कर सकोगी? तो जाने दो।"

कल्पना ने एक बार उस मृत्यु छायाछन्न नारी के मुख को देखा, देखा अपने मन के प्रति झाँककर, और बोली, "तुम्हे वचन देती हूँ, चेष्टा करूँगी जीजी, शायद सफल हो जाऊँ।"

तृप्त मुसकान नन्दा के मुख पर उभरी।

"दादू"—हाँफती हुई वह बोली—"इस कमरे मे मेरा श्वास रुक रहा है।"

"लक्ष्मी बेटी !"

"मुझे मेरे बगीचे मे ले चलो, वहाँ खुली हवा मे। पेड-पत्तियो के बीच, आकाश के नीचे मै आराम से सो जाऊँगी। जल्दी करो दादू, वक्त टलता जा रहा है।"

चौधरी दम्पति आकर उपस्थित हुए। और सबने मिलकर धीरे-धीरे खाट सहित नन्दा को उद्यान के शाखाबहुल आम्र वृक्ष के नीचे रख दिया।

आराम से नन्दा ने अस्फुट ध्वनि की, "आह !"

कुर्सी पर, बेञ्चो पर सब लोग बैठ गए।

और वही समय था जबकि उन्माद झटिका की भाति उद्यान मे रवीन्द्र ने प्रवेश किया। आया और किसी ओर आँखे उठाए बिना ही पलग के निकट खडा हो गया। निर्निमेष दृष्टि से वह नन्दा को देखने लगा।

सहसा रवीन्द्र नन्दा के मुख पर झुका—"दुनियाँ से बिदा लेते वक्त भी तुमने मुझे बुलाया नही ? इतना अभिमान, ऐसी बीमार थी—और मुझे ही खबर नही ? चलो नन्दरानी, तुम्हे मै लेने आया हूँ।"

"और समाज ?" गुनगुनाकर, रुक-रुककर सुनन्दा बोली—

"कहाँ का समाज ? कैसा समाज ? उसी समाज के भय से आज तुम्हारी यह दशा, मेरी यह दशा। जिसे मनै सदा प्यार करता चला आया है, समाज के डर से उस मन की पुकार को सुनकर भी न सुना। लेकिन आज जब जयी हो गया तब समाज की क्या परवाह ? यही मन उसके साथ निपट भी लेगा। 'राम-राम !' के आदर्श ने तो आज हमे इस स्थिति तक पहुँचाया ! निष्ठावान्, धार्मिक हिन्दू था मै ! इसी राम की कथा ने, जो कि हम उसकी तह तक नही उतर पाते, नही समझ पाते उसकी

वास्तविकता को, महत्व को, उसी राम कथा ने आज हिन्दू समाज मे क्या-क्या अन्धेर ही न मचा रखा है।"

चित्रार्पित की भाँति अनजान एक विस्मय से ये बाते सुन रहे थे सब उपस्थित लोग।

"तुम्हे लेने आया हूँ।"

"मुझे ? किन्तु तुमने बडी देर लगा दी।"

"देर ?"

"हाँ जी, पथरीला यह पथ, पथ पर चलने की वेला—न जाने कितने ही पद-चिह्न अकित हो चुके है इस मन मे। वे पद-चिह्न ? महावर से पावन। वे पद-चिन्ह ? कोयल से काले, गन्दगी कीचड से दुर्गन्धित वे पद-चिह्न ? चन्दन-लिप्त, देवता के निर्माल्य से सुगन्धित। वे पद-चिह्न उज्ज्वल तरगो से उद्दाम। कितना कहूँ ? कितना कहूँ ?" सुनन्दा हाँपने लगी। और तृप्ति की उज्ज्वल आभा उसके मुख पर व्याप गई।

"ऐसी दशा क्यो बना ली है नन्दरानी।"

"शायद इसकी जरूरत रही हो।"

"जरूरत ? कैसी वह जरूरत ?"

"सुनाऊँगी ! जल्दी क्या है ?"

नन्दा का मस्तक उपधान से एक ओर लटकने लगा।

दोनो हाथो से नन्दा को उठाने की चेष्टा करता हुआ बोला रवीन्द्र, "मै तुम्हें लेकर जाऊँगा।"

तब क्रोध पूर्णरूप से मनीश के हृदय मे घर कर चुका था। पजाबी का आस्तीन उठाता हुआ वह दौडा—"खबरदार, मत छुओ, मेरी सती, पावन भाभी के शरीर को मत छुओ। तुम कौन हो ? किस अधिकार से मेरी भाभी को छू रहे हो ?"

नन्दा जरा देर के लिए सजग हो उठी, हाथ उठाकर रोकना चाह रही हो शायद। किन्तु शक्तिहीन हाथो को न उठा सकी।

"यह आपकी भाभी है ?" रवीन्द्र ने पूछा—एक अद्भुत निश्चिन्तता, तृप्ति रवीन्द्र की आकृति मे झलक उठी।

"जी हाँ ! मेरी भाभी, अपनी भाभी।"

"आपकी भाभी है ?"

"हाँ, हाँ, हाँ ! और किस अधिकार से आप इन्हे उठा रहे थे ?"

"मै ? पति के अधिकार से ! सुनन्दा देवी मेरी धर्मपत्नी, मेरी सहधर्मिणी है।"

मनीश के उठे हुए हाथ वैसे ही रह गए। डाक्टरो की नीद से झुकी हुई आँखे खुल गईं। कल्पना के हाथ की दवा जमीन पर गिर पडी। एला के नेत्र विस्मय से फट पडने को हुए। और वृद्ध श्रीनाथ खुशी से शिशु की भाँति मचल पडे। चौधरी साहब का मन गम्भीरतर हुआ। चौधरानी के नेत्र उबल उठे।

श्रीनाथ ने कसकर अपने आलिगन मे रवीन्द्र को जकड लिया। कहने लगे—वही तो, वही तो, मेरी सती माँ, मेरी लक्ष्मी, वही तो।"

तुष्ट, तृप्त मुसकान नन्दा के मुख पर लिपटकर शात हो रही।

"पानी !" मनीश को देखती हुई वह बोली—"पानी"।

यत्न से मनीश ने उसका मस्तक तकिये पर रखकर चम्मच द्वारा पानी पिलाया।

आँसू के दो बूँद मनीश के नेत्र मे छल-छलाने लगे। नही, न वे लुढके, न वे ढले, आँखो ही मे रह आए, मोती के समान।

"भाभी" मुँह नीचा कर पुकारा मनीश ने।

मनीश की आँखो की वे बूँदे नन्दा के कपोल पर चू पडी। पाकेट से मनीश ने रूमाल निकाल कर अपनी उन बूँदो को पोछ लेना चाहा।

नन्दा ने फुस-फुसा कर कहा—"उन्हे मत पोछो। मत पोछो। रहने दो। मत पोछो।"

आम की डाली पर उस लटकते हुए सुन्दर घोसले मे पक्षी का जोडा

चह चहा उठा । उस फटफटाहट से सबकी आँखे ऊपर उठी, बाहर से उडकर आया हुआ एक तीसरा—उस घोसले मे प्रवेश करना चाह रहा था । पक्षी—छटपटाने लगे ।

देख रही थी नन्दा उस घोसले को, विरक्ति से उसके नेत्र कुञ्चित हुए । फिर धीरे-धीरे अद्भुत एक अपरिचित आभा उन नेत्रो मे व्याप्त हुई । धीरे, अति धीरे नीद उन आँखो मे उतर आई ।

सुप्त था ससार, सुप्त था वह सुनन्दा का गृह, सुप्त थे उसके उद्यान के वृक्ष-लता । केवल जाग रही थी एला । वह सूना घर उसे निगलने-सा दौडता । माधवी लता के भीतर वह जाग कर बैठी थी, न जाने उसके मन मे कौन-सी कथा, कौन सा चित्र भरम रहा होगा ।

मनुष्य की पद-ध्वनि से, पत्र-पल्लवो की आड से चकित उसकी दृष्टि उस ओर पडी । हाँ, वह मनुष्य ही था—जो कि धीरे चलकर—उस आम्र वृक्ष के नीचे खडा हुआ । फिर झुकी हुई डाल पर से लटकते हुए पक्षी के घोसले को देखा । हाथ से उसे छुआ और उसी प्रकार देर तक खडा रहा । गिरजे की घडी मे रात्रि मे दो की घटी टनटनाई । स्वप्नोत्थित की भाँति व्यक्ति जागा-सा । धीरे-धीरे नत मस्तक-सा वह फाटक की तरफ चल दिया ।

विस्मित एला ने पहचानना चाहा किन्तु अधखिली चाँदनी मे पहचान न सकी । दीर्घश्वास त्याग कर एला उठी । उसके आगे को अग्रसर पैर वही रुक गए । मन्त्र मुग्ध की भाँति वह देखने लगी उस दूसरे आए हुए व्यक्ति को । एला ने गम्भीर विस्मय से देखा, यह व्यक्ति भी उसी घोसले वाले आम्र वृक्ष के नीचे खडा हो गया । उसने भी घोसले को स्पर्श किया । घडी ने चार बजा दिए । धीरे वह चल दिया । और उस अपूर्व विस्मय के एक जीवित स्वप्न को हृदय मे लिये एला अपने सूने घर मे लौट आई ।